हिन्दी काव्य शास्त्र का विकासात्मक अध्ययन

हिन्दी काव्य-शास्त्र
का
विकासात्मक अध्ययन
(शोध कृति)

•

डा० शान्तिगोपाल पुरोहित,
एम० ए०, पी एच० डी०
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
गवनमेंट कालेज, भीलवाड़ा [राज०]

•

प्रगति प्रकाशन,
आगरा–३

सादर-समर्पित

कर्मठता, दृढ़ता, सजीवता, पौरुष व हृदय की अत्यन्त पवित्रता एवं कोमलता के साकार
सचेष्ट स्वरूप और मेरे जीवन के निर्देशक तथा पथ प्रदर्शक
परमादरणीय पूज्य पिताजी 'काकोसा' –
श्रीमान मेघराजजी साहब,
पुरोहित मारोठवाला

एवम्

दया, ममता, करुणा वात्सल्य सौहार्द्र, सहनशीलता और कर्त्तव्य परायणता
की सजग - साकार प्रतिमा, परमादरणीया माताजी 'बासा'—
श्रीमती उदयकौरजी साहिबा—

जिन्होंने अपनी तपश्चर्या ममता अथक वात्सल्यमयी प्रेरणा और अनुभव
भरी शिक्षा दीक्षा से मुझे सदैव सुखी और सम्पन्न बनाया तथा
जिनका आशीर्वाद मेरा सर्वस्व अथक जीवन सम्बल
है, उन्हीं दिव्य दम्पति को सादर
समर्पित !

लेखक—

सोढ़ों की गली, मीर मोहल्ला

जोधपुर (राज०)

दो शब्द

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि साहित्य धमज्ञ डा० कुवर चन्द्रप्रकाशसिंहजी ने अपना अमूल्य समय देकर मेरी भ्रान्तियो का निराकरण किया और राह-निर्देशन किया।

ग्रन्थ का परिष्कार उनके कुशल निर्देशन से ही हो सका। उन्होने अपने स्नेह सौजन्य और अपनी विद्वता द्वारा मुझे जो सहायता प्रदान की है। उसके लिए मैं आभार। प्रकट करता हू। साथ ही यह अकित करना भी मैं अपना कर्त्तव्य मानता हू कि सघर्ष के क्षणो मे जब मैं निराश सा हो चुका था, डा० नित्यानन्दजी शर्मा, रीडर, हिन्दी विभाग जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर ने कार्य को पूर्णता प्रदान करने का उत्साह बधाया।

'वट विच वी काल एरोज
बाई एनी अदर नेम वुड स्मैल एज स्वीट"
(सेक्सपियर)

साहित्यिक सामग्री प्रदान की और शोध प्रबन्ध को पूर्ण बधाने में अपूर्व सहायता प्रदान की। अतएव मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

यह सकेत भी सामयिक ही होगा कि इस प्रबन्ध को प्रकाशित कर विद्वानो के सम्मुख रखने का श्रेय श्री रामगोपाल परदेसी, सचालक प्रगति प्रकाशन, आगरा को है। मैं उनके प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हू।

पुस्तक को ऐसे रूप मे मुद्रित करने की अभिलाषा थी कि, उसमे एक भी मुद्रण की त्रुटि न रहे। किन्तु परिस्थितियो वश ऐसा नही हो सका। कई स्थानो पर मुद्रण की त्रुटियाँ रह गई हैं। जिनके लिए मैं खेद प्रकट करता हू। विश्वास है कि आगामी सस्करण मे इन त्रुटियो का निराकरण हो सकेगा।

अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय
भीलवाडा (राज०)

—डा० शान्तिगोपाल

वक्तव्य

आधुनिक हिन्दी साहित्य का अध्ययन अंग्रेजी और संस्कृत के विद्वानो को यह संकेत करता है कि आधुनिक हिन्दी साहित्य ने संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य से बहुत सी बातें ग्रहण की हैं। प्रभाव को खोजने के लिये विद्वानो ने इस दिशा मे अनेक प्रयत्न किये हैं और लेखो और प्रबन्धो के रूप मे उनके प्रयास प्रकट हुए हैं। आज साहित्य की अनेक विधायें हमारे सामने प्रकट हो रही हैं। उनमे मौलिक प्रयत्नो के साथ साथ बहुत से प्राचीन या परम्परागत प्रभाव भी हैं। इनम से नाटक, कथा, कविता और काव्य शास्त्र प्राचीन और अर्वाचीन दोनों कालो से प्रेरणा ग्रहण करते हैं। भारतीय काव्य शास्त्र ने अपने स्वरूप म जिन-जिन परिवर्तनो को स्वीकार किया है, उनसे हिन्दी काव्य शास्त्र भी मुक्त नहीं हैं। हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास इस बात का प्रमाण है कि उसने जिस प्रकार संस्कृत से प्रेरणा ली उसी प्रकार अंग्रेजी से भी। पूर्व भारतेन्दु कालीन हिन्दी काव्य शास्त्र कुछ अंशो मे अपनी मौलिकता प्रकट करके भी भारतीय काव्य शास्त्र के अनुशासन का पूर्ण रूपेण उल्लघन नहीं कर सका। फिर भी उसी काल म अपभ्रंश शैली और लोक साहित्य परम्परा के कारण हिन्दी काव्य शास्त्र संस्कृत काव्य शास्त्र से दूर जाता हुआ भी दृष्टिगोचर होता है। अंग्रेजी साहित्य के अध्ययन मे भारतीय साहित्यकार की प्रतिभा को आन्दोलित किया और संस्कृत साहित्य के मोह को छोड कर वह विदेशी साहित्य की ओर भी बढ़ा। आधुनिक हिन्दी साहित्य विदेशी साहित्य के प्रति अपनी अभिरुचि को भली प्रकार व्यक्त कर रहा है। हिन्दी काव्य शास्त्र भी उस अभिरुचि की अभिव्यजना म अपना योग दे रहा है। यहाँ यह कह देना सामयिक ही होगा कि हमारा काव्य शास्त्र अपनी मौलिकता को भी प्रकट कर रहा है।

इसके साथ ही एक तथ्य और उल्लेखनीय है। प्रस्तुत अभिनिबन्ध मे काव्य शास्त्र को परम्परागत अर्थ म ग्रहण करते हुए इसे साहित्य शास्त्र का पर्याय माना गया है। प्राचीन भारतीय विद्वानों ने काव्य शब्द को साहित्य के अर्थ मे प्रयुक्त

किया था। उदाहरणार्थ "वाक्यम् रसात्मकम् काव्यम्" उक्ति लिखकर साहित्य दर्पण
कारने काव्य में साहित्य के सभी अङ्गों का समावेश किया है। काव्यप्रकाश, काव्या
लंकारसूत्र काव्य मीमांसा, काव्यादर्श, का पल्लवतावृत्ति कविकंठाभरण, काव्य
विवेक और काव्य प्रकाश नामक ग्रन्थों में शास्त्रीय तत्वों का सन्निवेश किया गया है।
काव्य विभाजन प्रणाली से ज्ञात होता है कि काव्य को मुख्य रूप से तीन भागों में
में बाँटा जाता है— गद्य पद्य और चम्पू। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि गद्यात्मक
रचना भी काव्य के अन्तर्गत आती है।

प्राचीन यूरोपीय विबुध अरस्तू ने काव्य शास्त्र नामक पुस्तक में साहित्य
के अन्य अङ्गों का चलता सा विवेचन किया है और त्रास दी की मार्मिक व्याख्या
की है। इससे यहाँ यह उपयुक्त समझा गया कि काव्य शास्त्र को केवल कविता की
आलोचना और उसके शास्त्रीय विवेचन तक ही सीमित न रख कर उसे समस्त
साहित्य के गुण-दोष समीक्षा पद्धति के रूप में गृहीत किया जाय। यहाँ यह इङ्गित
किया जा सकता है कि साहित्य शास्त्र नाम रखने में क्या असुविधा थी, इसके प्रति
उत्तर में यह कहा जा सकता है कि— 'ए नोन एनिमी इज बटर दन एन अन नोन
फ्रेंड तथा —' बाट इज देयर इन ए नेम।'

'ए रोज वुड स्मेल एज स्वीट हैड इट बीन कोल्ड बाई एनोदर नेम।'
अतएव इङ्गित अर्थों में प्रयुक्त शब्द काव्यशास्त्र को नये शब्द साहित्य शास्त्र से
अधिक उपयुक्त समझा गया है। आज भी कहा जाता है कि साहित्य शब्द के साथ
शास्त्र का प्रयोग विरल है।[1] दूसरा कारण यह भी है कि कई विद्वानों के अनुसार
विज्ञापन पर पाश्चात्य विद्वानों के अनुसार औषधि पत्र (प्रेस्क्रीप्शन) और छवि गृह
चित्र (सिनेमा पोस्टर्स) भी अन्तर्निहित रहते हैं। इसी हेतु डि क्विंसी ने साहित्य को
दो भागों में विभाजित किया ज्ञान वर्धक साहित्य जिसमें हर लिखित सामग्री सम्मि
लित की जाती है। दूसरा शक्ति प्रदान साहित्य जिसमें काव्य को सम्मिलित
किया गया है।

अतः इस अधिनिबन्ध में काव्य शास्त्र को साहित्य शास्त्र के पर्याय के रूप
में इस दृष्टि से ग्रहण किया गया है कि इसमें केवल कविता की शास्त्रीय या

१— डा० मनोहर काले-हिन्दी मराठी काव्य शास्त्र अध्ययन पृष्ठ ४।

भावात्मक समीक्षा ही सीमित न रह जाय।[१] आधुनिक विद्वानो ने यत्र-तत्र समालोचना के लिए काव्य शास्त्र का प्रयोग किया भी है।[२]

इस अभिनिबन्ध म काव्य शास्त्र के विवेचन करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुचते हैं कि हिन्दी काव्य शास्त्र ने संस्कृत और अंग्रेजी काव्य शास्त्र से कालानुक्रम से बहुत कुछ लिया है। किन्तु क्या लिया है और क्या इसकी मौलिकता है इस पर विशेष अध्ययन किया गया है। प्रवृत्तियो के सम्बन्ध म हिन्दी काव्य शास्त्र पर संस्कृत और अंग्रेजी के काव्य शास्त्र के प्रभाव का अलग अलग करके अनेक विद्वानो ने देखने का प्रयास किया है। तुलनात्मक एव समन्वयात्मक रूप म इसकी गवेषणा अभी तक नही हुई है। हिन्दी के काव्य विशेष पर और काव्य शास्त्र पर किस का क्या-क्या प्रभाव है यह हमारे अध्ययन का विषय रहा है। यह अध्ययन काव्य शास्त्र के सम्बन्ध मे पाठक की जिज्ञासा का समाधान करता है कि आज का हिन्दी काव्य शास्त्र किन तत्वों प्रभावों और प्रवृत्तियो को लेकर निर्मित हुआ है। ऐसे अध्ययन की विद्वानो ने आवश्यकता भी बताई है।[३]

१—साहित्य शास्त्र विशेषांक-साहित्य सन्देश जुलाई, अगस्त १९६२ पृ ३।

२—श्रीनिवदानसिंह चौहान-आलोचना के सिद्धान्त पृष्ठ ८७।

३—(क) आचार्य श्री नरेन्द्र देव-हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास पृष्ठ आलेखक डा० भागीरथ मिश्र।

(ख) डा० नगेन्द्र-भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका-वक्तव्य।

(ग) आधुनिक हिन्दी साहित्य में समालोचना का विकास-(डा० वेङ्कट शर्मा) पृष्ठ ठ।

(घ) डा० मनोहर काले-आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्य शास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ १०, १७, ६८३।

(ङ) डा० गोविन्द त्रिगुणायत-शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त-प्रथम भाग पृष्ठ ख।

(च) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २५७।

(छ) डा० नगेन्द्र-हिन्दी काव्यालंकार सूत्र-भूमिका "हिन्दी काव्य शास्त्र की दूसरी प्रवृत्ति का सम्बन्ध आधुनिक आलोचना और पाश्चात्य काव्य शास्त्र तथा मनोविज्ञान से बताया गया है। पृष्ठ १७१।

प्रस्तुत अधिनिबन्ध मे ऐसा प्रयत्न किया गया है कि हिंदी काव्य शास्त्र पर एक साथ ही प्रभाव और उसकी मौलिकता प्रकट हो जाये। कहीं कहीं पर परिस्थिति ऐसी भी आई है कि जिसमें यह निश्चित करना दुष्कर हो गया है कि अमुक प्रभाव सस्कृत माध्यम से आया है अथवा अ ग्रेजी के माध्यम से। ऐसी समस्याओ को सुलझाते समय इस अधिनिबन्ध के लेखक ने यूनानी और इटालवी मान्यताओ को भी सामने रखा औरफिरअपने निष्कर्ष प्रस्तुत किये है। इस अधिनिबन्ध मे अग्रेजी काव्य शास्त्रकारो के साथ अन्य पाश्चात्य काव्य शास्त्रो के अ ग्रेजी मे अनूदित रूपों पर भी दृष्टिपात किया गया है क्योकि अग्रेजी काव्य शास्त्रकार स्वय उनसे प्रभावित रहे हैं।

अध्ययन की सामग्री का सकलन अनेक स्रोतो से किया गया है, जिनमे हिन्दी, सस्कृत और अ ग्रेजी काव्य शास्त्र तो प्रमुख हैं ही, परन्तु लक्ष्य ग्रन्थों को भी कुछ कम महत्व नहीं दिया गया है। इसके अतिरिक्त इतिहासो व सामाजिक और वयक्तिक विवरणिकाओ से भी सामग्री उपलब्ध हुई है। जीवन चरित और आत्म कथायें तक इस अधिनिबन्ध को तैयार करने मे सहायक हुई हैं। हिन्दी काव्य शास्त्र के इतिहास को विभिन्न युगो मे बाँट कर उन पर पहले सस्कृत और फिर अ ग्रेजी प्रभाव दिखाने की चेष्टा की गई है। प्रत्येक युग का सामान्य परिचय देने के पश्चात् उस युग के प्रमुख काव्य शास्त्रकारो–आलोचको, की रचनाओं मे और उनके सिद्धान्तों पर, सस्कृत और अ ग्रेजी के प्रभाव को खोजने प्रयत्न हुआ है। इस प्रबन्ध मे काव्य शास्त्रीय विवेचन के विभिन्न सम्प्रदाय और आलोचना की भिन्न भिन्न पद्धतियां तथा शलियों पर भी प्रकाश डाला गया है। इस प्रभाव को आकने के लिए केवल प्रकाशित पुस्तकों का ही अध्ययन नहीं किया गया है अपितु अप्रकाशित पाण्डुलिपियो का भी यथा सम्भव उपयोग किया गया है।

सामग्री को अध्यायों मे बाँट कर उनमे एक तारतम्य को दिखा कर इस अध्ययन को जटिलता से मुक्त करने का एव इसे सुबोध बनाने का पूर्ण प्रयत्न किया गया है। अत निष्कर्ष स्वरूप कहा जा सकता है कि प्रस्तुत अधिनिबन्ध सस्कृत और अ ग्रेजी काव्य शास्त्र के हिन्दी काव्य शास्त्र पर प्रभाव की वैज्ञानिक और गम्भीर विवेचना के प्रस्तुतीकरण का प्रयास है। यथास्थान अन्य भाषाओ का प्रभाव एव हिन्दी काव्य शास्त्रकारों की मौलिकता को भी प्रकट करने का प्रयत्न किया गया है। ध्यान यह भी रहा है कि काव्य शास्त्रकार विशेष कृति के साथ अपनी अन्य

कवियो मे भी दृष्टिगोचर हो सके । इसमे इस ओर जागरूकता पूर्वक प्रयत्न किया गया है कि प्रबन्ध मे केवल प्राप्य मतो को उद्धृत करके ही सन्तोष न कर लिया जाय । इसमे अपनी आलोचना शक्ति का उपयोग करते हुए हर शास्त्रकार हर युग और सम्पूर्ण काव्य शास्त्र के विवेचन का अपना निष्कर्ष दिया गया है । इसमे उपरिकथित सामग्री का उपयोग करते हुए व्याख्यात्मक, ऐतिहासिक, मनोविश्लेषणात्मक और निर्णयात्मक शैलियो के सुखद समन्वय का प्रयत्न किया गया है ।

इस अधिनिबन्ध के प्रणयन मे मैं श्रद्धेय डा० राम शङ्करजी शुक्ल "रसाल" अध्यक्ष, हिन्दी विभाग, जोधपुर विश्व विद्यालय का विशेष आभारी हूँ । उनके कुशल निर्देशन और परिष्कृत निरीक्षण से ही यह अधि निबन्ध पूर्ण हो सका है । जब भी समस्यायें सामने आइ, और कठिनाइयो का अनुभव किया गया तब पण्डितवर परमादरणीय गुरुवर ने अपने सत् परामर्श से आगे बढने की प्रेरणा दी और मैं इसे पूर्ण कर सका ।

लेखक—

विषय-सूची

भाषा भूषण-गद्य में व्याख्या। मतिराम, अलंकारों व प्रभाव। भूषण-भावक छवि-संस्कृत भाविक। देव-युग, और विशेषता। काव्य शास्त्र निरूपण-पद्यमय। संस्कृत आचार्यों की उद्धरणी। कुलपति मिश्र-टीकाएं-बिहारी सतसई, कवि प्रिया और रसिक प्रिया की टीकाएं। रीति ग्रन्थ प्रणयन-श्रीपति बीर, कृष्ण कवि (बिहारी सतसई टीका), रसिक सुमति। भिखारीदास-स्वकीया लक्षण हाव-भाव लक्षण-साहित्य दर्पण की छाया-अन्त्यानुप्रास-मौलिक विवेचन। दलपतिराम और बंशीधर-अलंकार रत्नाकर। दूलहनाथ। यशोदा नन्दन-संस्कृत हिन्दी मिश्रण-बब नायिका भेद, रसिक गोविन्द। अन्य कवि और आचार्य। निष्कर्ष-नायक-नायिका भेद, अलंकार वर्णन, रस विवेचन गुण दोष विवेचन, प्रकृति चित्रण, सैद्धान्तिक व्याख्या। मौलिक उद्भावनायें व परम्परा निर्वाह। निष्कर्ष।

द्वितीय प्रकरण-भारतेन्दु काल — पृष्ठ ८६ से १२२

(क) भाग-सामान्य परिचय —

अंग्रेजों का आगमन, शासन और भाषा सम्बन्धी नीति, स्वतन्त्रता संग्राम-अंग्रेजों की नीति, ईसाई धर्म प्रचारक और हिन्दी। तत्कालीन आलोचना-संस्कृत के परिपार्श्व में-टीका साहित्य, शास्त्रीय तत्व। आधार। अंग्रेजी के परिपार्श्व में-मौलिकता और नवीनता का आग्रह, आलोचकों की प्रतिस्पर्धा, सिद्धान्त प्रतिपादन, शास्त्रीय तत्व-अंग्रेजी सिद्धान्त। पत्र पत्रिकायें, प्रयोगात्मक आलोचनायें।। अंग्रेजों का सहयोग। अनुसंधान और नागरी प्रचारिणी सभा। मापदण्ड-अन्तर। कवियों की जीवनियां-ऐतिहासिक दृष्टिकोण-'लाइव्ज ऑफ पोइट्ज'। आलोचना और अंग्रेजी। अंग्रेजी के विराम चिन्ह। निबन्ध और आलोचना। निष्कर्ष।

(ख) भाग-आलोचक कृतियाँ —

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र-संस्कृत के पारिपार्श्व में, अंग्रेजी के परिपार्श्व में, जीवनियाँ, "नाटक' निष्कर्ष-मौलिकता। बद्रीनारायण चौधरी-दोष दर्शन, संयोगिता स्वयंवर, संस्कृत अंग्रेजी परिपार्श्व-निष्कर्ष। पंडित बाल कृष्ण भट्ट-बंग विजेता, अनुवाद, आलोचना, आलोचनात्मक लेख, शास्त्रीय तत्व, निष्कर्ष। पंडित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री-समालोचना, निष्कर्ष, शास्त्रीय तत्व, मौलिकता अन्य

तज। बाबू बाल मुकुन्द गुप्त और पद्मसिंह शर्मा वाजपेयी। संस्कृत काव्य शास्त्रीय धारा-लच्छीराम और कविराज मुरारीदान-संस्कृत के परिपार्श्व में, निष्कर्ष।

(क) भाग-सामान्य परिचय —

काल विभाजन, पत्रिका के साथ अन्त नहीं। संस्कृत के परिपार्श्व में-टीकाएं, शैली-अन्य शास्त्रीय तत्व। निष्कर्ष। अंग्रेजी के परिपार्श्व में-तुलनात्मक पद्धतियाँ, इतिहास ग्रंथ लेखन, पत्र पत्रिकाएं, प्रतिस्पर्धा, शास्त्रीय तत्व-नवीन दृष्टिकोण, निष्कर्ष।

(ख) भाग-आलोचक कृतियां —

द्विवेदीजी-संस्कृत परिपार्श्व में हिन्दी कालिदास-आलोचना, भाव-भाषा-गुण-दोष-विवेचन। विशेषता परिचय। विक्रमांक देव चरित चर्चा-विभिन्न काव्य शास्त्रीय तत्व। गद्य पद्य-परिभाषा नाटक निबन्ध, आलोचना लोचन शैली, पारिभाषिक शब्दावली, शास्त्रीय मान्यताएं। संयत स्वर। निष्कर्ष। अंग्रेजी परिपार्श्व-पत्र पत्रिका, निबंध, दृष्टिकोण, भाषा-भेद-द्वैध, विषय विस्तार-अन्य तत्व। निष्कर्ष। सर्व श्री मिश्र बंधु डा० श्यामसुन्दर दास, पण्डित पद्मसिंह शर्मा एवं अन्य आलोचक-संस्कृत परिपार्श्व अंग्रेजी परिपार्श्व-निष्कर्ष। शास्त्रीय तत्व, भाषा-गुण-दोष, रस अलंकार-व्याख्या। मौलिकता, अन्य तत्व।

(क) भाग-सामान्य परिचय —

संस्कृत परिपार्श्व-साहित्यिक विधाएं-परिभाषाएं। साहित्य की प्रेरक शक्तियाँ, साहित्य और कला शैली-रीति आदि। काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ, छंद विवेचन। आलोचना-काव्य शास्त्रीय तत्व, कविता। भाव, स्थाई भाव अनुभाव, संचारी और रस का शास्त्रीय विवेचन। रस-सुख दुखात्मकता, रस संख्या, रसास्वाद। रस सिद्धांत, रसाभास-दोष। अलंकार सम्प्रदाय, रीति, गुण, दोष, ध्वनि, वक्रोक्ति और औचित्य सिद्धान्त-निष्कर्ष।

अंग्रेजी परिपार्श्व—मौलिकता का आग्रह, नवीनता की आकांक्षा अन्य भाषा सम्पर्क आलोचना ग्रन्थ—प्रभाव संस्कृत ग्रन्थों का उद्धार, शब्दावली—भेद, भूमिकायें—अंग्रेजी में। नवीन आलोचना शैलियां, सामूहिक भाव और साधारणीकरण, मनोवैज्ञानिकता, पाठालोचन, अंग्रेजी के उद्धरण, शैली तत्व। तुलनात्मक आलोचना देश काल सापेक्ष आलोचना, विषय विस्तार। नियमोल्लंघन की प्रवृत्ति—विवेचन। अंग्रेजी की प्रेरणा दृष्टिकोण और भावना—प्रभाव। अंग्रेजी की परिभाषाएं। साहित्यिक विधायें। प्रेरक शक्तियाँ। काव्य—भेद, विषय, नाम। कला पक्ष और भाव पक्ष—विवेचन, निष्कर्ष। सौष्ठववादी आलोचना निगमनात्मक शैली, नन्द दुलारे वाजपेयी गंगा प्रसाद पांडेय, भूमिकाएं। प्रसादजी, पन्तजी, निरालाजी एवं सुश्री महादेवी वर्मा—अन्य आलोचक—समर्थक। अन्य प्रवृत्तियाँ—छानबीन खोज साहित्य, पाश्चात्य आलोचक—भारतीय—सा० वर्णन। इतिहास ग्रन्थ। अन्य शैलियां, चरित मूलक, ऐतिहासिक पद्धति—निष्कर्ष। मनोविश्लेषणवादी, मनोवैज्ञानिक व्याख्याएं—सरस साहित्य। खोज साहित्य—विभिन्न सम्प्रदाय—निष्कर्ष। साहित्यिक विधाएं—अंग्रेजी प्रभाव निष्कर्ष। आलोचना गद्यगीत, गीति काव्य कविता और छन्द, प्रयोगवादी कविता। शास्त्रीय तत्व—नूतन व्याख्याएं—भाव—विभाव आदि विवेचन—रस—करुण रस सुख कैसे? साधारणीकरण—ईर्षामिस व्यक्तिगत कटु प्रहार-अवांछनीय, लोक शास्त्र का उदाहरण। भक्ति रस—अंग्रेजी परिपार्श्व में। अलंकार, रीति और गुण—अंग्रेजी परिपार्श्व में। मार्क्सवादी आलोचना—हिन्दी के आलोचक, भूमिकाएं—प्रयोगवाद प्रयोगवादी आलोचक। अंग्रेजी परिभाषाएं—शब्दावली। अनुवाद, भाषा वैज्ञानिक अध्ययन। आकाशवाणी, समाज शास्त्रीय आलोचना—निष्कर्ष।

(ख) मान्य-आलोचक कृतियाँ —

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, संस्कृत परिपार्श्व में—रहस्यवाद, महाकाव्य और मुक्तक, रस और चमत्कार, काव्य, अलंकार, शास्त्रीय तत्व—निष्कर्ष। अंग्रेजी परिपार्श्व—साहित्य कला, अभिव्यंजना वाद मनोवैज्ञानिक विश्लेषण—अन्य तत्व। निष्कर्ष। इतिहास लेखन—ग्रियर्सन—प्रभाव और मौलिकता, निष्कर्ष। बाबू गुलाबराय, डा० रामशंकरजी शुक्ल 'रसाल' डा० लक्ष्मीनारायण सुधांशु पण्डित विश्वनाथ मिश्र पण्डित रामकृष्ण शुक्ल डा० सरनामसिंहजी शर्मा 'अरुण', डा० नगेन्द्र आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी डा० रामकुमार वर्मा, डा० एस० पी० खत्री, डा०

परिशिष्ट

प्रथम प्रकरण
हिन्दी काव्यशास्त्र—पूर्व भारतेन्दु युग तक
(प्रारम्भ से सम्वत् १९०० तक)

'क' भाग—आदिकाल

प्रारम्भिक स्वरूप अपभ्रंश और देशज-भाषा विवेचन—

संस्कृत और अंग्रेजी काव्यशास्त्र का अध्ययन अथवा विवेचन हिन्दी काव्यशास्त्र की मौलिकता एवं उस पर संस्कृत और अंग्रेजी काव्यशास्त्र के प्रभाव की गवेषणा और हिन्दी काव्यशास्त्र के विकास के अध्ययन की प्रवृत्ति को प्रमाणित करता है। इन प्राचीन भारतीय साहित्य और आंग्ल साहित्य ने हिन्दी साहित्य के विकास में पूर्ण सहयोग दिया है—काव्यशास्त्र इसका अपवाद नहीं है।[1] अंग्रेजों के आगमन से पूर्व तक, हिन्दी काव्यशास्त्र प्रमुख रूप से संस्कृत काव्यशास्त्र से सम्बद्ध था। यह तो सर्व विदित ही है कि प्राकृत अपभ्रंश और देशज भाषाओं ने संस्कृत की साहित्यिकता और नियमबद्ध प्रणाली के प्रति विद्रोहात्मक रुख अपनाया था और उन्होंने जन जीवन के क्रिया कलाप को भी महत्ता प्रदान की।[2] ये भाषायें धार्मिक बोझ से दबी रहती थीं और उक्त धर्मावलम्बियों द्वारा मनोरंजन को हेय माना गया था। इस निमित्त इनमें काव्यशास्त्र का अभाव सा रहा। इनमें तो पूर्व प्रचलित काव्य सिद्धान्तों या संस्कृत के काव्यशास्त्र का उपयोग आवश्यकतानुसार कर लिया जाता था।[3] [4]

१—(क) आचार्य श्री नरेन्द्रदेव हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास (लेखक—डॉ० भागीरथ मिश्र वक्तव्य पृष्ठ आ।

(ख) डा० नगेन्द्र—भारतीय काव्यशास्त्र की भूमिका—वक्तव्य (द्वितीय संस्करण)।

२—डा० भागीरथ मिश्र—हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास—पृष्ठ ३३६।

३—डा० भगवत स्वरूप मिश्र—हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास—पृष्ठ १५५।

४—डा० भागीरथ मिश्र—हिन्दी रीति साहित्य, पृष्ठ ६।

इस प्रकार उन भाषाओं में काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का अभाव स्वाभाविक था। अलबरूनी ने लगभग १०२५ ई० में भारत के बारे में लिखा है कि भारतीय आर्य भाषा दो रूपों में विभाजित थी एक तो उपेक्षित कथ्य भाषा जिसका कथन साधारण जन में प्रचार था और दूसरी शिष्ट भाषा सुशिक्षित उच्च वर्ग में प्रचलित साहित्यिक भाषा जिसे बहुत से लोग अध्ययन कर प्राप्त करते थे और जो व्याकरण विभक्ति-ज्ञान, व्युत्पत्ति तथा व्याकरण के नियमों एवं अलङ्कार, रसशास्त्र की बारीकियों से सम्बद्ध था।[1] इन देश भाषाओं को भी संस्कृत का पृष्ठपोषण सदैव ही देश के आदर की संस्कृति की रक्षा करती थी।[2] यद्यपि राजा महाराजा मनोरंजन इन भाषाओं से करते थे किन्तु इनमें कोई प्रौढ़ लक्षण ग्रन्थ नहीं थे। यह भी यह स्वाभाविक ही, क्योंकि लक्षण ग्रन्थों का निर्माण लक्ष्य ग्रन्थों के उपरान्त ही होता है और देशज भाषायें कथ्य भाषायें थीं, जिनका उपयोग धर्म प्रचार के लिये भी किया जाता था।

देशी भाषायें, लक्षण ग्रन्थ—

फिर भी जब ये भाषायें स्वयं साहित्यिक दृष्टि से समृद्ध होने लगीं तो इनमें भी काव्यशास्त्रीय अध्ययन होने लगा। इस दृष्टि से निम्नांकित पुस्तकें अवलोकनीय हैं।[3] सिद्धशाल्पिपा या रत्नाकर शालिभद्र छन्दोरत्नाकर सन् १००० ई०, व आचार्य हेमचन्द्र सूरी (११७६ ई०) के प्राकृत व्याकरण, छन्दोनुशासन तथा देशी नाममाला कोश आदि। इन्होंने अपने व्याकरण ग्रन्थ सिद्ध हेमचन्द्र शब्दानुशासन में अपभ्रंश के उदाहरणों में दोहे या पद्य उद्धृत किये हैं, जिनमें से अधिकांश इनके समय से पहले के हैं।[4] इनमें शृङ्गारिकता और दूतीवर्णन इत्यादि प्राप्त होते हैं जिनका सांगोपांग वर्णन रीतिकाल में प्राप्त होता है। उदाहरणार्थ—

"जइ सोन आवइ दूइ घर काईं अहो मुह तुज्झ।
वयण ज खण्डइ तउ सहिए, सो पिउ होइन मुज्झ॥"

एवम्—

"पिय संगमि कउ निद्दडी ? पिअ हो परोक्खहो केंव।
मइ बिन्नि वि विन्नासिआ निद्द न एम्वन तम्व॥"

(प्राकृत व्याकरण ८ ४ ४८)

१—डा० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या—भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी पृष्ठ ११८
२—वही।
३—(क) राहुल सांकृत्यायन अवतरणिका पृष्ठ ४३।
(ख) डा० भगीरथ मिश्र—हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ ४५।
४—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २०।

यह बिहारी के इस दोह से तुलनीय है—

'विधना इन अँखियान, सुख सर्जो ही नाहि ।
देखत बने न देखते, अनदेखे अकुलाहि ॥"

और प्रथम पद्य भाग भिखारीदास के इस कथन का पूर्वाभास देता है—

सखी तू नक न सकुच मन किये सबै मम काम ।
अब आने चित मुचितई सुख पहै परिणाम ।[1]

नखशिखादि वर्णन—

इनके साथ ही कतिपय ऐसे ग्रन्थ भी प्राप्त होते हैं जिनमें शास्त्रीय दृष्टि से द्रष्टव्य नखशिख, ऋतु वर्णन व रतिचित्रण तक प्राप्त होते हैं। जैन मुनि नयनन्द कृत सुदर्शन चरित्र नामक अपभ्रंश ग्रन्थ इसी श्रेणी में रखा जा सकता है। अनुयोग द्वार सुत्त में शान्तरस के स्थायी भाव का वर्णन मिलता है यहाँ एक मनोवैज्ञानिक तथ्य का कथन सामयिक ही होगा कि प्रारम्भ में तो जब लोगों में धार्मिक उत्साह था वे मनोरंजन की ओर आकृष्ट नहीं हुए किन्तु शनैः शनैः जैसे वह उत्साह कम होता गया, समाज मनोरंजन और तदनन्तर शास्त्रीय विवेचन की ओर बढ़ा लगा। इङ्गलैण्ड में भी नाटकों के लिये यही बात हुई।[2] अपभ्रंश और देशज भाषाओं में कालान्तर में ऐसी परम्परा भी प्राप्त होने लगी जिसमें अलङ्कार, छन्द, व्याकरण आदि के ग्रन्थों में उदाहरण स्वरूप एसे काव्य खड दिये गये जो शास्त्रीय दृष्टि से अवलोकनीय हैं।[3] [4] इन ग्रन्थों का काव्यादर्श अधिकांशतः संस्कृत काव्यशास्त्र से प्रभावित था और संस्कृत के लक्ष्य ग्रन्थ—महाभारत, रामायण आदि इनके साहित्यिक आदर्श थे।[5] इनमें लोक भाषा को महत्त्व दिया जाता था।[6] पालि भाषा में सुबोधालङ्कार, कविसार प्रकरण और कविसारत्थिकनिस्साय नामक पुस्तकों का प्रणयन होने लगा।

१—(क) देखिये भिखारीदास का विवेचन—प्रस्तुत प्रबन्ध।
(ख) काव्य निर्णय पृष्ठ ५१।

२—इन पंक्तियों के लेखक का पी एच० डी० का शोध प्रबन्ध—हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन, पृष्ठ १२५–१५०।

३—डा० रामसिंह तोमर, आलोचना अङ्क ८, पृष्ठ ६१।

४—डा० रामबहोरी शुक्ल एवं डा० भगीरथ मिश्र—हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास पृष्ठ ६७।

५—डा० भगीरथ मिश्र, हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृष्ठ ३३६।

६—डा० हरवंश कोछड़ अपभ्रंश साहित्य अध्याय १।

हिन्दी की शास्त्रीय परम्परा—

हिंदी के सर्वप्रथम आदि कवि पुष्य विरचित छन्दशास्त्र का उल्लेख इतिहास ग्रन्थों में किया जाता है।[1] किन्तु तथ्य यह है कि वह ग्रन्थ अप्राप्य ही है। फिर भी अनुमान लगाया जाता है कि सप्तम शती में भारतीय काव्यशास्त्र पर देश भाषा में एक पुस्तक लिखी गई हो यह कोई अविश्वसनीय आश्चर्यजनक तथ्य नहीं है।[2] अतएव हिन्दी के प्रारम्भिक काल में काव्यशास्त्र का उन्नयन नहीं हो सका था। काव्यशास्त्र की छाया तो लक्ष्य ग्रन्थों—काव्य ग्रन्थों के निर्माण में स्पष्ट दिखायी देती है।

काव्य शास्त्र और लक्ष्य ग्रन्थ—

आज हम कविता से भिन्न आलोचना सिद्धान्तों को प्राप्त करने के अभ्यस्त हो गये हैं[3] परन्तु हिन्दी के प्रारम्भिक काल में संस्कृत समीक्षा के अनुकूल काव्य ग्रन्थों में ही काव्यांग सम्बन्धी नियम प्राप्त हो जाते हैं। स्वयंभू की निम्नांकित पंक्तियों में उनके कला विधान पर प्रकाश डाला गया है—

"अक्खरवास जलोह मणोहर। सुयलाकर छंद मच्छोहर॥
दीह-समास-पवाह- वंकिय। सक्कय पायय पुलिणालंकिय॥
देसी भासा उभय तडुज्जल। कवि दुक्कर घण सद्दसिलायल॥
अत्थ बहल कल्लोलाणिटिठय। आसा सय सम ऊह परिटठय॥"[*]

उपर्युक्त चौपाइयों में वर्णविन्यास को वक्रता कहा गया है। सुन्दर अलंकारों का वाक्य वक्रता की संज्ञा दी गई। संस्कृत प्राकृत के शब्द तथा घन शब्द में पर्याय वक्रता की स्वीकृति दी गई।[4] यहाँ उन उपकरणों का उल्लेख किया गया है जिन्हें सतत्त्व ये माना गया था। अन्तर गुम्फ अलंकार छन्द दीर्घसमास अथवाल्प आदि में रीति के तत्व दिखायी देते हैं।[5] उनकी यह स्पष्ट रचना भी शास्त्रीय साम्यरूपता का सुन्दर उदाहरण है।

१—(क) शिवसिंह सरोज पृष्ठ ६ (भूमिका)।
(ख) डा० ग्रियर्सन—हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास (अनुवादक—किशोरीलाल गुप्त) पृष्ठ ७०। द्वितीय संस्करण।
(ग) आचार्य रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ ३।
२—डा० ओमप्रकाश हिन्दी अलंकार साहित्य पृष्ठ ४८।
३—डा० भगीरथ मिश्र—हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ ३३८।
४—डा० नगेन्द्र हिंदी वक्रोक्ति काव्यजीवित भूमिका पृष्ठ २८२।
५—डा० नगेन्द्र हिन्दी काव्यालंकारसूत्र भूमिका पृष्ठ १४२।
* पउम चरि ३१/२१ डा० हरिवल्लभ भियाणी द्वारा सपादित।

उसी युग में कहा जाता था—

णा णिसुणिउ पंच महायकव्वु। णउ भरहुण लक्खणु छन्दसुबु॥
णउ बुज्झिउ पिंगल पत्थारु। णउ भामह दण्डिउ लकारु॥[1]
(रामायण १।३)

संस्कृत साहित्य में लक्षण ग्रन्थ प्राप्त होते हैं और उदाहरण स्वरूप कवियों की आलोचना भी कर दी जाती है अथवा उनका ही ग्रन्थ बना दिया जाता है किन्तु कवियों और कृतियों से सम्बन्धित स्वतन्त्र आलोचनात्मक ग्रन्थ प्राप्त नहीं होते हैं अतएव हिन्दी में प्रारम्भिक काल या आदिकाल में प्राप्य यह प्रवृत्ति संस्कृत शास्त्रों के अनुकूल है।[2]

लक्ष्य ग्रन्थ निर्माण और काव्यशास्त्र--

इस युग में संस्कृत काव्यशास्त्रीय नियमों ने लक्ष्य ग्रन्थ निर्माण में सहयोग दिया। अपभ्रंश काल तक-हिन्दी के आदिकाल तक संस्कृत के प्रबन्ध काव्य जो लक्षण ग्रन्थों के अनुकूल थे प्रभुता सम्पन्न हो चुके थे। इन काव्यों ने संस्कृत के नाटकों को भी प्रभावित किया जिसके कारण संस्कृत में ही भवभूति के उत्तर राम चरित जैसे पठनीय नाटकों का निर्माण हुआ और हिन्दी में भी समयसार सभासार, हनुमन्नाटक और करुणाभरण जैसे नाटक सामने आने लगे। देशी भाषाओं के नाटकों में 'सह गुणे जो मानव' के प्रयोग परिलक्षित होने लगे।[3] अतएव उक्त संस्कृत प्रबन्ध काव्यों का हिन्दी की प्रबन्धधारा पर भी प्रभाव पड़ने लगा और हिन्दी के रासो ग्रन्थ महाभारत के समान संकलन काव्य से दृष्टिगोचर होने लगे। पृथ्वीराज रासो का व्यूह वर्णन महाभारत से प्रभावित प्रतीत होता है।[4] इसमें छः ऋतुओं का वर्णन है जो उद्दीपन विभाव के अनुकूल है। उदाहरणार्थ वसंत वर्णन नीचे दिया जाता है—

पद्मारी अब फुल्लिय, कदब रमणी दिव दीप।
भंवर भाव भुल्ले भ्रमत मकरंद बरीस॥
बहत वात उज्जलति मोर अति विरह अगनी पिय।
कुहु कुहत कलकण्ठ पत्ररा९त रति अगिय॥

१—डा० नगेन्द्र हिन्दी वक्रोक्ति जीवित भूमिका पृष्ठ २५०।
२—डा० गुलाबराय—अध्ययन और आस्वाद पृष्ठ ७०
३—विस्तृत विवेचन के लिये देखिये—हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन—अध्याय, पूर्व भारतेन्दु नाटक।
४—डा० गोविन्दराम शर्मा—हिन्दी के आधुनिक महाकाव्य पृष्ठ ६१।

पयलगि पान पति बो जवो, नाह नै ह मुस चित धरहू।
दिन दिन अवद्धि जुब्बन घटै क्त यसत न गयन करहू ॥[१]

इञ्छिनी पद्मावती और सयोगिता के रूप सौंदय वणन म नखशिख वणन भी प्राप्त हो जाता है।[२] सयोगिता का रूप वणन देखिये—

सिरमद्धि सास फूलह सुभास किय जमन अद्ध सुन गिरी प्रकास
कु डली मध बदन सुचन्द कस्तूर दिगहै घनसार बिंद। आदि

आलोच्य काल म छप्पय पद्धति का अनुसरण किया गया था[३] और काव्य पद्धति पर प्रबध काव्यों के साथ काव्यशास्त्र और कवि शिक्षा ग्रथो का प्रभाव पाया जाता है।[४]

रासो ग्रथो के श्रृगार के वणन एव रानियो के विरह निवेदन इसके उदाहरण हैं—

पीव चितौड न आविउ सावण पैली तीज
ऊभी जोवे बाट रति विरहिणी खिण खिण खाव खीज।[५]

एव नरपति नाल्ह ने वीसल देव रासा म रानी की व्यथा प्रकट करते हुए लिखा है—

"अस्त्रिय जनम काईं दीधउ महेश, अवर जनम थारे घणारे नरेश
रानी न सिरजाय रोझडी घणरट न सिरजोय धोली गाय।"

विद्यापति की रचनाओं म लो एस वणनो के साथ काव्यशास्त्रीय पदावली भी प्राप्त होती है।

विद्यापति —विद्यापति ने अपनी भाषा शैली को बालचन्द्र के समान चारु कहा है जिसके मूल म नागर मनमोहिनी शक्ति है।[६]

१—पृथ्वी राज रासु समय ६१ छद १० एव नयन सुकज्जल रेख तपि निवद्दल छवि कारिय आदि।

२—डा० भागीरथ मिश्र एव डॉ० रामबहोरी शुक्ल—हिन्दी साहित्य का उद्‌भव और विकास पृष्ठ ७६।

३—आचाय रामचन्द्र शुक्ल—इतिहास पृष्ठ १२३।

४—डा० भागीरथ मिश्र—हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास पृष्ठ ३३८।

५—खुमाण रासौ

६—डा० नगेन्द्र—हिन्दी वक्रोक्ति जीवित पृष्ठ २५२

"बालचन्द विज्जवई भाषा । दुहु नहि लागई दुज्जन आसा ।
ओ परमेसर हर सिर सोहाई । ई निच्चय नायर मन मोहई ।"

और उनके काव्यों में विदग्ध जनों के रस ग्रहण करने का भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है ।[1]

विद्यापति के ग्रंथ और शास्त्रीय लक्षण —

विद्यापति ने शृंगार के सुंदर चित्र प्रस्तुत किये हैं ।[2] इनके वर्णनों में रीति कालीन चित्र का (पूर्व) रूप अवश्य ही विद्यमान है । यथा—

कुच जुग चारु चकेवा,
निअ कुल आनि मिला ओल कोने देवा ।
तें सङ्काजें भुज पासें,
बाँधि धएल उडि जात अकासे ।[3]

इन वर्णनों से डा० नगेन्द्र का कथन सत्य प्रतीत होता है कि चंद और विद्यापति आदि को रीति शास्त्र का पूरा पूरा ज्ञान था और उस समय तक रीति ग्रंथों का बहुत कुछ प्रचार हिन्दी में निश्चित रूप से हो चुका था ।[4]

अन्य देशज भाषाओं में भी ऐसे ही वर्णन और शास्त्रीयतत्त्व प्राप्त होते हैं ।

डिंगल वयण सगाई —डिंगल में भी काव्यशास्त्रीय तत्त्वों के विकास के चिन्ह मिलते हैं । वयण सगाई जैसे अलंकार और वेलिय गीत का होना हमारे कथन की पुष्टि करता है । यहां तो मौखिक रूप से आलोचनात्मक और प्रशंसात्मक उक्तियाँ भी प्राप्त होती हैं—

सोरठियो दूहो भलो भली मरवण रीवात ।
जोवण छाई धण भली तारों छाई रात ।

और वयणसगाई की तो वह चर्चित परिभाषा है ही—

१—डॉ० नगेन्द्र—हिन्दी वक्रोक्ति जीवित पृष्ठ २८२

२—डॉ० भागीरथ मिश्र एवं डा० रामबहोरी शुक्ल—हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास पृष्ठ ८३ ।

३—विद्यापति पदावली पृष्ठ ३३ (गगानन्द सिंह द्वारा सम्पादित । ऐसे ही उदाहरणों के लिये देखिये डा० उमेश मिश्र द्वारा सम्पादित विद्यापति की पदावली पृष्ठ १००, ११२ ४८ और १२१)

४—डा० नगेन्द्र रीतिकाव्य की भूमिका पृष्ठ १७२।

अमीर खुसरो का जन्म हिजरी सन् ६५१, तदनुसार सम्वत् १३१० वि० में हुआ और उनकी मृत्यु वि० स० १३८१ में हुई। वे हिन्दी के प्रारम्भिक कवियों में से हैं और उनके जीवन के महत्वपूर्ण अनुभव अंग्रेजी के प्रारम्भिक कवि चॉसर के अनुभवों से निकट साम्य रखते हैं। यथा, अमीर खुसरो, बल्बन के पुत्र मुहम्मद के दरबारी शायर थे। जब मुगलों ने पंजाब पर आक्रमण किया तो खुसरो बन्दी बना लिये गये और वे बड़ी कठिनाई से मुक्त हो सके। वे कहते हैं —

मुसलमानों के खून ने बहकर रेगिस्तान को रँगा।

× × ×

मैं भी पकड़ा गया और भय से मेरी नसों में खून बहने को एक रक्त बिन्दु भी नहीं रह गया।

× × ×

मुझे पकड़ने वाला मंगोल घोड़े पर बैठा था जैसे पहाड़ के सानु पर सिंह टहल रहा हो।

× × ×

लेकिन अल्ला की मेहरबानी से मुझे छुट्टी मिल गई।

(मध्य एशिया का इतिहास पृष्ठ ४८३-८४, वसीद का अनु०)

इसी भाँति चासर भी इङ्गलैण्ड के राज्य कवि थे और फ्रांस वालों द्वारा बन्दी बना लिये गये थे तथा वे भी कठिनाई से मुक्ति प्राप्त कर सके थे। इंगलैण्ड के राजा का घोड़ा भी उसी युद्ध में फ्रांस वालों ने छीन लिया था और इंगलैण्ड के राजा को अपना घोड़ा छुड़ाने के लिये चॉसर को मुक्त कराने अधिक धन फ्रांस वालों को देना पड़ा था। फ्रांस की दृष्टि में इंगलैण्ड के राजकवि से अधिक महत्वपूर्ण था इंगलैण्ड के राजा का घोड़ा।

इसमें रहस्यवादी ढंग से नायक की नायिका से मिलन की तीव्र उत्कंठा प्रतीत होती है। इसी भाँति काव्य निर्माण सम्बन्धी उक्तियाँ भी प्राप्त होती हैं—

उक्ति धर्म विशालस्य राजनीति नवरस।
षट भाषा पुराणंच कुराणंच कथितं मया॥

अतएव डॉ० भागीरथ मिश्र के साथ यह निश्चित रूपेण कहा जा सकता है कि रसनायिका भेद आदि के भी कुछ न कुछ वर्णन प्राचीन हिन्दी ग्रन्थों में भी प्राप्त हो

जातेहै ।[1]साथ ही यह भी तथ्य है कि, इस काल म लक्ष्य ग्रन्थो के निर्माण म जा शास्त्रीय पद्धति निर्वाह की भावना दिखाई देती है वह इस काल के साहित्यकारा पर सस्कृत काव्य-शास्त्र के प्रभाव को सिद्ध करती है। यह युग काव्यशास्त्र के प्रति उदासीन नही था और काव्य निर्माण की पद्धति पर यदा कदा रचयिताओ ने अपने अपने शास्त्रीय सिद्धान्त प्रतिपादित किय हैं।

जिस प्रकार स पाश्चात्य साहित्यालोचना म होमर की निम्नाकित उक्ति—"कलाकार ने सोन की ढाल द्वारा मिट्टी का विभ्रम उत्पन्न किया, आलोचना की प्रथम उक्ति मानी जाती है[2]—उसी प्रकार से वीरगाथाकाल की उपयु क्त पद्धतियो से काव्यशास्त्र का प्रारम्भ अवश्य ही माना जाना चाहिय। ये पद्धतिया आगामी युगो म विकसित होने लगी।

१—डॉ० भागीरथ मिश्र-हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास द्वितीय सस्करण पृष्ठ ४५।

२—स्कॉट जेम्स, मेकिंग ऑफ लिटरेचर होमर का विवचन एव भूमिका।

'ख' भाग—भक्तिकाल

भक्तिकाल के उदय के बारे म कुछ विद्वानो ने बताया कि वह पराजित जाति के मानस का स्वाभाविक चित्रण था[1] और कतिपय विबुधों ने इसे साहित्यिक परपरा का क्रमिक विकास माना है।[2] प्रथम वग के आलोचको न इतिहास को सामयिक खड म ही देखा और दूसरे खेम के भावक, साहित्य और सस्कृति के क्रमबद्ध विकास को प्रस्तुत करत हैं। हमारे दृष्टिकोण से सत्य यह है कि भक्ति काल म शास्त्रीय परम्परा का उल्लघन नही हो सका। आज तो आलोचक भक्तिकालीन आधार भूत सिद्धान्तो के अध्ययन की आवश्यकता पर बल दते हैं।[3] इस युग के काव्य को रसध्वनिवाद के अ तगत भी माना जाता है।[4] इस काल म शास्त्रीय सिद्धान्तो ने विकास किया।

भक्तिकालीन कवि—

आलोच्य काल म भक्ति रस और वात्सल्य रस को भी काव्य म स्थान दिया गया। माधुय भक्ति का रूप गोस्वामी से बल मिला। इसम सहयोग दिया सनातन गोस्वामी, जीव गास्वामी और मधुसूदन सरस्वती न। जायसी, सूर और तुलसी आदि ने का य म इन सिद्धा ता के व्यवहारिक पक्ष का प्रस्तुत किया। न ददास ने सस्कृत की रसमजरी के आधार पर हि दी रसमजरी की रचना की, मोहनलाल मिश्र का शृङ्गार सागर और श्रुति भूषण का भूप भूषण शास्त्रीय दृष्टि स अवलाकनीय है।

मलिक माहम्मद जायसी ने पद्मावत को एक रूपक के रूप म चित्रित किया। यथा—

'तन चितवर मन राजा किन्हा" आदि।

१—(क) आचाय रामचन्द्र शुक्ल—हि दी साहित्य का इतिहास, १२वाँ सस्करण, पृष्ठ ८६।
(ख) डा० रामबहोरी शुक्ल और डॉ० भागीरथ मिश्र—हि दी साहित्य का उद्‌भव और विकास, पृष्ठ १४३।

२—डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी—हि दी साहित्य की भूमिका।

३—डा० हरवशलाल शर्मा की ऐसी मा यता है।

४—डा० मनाहर काले—हि दी मराठी में काव्यशास्त्रीय अध्ययन, पृष्ठ ६११

इसम प्रब ध परम्परा निर्वाह और रूपक प्रयोग शास्त्रीय दृष्टि स उल्लेखनीय है। सिहल द्वीप, जल क्रीडा[1] समुद्र, विवाह युद्ध और नख शिख वर्णन शास्त्रीय दृष्टि स दृष्ट य हैं। इसम श्रृङ्गार रस को प्रमुख स्थान मिला है और करुण, वीर, शान्त और वीभत्स रसो का समावेश भी इसम किया गया है—पद्मावती के दाँता की शोभा भी इस दृष्टि स दर्शनीय है—

'ससी मुख जबहिं कुछु बाता। उठत ओठ सूरज जस राता ॥
दसन चसन सौं किरण जो फूटहिं। सब जग जनहुँ फुलझरी छूटहिं ॥
जानहुँ ससि मह बीजु दिखावा। चौंधि पर किछु कहैं न आवा ॥'[2]

जायसी की काव्य द्वारा अमर हो जाने की भावना भी संस्कृत का यशास्त्री से तुलनीय है। य कहते हैं—

"कहँ सुरूप पद्मावती रानी। कोई न रहा जग रही कहानी ॥
× × ×
जो यह पढ़ कहानी हम्ह सवरे दुइ बोल ॥"[3]

जायसी ने यह आकांक्षा प्रकट की कि यह काव्य यशस्यकृत के अनुकूल है। उनकी कविता की सरसता को आकने वाले सामाजिक भी सहृदय हों। यह संस्कृत काव्यशास्त्र म रसिक सामाजिक की आवश्यकता बतलाने वाले ग्र थों क अनुकूल है। उदाहरणार्थ जायसी कहते हैं—

'कवि बिलास रस कमला पूरी। दूरी सो नियर नियर सो दूरी ॥
नियरे दूर, फूल जस काँटा। दूरी सो नियरे जस गुड चाँटा ॥
भँवर आई बन खण्ड सन लेह कमल की बास।
दादुर बास न पावई भलेहिं जो आछे पास ॥"[4]

एव संस्कृत म प्राप्त होता है—

तत्व किमपि काव्यानाम् जानाति विरलो भुवि।
मार्मिक को मरन्दानामन्तरेण मधुव्रतम् ॥"

अतएव यह संस्कृत का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है।

जायसी निष्कर्ष—

अन्त म यह कहा जा सकता है कि रूपक रचना सौन्दर्य निवचन रसिक सामाजिक की आकांक्षा और काव्य द्वारा अमर हो जाने की भावना उन पर संस्कृत

१—पद्मावत—मानसरोवर खण्ड २।८
२—पद्मावती रूपचर्चा खड।
३—वासुदेव शरण अग्रवाल—पद्मावत ५८।१
४—वही पृ० २७

काव्यशास्त्र की छाया प्रदर्शित करती है। उक्ति की वक्रता की दृष्टि से कबीरदास जी का काव्य भी वक्रोक्ति के निकट ही दिखाई देता है।[1]

कबीरदास—

कबीरदास ने पुस्तक ज्ञान को हेय बताया किंतु शास्त्रीय पक्ष का उल्लंघन वे भी नहीं कर सके हैं। दोहा के शैलीगत निर्वाह में और कतिपय स्वाभाविक अलंकारों के उपयोग में उन्होंने शास्त्रीय परम्परा का निर्वाह किया है। उनका काव्यादर्श स्वानुभूति प्रकाशन था,[2] जो वाल्मीकि के 'मानिषाद' के अनुकूल है। तुलसीदासजी तो शास्त्र और काव्य के पण्डित माने जाते हैं।

तुलसीदास—

तुलसीदासजी के मानस क्षेत्र अलंकारों के उपयोग और बरवै रामायण का प्रणयन उनके काव्य में रीति धारा और काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों के उदाहरण हैं। यही क्या यह तथ्य इस ओर भी संकेत करता है कि अब शास्त्रीय विवेचन विकास की ओर उन्मुख होगा क्योंकि तुलसी जैसे भक्त कवि भी अलंकार वर्णन की ओर आकृष्ट हुए हैं। इनके अलंकारों पर तो आगामी रचयिताओं ने लक्षण ग्रन्थ निर्माण किये।[3] उन्होंने कहा है— 'रामायण में जो धरे अलंकार के भेद और औरन के लच्छन लिये रामायण के लच्छ" तुलसीदासजी ने— गिरा अर्थ जल बीचि सम कहियतु भिन्न न भिन्न। कह कर वाणी और अर्थ को एक करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार लक्षण ग्रंथों के अनुसार शास्त्रीय उक्ति कह सुनाई है। ऐसी उक्तियाँ इनके प्रौढ़ सैद्धान्तिक ज्ञान की परिचायक है।[4] इन्होंने 'गिरा अनयन नयन बिनु बानी' कह कर स्वानुभूति पर बल दिया है जो संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल है। इन्होंने परमात्मा का गुणगान करना ही श्रेष्ठ कविता का सदुपयोग माना है।[5] उनका मत है कि परिष्कृत

१—डॉ० सरनामसिंहजी—कबीर एक विवेचन—भूमिका।

२—डा० रामरतन भटनागर—सूरसाहित्य की भूमिका, पृष्ठ १३०।

३—डा० ओमप्रकाश—हिंदी में अलंकार साहित्य पृष्ठ १७६।

४—डा० भगवत स्वरूप—हिंदी आलोचना उद्भव और विकास पृष्ठ १६२।

५—(क) डा० भागीरथ मिश्र—हिंदी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ ३८७।

(ख) कीन्हे प्राकृत जन गुणगाना। सिर धुन गिरा लगी पछताना॥ बालकाण्ड दोहा १०।

हृदय में सरस्वती की कृपा से काव्य के मुक्ता फल उत्पन्न होते हैं।[1] यहाँ एक तथ्य उल्लेखनीय और अवलोकनीय है कि संस्कृत के पण्डित जहाँ अपने ग्रंथों और काव्यों की उत्पत्ति ब्रह्मा से या अन्य किसी देवता अथवा उसके वाहन से बताते हैं।[2] [3] वहीं प्राकृत अपभ्रंश वाले अपने को और अपने काव्य को हीन ही बताते हैं। सन्देश रासककार ने कहा कि उसका काव्य उन लोगों को तब ही आनन्द देगा जब कि संस्कृत के उत्तम काव्य उपलब्ध न हों। इसी भाँति निम्नांकित पंक्तियाँ भी पठनीय हैं —

> बुहयण सयंभु पइ विण्णवइ महु सरिसहु अण्णा हि कुकई।
> वायरणु कयाई ण जाणियउ। णउ बित्ति सुत्त वक्खाणियउ॥ आदि
> (रामायण १।३)

अर्थात् कवि कहते हैं कि वे व्याकरण वृत्ति सूत्र, महाकाव्य शास्त्र, छन्द और पिंगल से अनभिज्ञ हैं। तुलसीदास ने इसी प्रकार का वर्णन किया है —

> कवि न होऊ नहीं चतुर प्रवीनु। सकल कला सब विद्याहीनु॥
> कवित्त विवेक एक नहीं मोरे। सत्य कहऊ लिखि कागद कोरे॥[4] [5]

इससे प्रतीत होता है कि संस्कृत के साहित्य की अपनी आलोचना करते हुए अपने को पंडित शास्त्रज्ञ और दिव्य आत्माओं से सम्बन्धित बताते थे वहीं तुलसीदासजी ने देशज भाषा के अनुकूल रहकर संस्कृत के साहित्यकारों के प्रतिकूल कार्य किया है। आत्मालोचन में हिन्दी काव्य शास्त्रकार और हिन्दी के कवि अधिकांशतः संस्कृत के पण्डितों के अनुकूल न होकर देशज कवियों के अनुकूल रहे हैं। उनमें पण्डितराज जगन्नाथ जैसा अहंभाव साधारणतया देखने को नहीं मिलता है। महाकाव्य के पहले तुलसी की रूपक बाँधने की प्रवृत्ति भी स्वयंभू के अनुकूल है देखिये जहाँ यह कहा है—

१—डा० भागीरथ मिश्र—हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास एवं मानस बालकाण्ड ११—

हृदय सिन्धु मति सीप समाना होंई कविता मुक्ता मनि चारु॥

२—भरत कृत नाट्य शास्त्र—नाटकों की उत्पत्ति की कथा।

३—राजशेखर द्वारा प्रस्तुत की गई काव्य और साहित्य की उत्पत्ति की कथाएँ।

४—जानकी मंगल में भी कहा है—कवित रीति नहिं जानी, कवि न कहाओं।

५—इन पंक्तियों के लेखक का पी-एच डी के शोध प्रबन्ध का—'पूर्व भारतेन्दु नाटकों का विवेचन'।

आखर अरथ अलङ्कृत नाना । छद प्रबध अनेक विधाना ॥
भाव भेद रस भेद अपारा । कविता दोष गुन विविध प्रकारा ॥

वहां हम ज्ञात होता है कि यह वर्ण अथ, अलकार, छन्द वस्तु विधान रति भाव और दोष आदि से परिचित थे। इस प्रकार इन्होंने रीति तत्वों की ओर सकेत भी किया है।[1]

उत्तम काव्य म तुलसीदासजी ने निम्नाकित गुणों को अनिवार्य पाया है। वे कहते हैं—

'जो प्रबन्ध बुध नहिं आदरहिं । सो श्रम वादि बाल कवि करहिं ॥
कीरति भनिति भूति भलि सोइ । सुरसरि सम सब कहँ हित होइ ॥[2]

अर्थात् भावक समाज म उस काव्य का आदर होना चाहिये एव वह लोक कल्याणकारी भी होना चाहिये। यह 'कवि करोति काव्यानि स्वाद जानन्ति पण्डित' के स्वर मे सुनाई देता है। इसके लिये 'सहज बैर बिसराई' को आवश्यक समझा गया है। कवि को निश्छल हृदय वाला भी होना चाहिये।

तुलसीदासजी ने कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा को भिन्न माना है और उसे सुन्दर रूप से अभिव्यक्त किया है, जिसकी डॉ० भगवत स्वरूप ने मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है।[3] तुलसी कहते हैं—

मणि माणिक मुक्ता छवि जसी । अहि गिरि गज सिर सोहि न तसी ।
नृप किशोर तरुणी तन पाइ । लहइ सकल सोभा अधिकाइ ॥
तैसेहि सुकवि कवित बुध कहहिं । उपजत अनत अनत छवि लहहिं ॥
(बालकाण्ड मू० गु० पृष्ठ १०)

इन्होंने कविता की परिभाषा दी है—

"भाव भेद रस भेद अपारा । कवित दोष गुण विविध प्रकारा ॥
गुणन अलकारनि सहित दूषण रहित जो होय ।
शब्द अर्थ जुत है जहा कवित कहावत सोय ॥"

इससे मम्मट की धारणा की पुष्टि होती है। इन्होंने सस्कृत काव्य शास्त्रकारों के समान ही काव्य पुरुष की कल्पना करते हुए कहा है—

१—डॉ० नगेन्द्र-हिन्दी वक्रोक्ति काव्य जीवित पृष्ठ १४४।
डा० नगेन्द्र ने भक्ति काव्य में रीति और वक्रोक्ति तत्त्वों को पाया है।'
२—मानस बालकाड १३-८, ६।
३—हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास पृष्ठ १६३।

'छंद चरण भूषण हृदय कर मुख भाव अनुभाव ।
चल धाइ श्रुति सचारि काव्य सु अंग सुभाव ॥"

इन्होंने कविमनिषी परिभू स्वयंभू का भी स्मरण दिलाया है।[1] वे जिन गुणों की ओर सचेष्ट रहे हैं उनमें वक्ता की प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों ही रूपों में सम्भावना मानी जाती है।

निष्कर्ष—

इससे पता होता है कि तुलसीदासजी ने व्रज भाषा के ग्रन्थों से, संस्कृत के काव्यों से और काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों से सामग्री ग्रहण कर अपने ग्रन्थों का निर्माण किया। उनकी मधुर वृत्ति तो प्रसिद्ध ही है। उनमें भक्ति का आधिक्य है—भाव पक्ष को कला पक्ष से अधिक महत्ता दी गई है। अतः हम उनकी भाव सबलता की प्रशंसा किए बिना नहीं रह सकते किन्तु उनका काव्यशास्त्रीय ज्ञान भी सुन्दर है और हम उसे दृष्टि से ओझल नहीं कर सकते।

सूरदास—

भक्त कवि सूरदासजी भी काव्यशास्त्र के लक्षणों से परिचित अवश्य थे, वे तुलसी के समान ही उनसे दूर नहीं रह सके। इनके काव्य में भी अलंकारों, संयोग वियोग और प्रकृति चित्रण के उदाहरण प्राप्त होते हैं। इनके निम्नांकित पद तो रीतिकालीन काव्य में भी स्थान न मानते हैं—

धेनु दुहात अति ही रति बाढ़ी।
एक धार दोहनि पहुँचावत एक धार जहँ प्यारी ठाढ़ी।
मोहन कर तें धार चलति पय मोहनि मुख अति ही छवि बाढ़ी॥

साहित्य लहरी—

यदि साहित्य लहरी को सूरदासजी की रचना मानी जाय तब तो इनकी काव्य शास्त्रीय रचना और भी प्रौढ़ रूप में दिखाई देती है। आलोचकों ने सूर काव्य में प्राप्त रीति रस और अलंकार निरूपण को युग प्रभाव माना है।[2] अर्थात् भक्तिकाल में सूर के रचना काल तक शास्त्रीय पद्धति प्रबल हो चुकी थी।[3] सूर के कूट पद सूर

१ हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास पृष्ठ १६४—पाद टिप्पणी संख्या २
२—सूर साहित्य की भूमिका में डा० रामरतन भटनागर ने (पृष्ठ १३०) तत्कालीन प्रवृत्तियों का विवेचन करते हुए अलङ्कारों के निरूपण को युग प्रभाव माना है।
३—डा० हरवंशलाल शर्मा—सूर और उनका साहित्य पृ० ३२०।२५

प्रत्यक्ष प्रमाण है। इन्होने वात्सल्य रस का सांगोपांग वर्णन किया है। यह वर्णन इतनी तल्लीनता से किया गया है कि इसके आधार पर वात्सल्य को एक भिन्न रस माना जा सकता है।

साथ ही सूर के काव्य में अलकारों को भी स्थान दिया गया है जो काव्य शास्त्र के अनुकूल है यथा—

'नील स्वेत पर पीत लाल मिनी लटकन भाल हराई।
सनि गुरु, असुर, देवगुरु मिलि मनो भौम सहित समुदाई॥"[1]

अंग शोभा और वेश–भूषा आदि के वर्णन में सूर की उपमा देने की तीव्र इच्छा रहती है। साहित्य के प्रसिद्ध उपमानों को लेकर सूर ने बड़ी क्रीडाएं की हैं। गोपियों के वचन हमारे वाक्यों की पुष्टि करते हैं। इसी प्रकार से अप्रस्तुत प्रयोगों द्वारा राधा के अंगों का वर्णन दर्शनीय है।[3] उनके अलंकारों के उदाहरण भी यह स्पष्ट करते हैं कि वे अलंकार तत्वों को सुन्दर रूप में ग्रहण कर सकते थे।[4]

निष्कर्ष—

इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सूर साहित्य में भी काव्य शास्त्रीय तत्वों के सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते है। उनका स्वाभाविक चित्रण जहाँ पाठकों को मन्त्र मुग्ध कर लेता है वहाँ उनके अलंकार भी आकर्षण से परिपूर्ण हैं। दृष्टि कूट पदों के, जो ता समझाते समय सामान्यत अधिकांश विद्वान टालने की सोचते हैं।

मीरां बाई—

मीरा बाई जो कि कृष्ण की अनन्य भक्त थी वे भी अलंकारो उपयोग और विषादमय एवं अनुरागमय चित्त वृत्ति के चित्रण में काव्यशास्त्रीय के प्रभाव

१—भ्रमरगीत सार पृष्ठ ३७।
२—भ्रमरगीत सार पृष्ठ ४०
३—भ्रमरगीत सार पृष्ठ ३५–४०
४—भ्रमरगीत सार पृष्ठ ३८–४०

से अछूती नहीं रह सकी है।[1] उनकी रचनाओं में भक्ति रस का निरन्तर प्रवाह प्राप्त होता है।[2]

इनके मधुर रस के भी भाव-विभाव अनुभावादि प्राय उसी प्रकार प्राप्त होते हैं जैसे शृंगार रस के, केवल भेद यही है कि इसमें भगवान की भक्ति होने के कारण यह इन्द्रियातीत है और इसमें रहस्यवाद को भी स्थान मिल जाता है।[3] शरीर और आभूषणों के वर्णनों को इनके काव्य में स्थान मिला है जो प्रकारान्तर से नख शिख वर्णन का निर्वाह कर देता है।[4] इसी प्रकार वर्षा ऋतु का वर्णन भी सांगोपांग बन पड़ा है। इनकी पदावली में पन्द्रह प्रकार के छन्द प्रयोग प्राप्त होते हैं।[5] अतएव यह सहज ही कहा जा सकता है कि मीरा बाई के काव्य में भाव पक्ष की सबलता होते हुए भी वे काव्यशास्त्रीय पक्ष से प्रभावित अवश्य हुई हैं।[6]

टीकायें—

भक्ति काल में कतिपय टीकायें लिखी गई जो संस्कृत की तिलक या आलोचना पद्धति के निकट और अनुकूल हैं। इनके द्वारा कवियों की जीवनी और रचनाओं पर प्रकाश डाला गया है। टीका पद्धति में संस्कृत शैली का अनुसरण किया गया है। भक्तमाल हमारे कथन की पुष्टि करती है। इस ग्रंथ में कवियों की निर्णयात्मक आलोचना की गई है जो संस्कृत के ग्रंथों के अनुकूल है। इसमें उनके ही समान

१—परशुराम चतुर्वेदी—मीरा बाई की पदावली पृष्ठ २८।
ख—भव सागर अति जोर अनत डरी धार।
राम नाम का बाँध बेड़ा उतर परले पार—रूपक अलंकार।
ग—कुण्डली की अलक झलक कपोलन पर छायो।
मनो मीन सरवर तजि मकर मिलन आई॥ उत्प्रेक्षालंकार।
२—मीरा बाई की पदावली पृष्ठ ३६।
३—परशुराम चतुर्वेदी—मीराबाई की पदावली भूमिका पृष्ठ ४०-४८।
४—परशुराम चतुर्वेदी—मीराबाई की पदावली भूमिका पृष्ठ १५३।
५—परशुराम चतुर्वेदी—मीराबाई की पदावली भूमिका पृष्ठ ५२-५५।
६—विभावना (पद १५१) विभावोक्ति (पद ३), वीप्सा (पद ११६), अर्थान्तरन्यास (पद ७२) आदि प्राप्त होते हैं और श्लेष उपमा, अनुप्रास आदि तो बहुतायत से अधिकाश पदों में प्राप्त होते हैं।

गुण–दोष कथन और सार रूप मे प्रशंसा अथवा निंदा करने की प्रणाली को अपनाया गया हैं। उदाहरणार्थ भक्तमाल मे प्राप्य सूरदास से सम्बन्धित निम्नांकित पद देखा जा सकता है —

"उक्ति चोज अनुप्रास वरन अस्थित अति भारी।
वचन प्रीति निर्वाह अर्थ अद्भुत तुकधारी॥
प्रतिबिंबित दिविदिष्टि हृदय हरि लीला भासी।
जनम करम गुन रूप सबै रसना परकासी।
विमल बुद्धि गुण और की जोयह गुण श्रवणनि धरै।
सूर कवित्त सुनि कौन कवि जो नहिं सिर चालन करै।"

इसी प्रकार से (नाभादास की भक्तमाल मे) पृथ्वीराज की आलोचना करते हुए लिखा गया है —

'सवैया गीत श्लोक, वेलि दोहा गुण नवरस।
पिंगल काव्य प्रमाण विविध विध गायौ हरि जस॥"

इस प्रकार से हिंदी मे परिचयात्मक समालोचना का सूत्रपात हुआ।[1] यह सूत्रपात संस्कृत काव्यशास्त्रीय पृष्ठ भूमि पर आधृत था।

अन्य कवि—

भक्ति युग मे काव्यशास्त्र का एक और प्रभाव परिलक्षित होता है। वह यह है कि इस काव्य मे शृंगार, षट्ऋतु नख–शिख आदि का वर्णन संस्कृत काव्य ग्रन्थो के अनुकूल प्राप्त होता है। यह वर्णन बहुत सीमा तक इस बात का संकेत करता है कि अब रीति काल अधिक दूर नही है। उपर्युक्त तत्त्वो की उन्नति आगामी काल (रीति काल) मे हुई। अग्रदास का अलंकार पूर्ण वर्णन देखिये—

"कुंडल ललित कपोल जुगल अस परम सुदेशा।
तिनको निरखि प्रकाश लजत राकेश दिनेसा।
मेचक कुटिल विसाल सरोरुह नैन सुहाये।
मुख पंकज के निकट मनो अलि छौना आये॥"[2]

१—डॉ० उदय भानुसिंह—आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी और उनका युग पृष्ठ २१।

२—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिंदी साहित्य का इतिहास पृष्ठ १३५, १२ वाँ संस्करण।

मनोहर कवि जो अकबर के दरबार में सम्मानित थे उनकी उक्तियाँ भी पठनीय है—

'बिथुरे सुथरे चीकने घन घने घुघुरार।
रसिकन को जंजीर से बाला तेरे बार॥ १

रसखान का निम्नांकित छन्द भी अनुराग और रूप वर्णन से परिपूर्ण है—

'रूप जल उठत तरंग है कटाक्षन के
अंग-अंग भौरन की अति गहराई है।
नैनन को प्रतिबिम्ब परयो है कपोलनि मैं
तेई भये मीन तहां ऐसी उर आई है॥
अरुन कमल मुसकान मानो फबि रहा
थिरकन बेसरी के मोती की सुहाई है।
भयो है मुदित सखि लाल को मराल मन
जीवन जुगल ध्रुव एक ठाव पाई है॥[2]

परमानन्द दास—

परमानन्द दास के निम्नांकित पद में भी नख-शिख वर्णन प्राप्त होता है—

राधेजू हारावलि टूटी।
उरज कमल दल माल मरगजी बाम कपोल अलक लट छूटी॥
वर उर उरज करज बिच अंकित बाहु जुगल बलयावलि फूटी।
कंचुकी चीर विविध रंग रंजित गिरधर अधर माधरी घूटी।
आलस बलित नैन अनियारे अरुण उनींदे रजनी खूटी।
परमानन्द प्रभु सुरति समय रस मदन नृपति की सेना लूटी॥[3]

उसमान ने चित्रावली में विरह वर्णन के अन्तर्गत षटऋतु वर्णन सरस और मनोरम रूप में प्राप्त होता है —

ऋतु बसंत नौतन बन फूला। जहँ तहँ भौर कुसुम रंग भूला॥
अहि कहो सो भँवर हमारा जेहि बिनु बसंत उजारा।

१—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ १७६।
२—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ १८८।
३—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ १६८।

रात बरन पुनि देखि न जाई, मानहु दया दहूँ दिसि लाई ॥
रति पति दुरद ऋतुपति बली । कानन देह आई दल मलि ॥[1]

कवि गंग ने भी अतिशयोक्तिपूर्ण वियोग-शृंगार का वर्णन किया है जो बिहारी से तुलनीय है —

"बैठी थी सखिन संग पिय को गवन सुन्यो,
सुख के समूह में वियोग आगि भरकी ।
गंग कहै त्रिविध सुगन्ध के पवन बह्यो
लागत ही ताके तन भई बिथा जरकी ॥[2]

भक्ति काल अन्य रीति कवि—

भक्तिकाल में कवियों ने रीति तत्त्वों पर प्रकाश डाला है। इसी वर्ग के अन्य कवियों में निम्नांकित कवि उल्लेखनीय हैं। करनेस (ब्रह्म) ने अलंकार और नायिका भेद को दृष्टि पथ पर रख कर काव्य रचना की। इनकी कविता में संयोग-वियोग और समस्या पूर्ति को स्थान दिया गया है। इन्होंने नवीन उत्प्रेक्षाएँ प्रस्तुत करने का सफल प्रयोग किया। कवि गंग भी रस और अलंकार चित्रण को स्थान देते हैं। रहीम के बरवै नायिका भेद सम्बन्ध में विशेष रूप से उल्लेखनीय है। बरवै नायिका भेद में रीति काव्य का सुन्दर उदाहरण प्राप्त होता है। इसकी विशेषता यह है कि बिना लक्षणों के बरवै छन्दों में कवि ने नायिका भेद वर्णन किया है—

'बाहर लैके दियवा बारन जाय ।
सासु ननद ढिग पहुँचत, देत बुझाय ॥ (३)

× × ×

मोहि हत बिधु बदना पिय मति हीन ।
खान मलीन बिय भया, औगुन तीन ॥ (६)

× × ×

टूटी खाट घर टपकत, टटियौ टूटि ।
पिय के बाँह उसिसवा, सुख कै लूटि ॥" (१८)

१—रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ १०२।
२—रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ १८६।

बलभद्र मिश्र ने भी नख-शिख और कई अलकारों का सुदर चित्रण किया है। मुबारक ने तिलकशतक और अलकशतक नामक रचनाएँ की हैं। इनमे नख-शिख वर्णन और अलकार वर्णन प्राप्त होते हैं। अलकशतक पोप के रेप आफ दी लॉक के समकक्ष नाम की दृष्टि से रखा जा सकता है। दोनों ही कवियो का नायिका के बालो की ओर ध्यान जाना उन पर शास्त्रीय युग के प्रभाव का परिचायक है।

इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल इस युग तक निम्नांकित प्रकार की रचनाएँ प्राप्त होती हैं।

[क] लक्ष्य ग्रथ जिनमे संस्कृत शास्त्रीय नियमो के पालन का प्रयास किया गया। इनमे यत्र-तत्र शृगार रस और नायिकाभेदादि पर प्रकाश डाला गया। लक्षण ग्रथों के अनुकूल लक्ष्यग्रथों की आकांक्षा भी दिखाई देती है। तात्पर्य यह कि भाषा और भाषा ग्रथो को भी दृष्टि पथ से ओझल नहीं होने दिया।

[ख] काव्य मे अन्य कवियो से सम्बन्धित कतिपय उक्तियाँ भी प्राप्त होती हैं। कहीं-कहीं भाषा और अलकारो पर भी इनमे प्रासंगिक रूप से प्रकाश डाला जाता हैं। यही क्यो सामाजिकों को कैसा होना चाहिये इस पर भी दृष्टि पात किया जाता है।

[ग] मुक्तकों के रूप मे स्वतन्त्र आलोचनाएँ भी मिलती है। कहीं-कहीं स्वतन्त्र रूप से अलकारो का वर्णन भी मिल जाता है।

[घ] नख-शिख वर्णन, षटऋतु वर्णन और आलम्बन व उद्दीपन से सम्बन्धित प्रासंगिक और कहीं-कहीं स्वतन्त्र प्रकृति चित्रण भी प्राप्त होता है।

[च] कवियो के आत्मालोचन मे देशज कवियों के समान दैन्य प्रकट किया गया है। वहाँ संस्कृत रचयिताओं का अहकार प्राप्त नहीं होता है—वहाँ तो सन्देश रासक की शैली पर अपना ही हीन भाव प्रकट किया जाता है।

[छ] काव्य द्वारा अमर होने की भावना पर संस्कृत के अनुकूल दृष्टिपात किया गया। कवि अपनी रचना के द्वारा अमर होने की आकांक्षा रखते थे।

[ज] इन रचनाओ और साहित्यक विधाओ ने हिन्दी काव्यशास्त्र के विकास म महयोग दिया। इससे यह हुआ कि हिन्दी काव्यशास्त्रकारों के सम्मुख ऐमी रचनाएँ रही–लक्ष्य ग्रन्थ रहे जिससे लक्षण ग्रथो के निर्माण करते समय रचयिताओ की दृष्टि के सामन सस्कृत काव्य शास्त्र के अनुकूल ग्रन्थ रहे और उनके लक्षण भी (जो लक्ष्य ग्रथा पर आधारित होते हैं) मस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल रहे। उन ग्रथा म शृगार, प्रकृति चित्रण और अलकार आदि की अधिकता प्राप्त होने लगी, जो विकसित होकर आगामी युग म साहित्याकाश को आच्छादित करने लगी। यहाँ डॉ० रामकुमार वर्मा का मत उल्लेखनीय है। उनकी मान्यता है कि भक्तिकालीन विवेचन मे भावना का प्राचुर्य रहा है। इसी हेतु शृगारिक अभिव्यक्ति के होते हुए भी भक्ति काल अपना शुद्धता की रक्षा कर सका। वे कहते हैं "हिन्दी म रीति काल की परम्परा जयदेव के गीत गोविन्द मे होकर विद्यापति की कविता मे आई थी। विद्यापति की पदावली म नायिका भेद नख–शिख ऋतु वर्णन, अभिसार आदि बडे आकर्षक ढग से वर्णित है। × × × पर भक्ति काल म भावना की अनुभूति इतनी तीव्र थी कि सूर और मीरा ने राधा कृष्ण के शृगार मय गीत गाकर भी उन्हे मर्यादा विहीन नही किया।'[1]

इससे भी हमारी इस मान्यता की पुष्टि होती है कि भक्तिकाल मे काव्य शास्त्रीय तत्त्व अवश्य ही विद्यमान थे। तत्कालीन काव्य म भावना के आधिक्य को देख कर हम उसकी प्रशसा किये बिना नही रह सकते, फिर भी यह भी सत्य ही है कि उक्त युग में कला पक्ष भी प्रधानता प्राप्त करने के लिये आगे बढ रहा था। यह स्वाभाविक भी था। एक तो हिन्दी कवियो के सामने कतिपय शास्त्रीय तत्त्व अवश्य ही थे। दूसरा जब तुलसीदास मानस लिख चुके तो उस ओर आगे बढना भी कठिन ही था। साहित्य जगत का यह बडा सत्य है कि जब एक कलाकार कला की सीमा पर पहुच जाता है तो अन्य कलाकार उस ओर आकर्षित अवश्य होते हैं किन्तु महानता के उस छोर तक न पहुच कर स्वत दिशा परिवर्तित कर लते हैं—

---

१ – डॉ० राम कुमार वर्मा—हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास पृष्ठ ८८८।

सामाजिक उद्देश्यों की ओर बढ़ने की प्रेरणा देते हैं। आकार भी इसमें महत्व देते हैं। अंग्रेजी साहित्य में जब शेक्सपियर नाटक लिख चुके तब बाद में आने वाले श्रेष्ठ नाटककार कलात्मक का शास्त्रीय पक्ष का ही सहारा बना पड़ा। यहाँ क्या चामर जैसे कवि के बाद भी इसी प्रकार का गतिरोध और इसी प्रकार की दिशा परिवर्तन की आकांक्षा दिखाई देती है। अतएव हिन्दी साहित्य में आगामी युग का रीति काल होना साहित्यिक सांस्कृतिक और ऐतिहासिक दृष्टि से स्वाभाविक उपयुक्त और वांछनीय सा प्रतीत होता है।

काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ और उनके निर्माता—

जैसा कि अब तक के विवेचन में ज्ञात होता है कि हिन्दी साहित्य में संस्कृत साहित्य के अनुकूल नख-शिख वर्णन प्रकृति चित्रण तथ्य ग्रंथ निर्माण टीका प्रासंगिक-सैद्धान्तिक विवेचन प्राप्त हो रहे थे किन्तु रस रीति पर भी दृष्टि रख कर किसी ग्रंथ का निर्माण नहीं हो सका था। यह कार्य कृपाराम त्रिपाठी ने किया। उन्होंने अपने ग्रंथ से साहित्य की इस दिशा के अभाव की क्षति-पूर्ति की।

कृपाराम त्रिपाठी—

कृपा राम ने दोहों में हितनरगिणी की रचना करते हुए लिखा है—

'बरनत कवि शृंगार रस छंद बडे विस्तार।
मैं बरन्यो दोहानि बिच याते सुगर विचारि॥'[1]

इससे यह ज्ञात होता है कि इससे पूर्व अन्य बड़े छंदों में शृंगार रस का वर्णन हो चुका था किन्तु आज वे ग्रंथ अप्राप्य हैं।[2] इनके इस कथन का अर्थ यह भी हो सकता है। कि कवि-संस्कृत के साहित्यकार अत्यन्त विस्तार पूर्वक शृंगार रस का वर्णन करते हैं। चाहे जो कुछ हो इतना तो स्पष्ट है कि कृपाराम को अन्य कवियों के शृंगार रस के ग्रंथों का ज्ञान था।

इन्होंने कहा है—

'कृपाराम या कहत है सरल ग्रंथ अनुमानि।'

1—हित तरंगिणी २।
2—डा० भागीरथ मिश्र—हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ ४७।

इससे ज्ञात होता है कि इन्होंने भरत ग्रंथ के अनुसार, नाट्यशास्त्र का सहारा लेकर अपना विवेचन प्रस्तुत किया है। फिर भी नायिका भेदादि में स्वाधीनपतिका इत्यादि का भेद करने से जैसा कि डा० भागीरथ मिश्र ने कहा है, इन्होंने भानुदत्त का भी सहारा लिया है।[1,2]

निष्कर्ष—

इस प्रकार यह ज्ञात होता है कि हिन्दी साहित्य के प्रथम प्राप्य रीति ग्रंथ पर संस्कृत काव्यशास्त्र का प्रभाव है। साथ ही यह भी स्पष्ट परिलक्षित होता है कि लेखक किसी एक शास्त्रीय ग्रंथ का सहारा न लेकर एकाधिक ग्रंथों का और शास्त्रकारों का सहारा लेते हैं, यह प्रवृत्ति कालांतर में विकसित होती जायगी।

तदनन्तर कतिपय ऐसे ग्रंथों का उल्लेख प्राप्त होता है जिनका अस्तित्व केवल साहित्य ग्रंथों पर ही आधारित है।[3] ऐसे ग्रंथ वास्तव में प्राप्य न होकर केवल सन्दर्भ सूची की ही शोभा बढ़ाते हैं। गोप विरचित राम भूषण अलंकार चन्द्रिका एवं मोहनलाल का शृंगार सागर ऐसे ही ग्रंथ हैं। कवि करनेस कृत करणाभरण श्रुतिभूषण और भूपभूषण ऐसे ही ग्रंथ हैं।[4] इसमें करुणाभरण नामक कृष्णजीवन लच्छीराम कृत नाट्य ग्रंथ का उल्लेख तो मिलता है, किन्तु करुणाभरण नामक शास्त्रीय ग्रंथ का अभाव खटकता ही रहता है।[5] यहाँ यह कहना उपयुक्त ही होगा कि ग्रंथों के नामों से तो यही ज्ञात होता है कि अलंकार चन्द्रिका, अलंकार ग्रंथ और शृंगारसागर शृंगार रस से सम्बन्धित होंगे। यदि ऐसा ही हो तो यह ग्रंथ भी संस्कृत काव्यशास्त्र पर आधारित प्रतीत होते हैं। नन्द दास विरचित रस मंजरी भी शास्त्रीय दृष्टि से अवलोकनीय है।[6] इन्होंने हाव-भाव, हेला और रति का वर्णन किया है।

१—डा० भागीरथ मिश्र—हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ ४७।
२—डा० भागीरथ मिश्र—हिन्दी रीति साहित्य पृष्ठ ३४।
३—मिश्र बन्धु विनोद भाग १ पृष्ठ ३०१ द्वितीय संस्करण।
४—क-मिश्र बन्धु विनोद भाग १ पृष्ठ ३०१ द्वितीय संस्करण पृष्ठ ३४७।
ख-डा० भागीरथ मिश्र—हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास पृष्ठ ४८।
५—हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन—पूर्व भारतेन्दु कालीन नाटक।
६—नन्द दास ग्रंथावली—भूमिका, बाबू ब्रज रत्न दास लिखित।

नन्ददास—

नन्द दास विरचित रसमंजरी एक नायक—नायिका भेद सम्बन्धित ग्रंथ है।[1] नाट्य शास्त्र दश रूपक और भानुदत्त की रस मंजरी में लिया के सात्विकों के वर्णन प्राप्त होते हैं। भानुदत्त ने इन्हें 'हाव' नाम दिया था। नन्ददास ने 'हाव' वर्णन किया है। हाव भाव' हेला और रनि का उन्होंने वर्णन किया है। इसके उदाहरणों मे भानुदत्त की रस मंजरी से अनुवाद कर लिया गया है। अतएव यह कहा जा सकता है कि इसका प्रणयन संस्कृत काव्यशास्त्रों से प्रभावित है।

नन्ददास एक ऐसे भक्त कवि हैं जिन्होंने, तुलसी का सन्देश रत्नावली तक को पहुंचाया।[2] जिन पर कृपा करके भगवान श्री कृष्ण ने 'राम' का रूप धारण कर तुलसी को दर्शन दिये।[3] ये भक्त होने से पूर्व रसिक भी रह चुके थे।[4] अतएव इनके काव्य मे रसिकता का होना स्वाभाविक ही है। इन्होंने अपने मित्र के कहने पर 'रस मंजरी' नाम के काव्यशास्त्रीय ग्रंथ का प्रणयन किया जिसमे नायिका भेद का वर्णन मिलता है। इस दृष्टि से इसे रीति ग्रंथों मे स्थान दिया जा सकता है और आलोचकों के इसे रीति ग्रंथों मे स्थान न देने पर बाबू ब्रज रत्न दास ने कहा है— 'ऐसा केवल इस ग्रंथ के अप्राप्य होने के कारण ही हुआ है।[5]

रसमंजरी—

इस ग्रंथ की रचना की प्रेरणा इन्हें एक मित्र से मिली जिससे ज्ञात होता है कि नायिका वर्णन युग की मांग बनता जा रहा था। कवि यदि स्वत नहीं लिखने तो उनके मित्र उन्हें कह देते अथवा मित्र के कहने की बात कल्पना ही मान ली जाय तो यह तो मानना ही होगा कि कवि स्वयं इस ओर आकृष्ट हुए थे। काव्यशास्त्र के अभाव की पूर्ति के लिये नन्ददास ने अनेकार्थमंजरी तथा मंजरी दोहाकोष भी इन्होंने प्रस्तुत किये। इनकी रस मंजरी और विरह मंजरी मे नायिका भेद को स्थान

१—नन्द दास ग्रंथावलि, प्रथम भाग पृष्ठ ३६ (सम्पादक—उमाशंकर शुक्ल)
२—नन्द दास ग्रंथावली पृष्ठ १४।
३—नन्द दास ग्रंथावली पृष्ठ २१।
४—नन्द दास ग्रंथावली पृष्ठ २१।
५—नन्द दास ग्रंथावली (लेखक ब्रज रत्न दास)

दिया गया है। इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि संस्कृत साहित्य के अनुकूल ये भाषा" को समृद्ध बनाने के पक्षपाती थे जिसमे युग भाग और इनके स्वभाव ने सहयोग दिया।

रसमंजरी मे परिभाषा तथा उदाहरण दोनो ही एक ही पद में दिये गये हैं, इसकी आलोचकों ने प्रशंसा की है।[1] इसके आरम्भ मे प्रभु को ही रस का आधार कहा गया है। उदाहरणार्थ—

'है जो कुछु रस इहीं संसार। ताकहुँ प्रभु तुम ही आधार॥
ज्यों अनेक सरिता जल बहे। आनि सबै सागर में रहै॥

× × × ×

अगनि ते अनगन दीपक बरे। बहुरि आनि सब में रर॥
ऐसे हि रूप प्रेम रस जो है। तुम तें है तुम हि करि सो है॥"[2]

जैसा कि पहले कहा गया है, इन्होने लिखा है कि एक मित्र के कहने पर इन्होने इसकी रचना की, उन्होने कहा—

इक मित्त हम सो अस गुन्यौ, मैं नाईका भेद नहीं सुन्यौ।
अरु जु भेद नायिक के गुनैं, ते हूं मैं नीके नहीं सुने॥[3]

तदनन्तर उन्होंने कहा कि —

हाव भाव हेला दिक जिते, रति समेत समझावहु तिते।
जब लग इनके भेद न जाने तब लग प्रेम तत्त्व न पिछानैं,।[4]

इससे ज्ञात होता है कि 'प्रेम तत्त्व' को पहिचानने के लिये इन्होंने इसकी रचना की। इससे प्रतीत होता है कि शृंगार को इन्होने महत्त्व दिया है जो कि अग्नि पुराणादि के अनुकूल है।

१—नन्द दास ग्रंथावली पृष्ठ ६४।
२—नन्द दास ग्रंथावली पृष्ठ १२६
३—नन्द दास ग्रंथावली पृष्ठ १२६।
४—नन्द दास ग्रंथावली पृष्ठ १२७।

सहृदय सामाजिक—

इन्होंने सहृदय सामाजिकों की आवश्यकता पर बल दिया है—

जाको जहँ अधिकार न होई। निकट हि वस्तु दूरि है सोइ ॥[1]
मीन कमल के ढिग हि रही। रुप रंग रस मधू नहि लहि।
निकट हि निरमोहिक नग जैसे। नैनहीन तिहि पाव कैसे ॥
तासों नन्द कहत तब उत्तर। मूरहत जन को मोहित दूतर ॥[1]

यह आवश्यकता शास्त्रीय दृष्टि से उल्लेखनीय है और जायसी के भी एस ही कथन से तुलनीय है। उन्होंने भी कहा कि— दादुर कमल के पास होते हुए भी कमल की सुगंध नहीं ग्रहण कर सकता है, वस ही जड़ व्यक्ति काव्य सौन्दर्य-परीक्षण में असमर्थ ही होता है।

नायिका भेद—

तदनन्तर नायिका भेद प्रारम्भ होता है। वे कहते हैं—

"जग में जुवती त्रय परकार। कवि कहना निज रस विस्तार।
प्रथम स्वकाया पुनि परकीया। इस समान बखानिय तिय ॥[2]

स्वकीया, परकीया और सामान्या के भेद के पश्चात् वे मुग्धा मध्या और प्रौढ़ा का विवेचन करते हैं। उनके भेदों प्रभेदों का भी वर्णन किया गया है।[3] उन्होंने लक्षण और उदाहरण एक ही पद में दे दिए हैं और उदाहरण सरस भी हैं। यथा-ज्ञात यौवना के सम्बन्ध में वे लिखते हैं —

"सहचरि के उरजात-तन चहै। अपने चहै मुसकि छबि लहै ॥
सखि कहै चारु तुव कुच नये। इकठे उभय सभु से भये ॥
सो सुकृति वह निज नख धरि है। इन कहुँ चन्द चूड़ जस करि है।
मुसकि सखी कों मारे जाई। ज्ञात जोवना कहिये सोई ॥[4]

१—नन्द दास ग्रंथावली—पृष्ठ १२६।
२—नन्द दास ग्रंथावली पृष्ठ १२७।
३—नन्द दास ग्रंथावली पृष्ठ १२८—१४०।
४—नन्द दास ग्रंथावली पृष्ठ १२८

इसी भांति मुग्धा–अभिसारिका प्रभृति के लक्षण–उदाहरण पठनीय है।[1] तदनन्तर नायक एवं भाव हाव हेला और रति का भी संक्षेप में वर्णन किया गया है।[2]

विरहमंजरी—

विरहमंजरी का उद्देश्य कवि ने यों बताया है—

'परम प्रेम उच्छलन इक, बरन्यौ जु तन–मन मैन।
व्रज बाला बिरहिन भइ कहति चन्द सों बैन॥
अहो चन्द रस कन्द हो जात आहि–उहि दस।
द्वारावति नन्द नन्द सों, कहियो चाल सन्देस॥[3]

इसमें इसमें विरह वर्णन को मुखरित किया है। इसे चार भागों में विभाजित किया है। प्रत्यक्ष विरह वर्णन वहाँ होता है जहाँ नायक के होते हुए भी नायिका को भ्रम वश विरह हो जाता है यथा—

ज्यों नवकुंज सदन श्री राधा। विहरति पिय संग रूप अगाधा॥
पौढ़ा प्रीतम अंक सुहाई। कछु इक प्रेम लहरि सी आई॥
सम्भ्रम भई कहत रस बनिता। मेरे लाल कहाँ री ललिता॥[4]

तत्पश्चात् पलकान्तर विरह का स्थान दिया गया है। उदाहरण के लिए—

सुनि पलकान्तर विरह की बातें। परम प्रेम पहिचानत तातें॥
सोभा–सदन बदन जम लोनों। कोटि मदन छवि करि नहिं होनों॥
सों मुख जब अवलोकन कर। तब जु आइ बिचि पलक परें॥
ब्याकुल ह्वै धाई ब्रज नारी। तिहि दुख देत विधातहि गारी॥
बड़ो मद अरविन्द सुत जिहि न प्रेम पहिचानि।
पिय मुख देखत दृगन के पलक रचो बिधि आनि॥"[5]

१—नन्द दास ग्रन्थावली—पृष्ठ १३७
२—नन्द दास ग्रन्थावली पृष्ठ १३६ से १४१।
३—नन्द दास ग्रन्थावली पृष्ठ १४२।
४—नन्द दास ग्रन्थावली पृष्ठ १४०।
५—नन्द दास ग्रन्थावली पृष्ठ १४२।

ये भक्ति कालीन परम्परा के अनुकूल हैं। रीतिकाल में भी आँखों को लेकर कई ऐसी उक्तियाँ कही गई हैं—

"देखत बनै न देखते, बिनु देखे अकुलाहिं"

एव इसी तरह केशव ने भी कहा कि राम सीता के मिलन के समय सीता की पलकें बंद होगई थी। इस प्रकार इन पर युग का प्रभाव है और उसका उन्होंने विस्तृत वर्णन किया है। इससे ज्ञात होता है कि रीतिकालीन तत्व प्रगति की ओर बढ़ रहे हैं। तत्पश्चात् वनांतर विरह और देशान्तर विरह का वर्णन है। इसके बाद इन्होंने बारहमासा को स्थान दिया है। यह हिंदी की प्रकृति के अनुकूल था। रासो ग्रंथों से इसकी परम्परा चल रही थी। अन्त में इन्होंने ब्रह्म को पूर्ण परमानन्द कहा है। इस पर रस को ब्रह्मानन्द सहोदर आदि कहने की भावना की छाया का अनुमान लगाया जा सकता है—संक्षेप में यह शब्दावली साम्य कहा जा सकता है।[1]

इन्होंने पदावली में भी 'पूर्वानुराग' आदि को स्थान दिया है जिससे इनकी नायिका भेद सम्बन्धी ग्रंथ प्रणयन की रुचि का आभास मिलता है।

अनेकार्थ ध्वनिमंजरी—

अनेकार्थ ध्वनिमंजरी में पर्यायवाची शब्द दिये गये हैं। जहाँ खुसरो ने खालक बारी में शब्द और अर्थ दिये थे, वहाँ इन्होंने पर्यायवाची शब्द दिये हैं। यथा —

"जलज मीन, मोती जलज जलज शंख अरु चन्द।
जलज सु कमल फिरावते ब्रज आवत नन्द चन्द ॥"[2]

इसी प्रकार फूलों पर कवि ने सुंदर शब्दावली में अपनी भाव व्यञ्जना व्यक्त की है —

फूलन सों बनी गुही, फूलन की कलिया,
फूलन के सारी मानो फूली फुलवारी है।

१—नन्द दास ग्रन्थावली पृष्ठ ३१०।
२—नन्द दास ग्रन्थावली पृष्ठ ४७।

फूलन की दूलरी, हुमेल हार फूलन के,
फूलन की चम्प माल, फूलन गजरारी ॥"[1]

निष्कर्ष—

अतएव यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि युग म रीति तत्वो की माग बढ रही थी। कवि संस्कृत के अनुसार कही श्रृंगार रस को महत्ता देता, नायिका भेद वर्णन करता तो कही सहृदय सामाजिक की आवश्यकता अपने से पहले के कवियो के अनुकूल प्रकट करता। भाषा को समृद्ध करने की लालसा से वह पर्याय वाची शब्द भी प्रदान करता। विरह और नायिकाओ ने प्रमुखता प्राप्त करना प्रारम्भ कर दिया था।

आचार्य केशव दास—

केशवदास कवि और आचार्य दोनों ही रूपो म हिन्दी की विभूति है।[2] आलोचको का मत है कि केशव का उपदेश संस्कृत क शास्त्रीय भडार को भाषा वालो के सामने रखना ही था और वे काव्यागो का विवेचन कर कोई नया सिद्धान्त खडा करना नही चाहते थे।[3] विद्वान आलोचक और साहित्य ममज्ञ डॉ० रामशंकरजी शुक्ल की स्तुत्य मान्यता है कि—

'केशव ए ग्रेट मास्टर एण्ड राइटर ओफ पोइटिक्स वद सफिसियेण्ट ओरिजिनेलिटि, कुड नोट एटेक्ट पीपल टू फोलो हिम' [4]

यह कथन सत्य ही है,—
केशव ने भामह, दण्डी उद्भट्ट और रुद्रट को अपने विवेचन का आधार बनाया जो आगामी युग म सामान्यत अधिकाश रूप से रीति ग्रन्थकारो के आधार नहीं रहे। रीति काल में प्रमुख रूप से कुवलयानन्द और चन्द्रलोक साहित्य दपण एव काव्य प्रकाश को आधार माना जाने लगा, किन्तु केशव का महत्व इस लिये

१—नन्द दास ग्रन्थावली पृष्ठ ३२८।
२—डा० धीरेन्द्र वर्मा–केशव ग्रथावली (सम्पादक—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र)
३—डा० भागीरथ मिश्र–हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ ४_।
४—इवोल्युशन ओफ हिन्दी पोइटिक्स—डा आर०एस० शुक्ला 'रसाल'

माना जाता है कि उन्होंने ... नायिकाभेद-पूर्वक प्रतिपादित किया कि संस्कृत के ग्रन्थों को आधार मान कर हिन्दी वालों को रचना करनी चाहिए। साथ ही आश्रय-दाताओं की प्रशंसा किये बिना भी उनका मनोरंजन किया जा सकता है और राज्याश्रय में रहा जा सकता है। आचार्य ने ... वर्णन ... सभी अंगों पर प्रकाश डालने का प्रयत्न किया और कहा-कहीं नवीन वर्गीकरण को भी स्थान दिया जो उनकी प्रतिभा और ... का ... करता है।[1] केशव ही एक ऐसे आचार्य हैं जिन्होंने संस्कृत साहित्य में प्राप्य ... भाव का वर्णन केवल विस्तार पूर्वक ही नहीं अपितु प्रमाणात्मक रूप में भी किया है। इस प्रकार केशव ... में ... सौन्दर्य में ... संस्कृत ... काव्यकार थे जिनकी महत्ता व अनुकरण की कल्पना को पाठक लोग विचार भी नहीं कर सके।

केशव का पूर्ववर्ती काव्यशास्त्रकारों को अपनाने का एक मनोवैज्ञानिक कारण यह भी हो सकता है कि संस्कृत की शास्त्रीय धारा उस समय तक भी चल रही थी-रस गंगाधर के प्रणेता पण्डित राज जगन्नाथ तो शाहजहाँ के समय तक विद्यमान थे। व अपने अहं में डूबे जा रहे थे। उनका तो कहना था कि जो उनकी रचना में रस ग्रहण नहीं कर सकते वे निरे जड़ हैं। उधर केशव में भी अहम् तो था ही। उन्हें भी खेद था कि—

> भाषा बोलि न जानहीं जिनके कुल के दास।
> भाषा कवि भौ मद मति तेहि कुल केशवदास॥

अतएव उन्होंने पूर्ववर्ती काव्यशास्त्रकारों भामह, दण्डी और उद्भट को अपनाया जिससे उनके अहम् की तुष्टि हो और वह पुरातन होने के कारण बहुत सीमा तक अज्ञात भी हो एवम् अधिकांश नवीन दिखाई दे। यह शास्त्रज्ञान पण्डित राज की शास्त्रीय धारणा से भिन्न था। इसलिये वे कह सकते थे कि वे संस्कृत का सहारा लेते हैं तो क्या, परवर्ती काव्यशास्त्रकार जिनकी अंतिम सीमा पर पण्डित राज भी आ जाते थे उन्हें केशव ने छोड़ दिया। एक तथ्य यह भी है कि उत्तरकालीन भारतीय आचार्य स्वयम् पिष्टपेषण कर रहे थे।[2] तब भला केशव

१—डा० भगीरथ मिश्र-हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास पृष्ठ ५१।
२—डा० नगेन्द्र-हिन्दी रीति काव्य की भूमिका पृष्ठ १५३।

इन्हें क्यों अपनाते। साथ ही उनकी धारणा थी कि अर्वाचीन से प्राचीन अच्छा है तो यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि उन्होंने प्राचीनतर से प्राचीनतम को श्रेष्ठतर माना हो। अतएव केशव ने रीति ग्रंथ प्रणयन कार्य प्रारम्भ तो कर दिया किन्तु परवर्ती कलाकारों को नहीं अपना कर उन्होंने पूर्ववर्ती शास्त्रकारों को महत्ता प्रदान की। उनकी रसिक प्रिया इस बात का भी प्रमाण है कि उन्होंने रस और नायिका भेद के विवेचन में उत्तर ध्वनि काव्य के ज्ञान का भी उपयोग किया था।[1]

केशव के सामान्य अलंकार वर्णन और विशेषालंकार वर्णन दोनों से सम्बन्धित हैं। यह भी पूर्व ध्वनि कालीन विचार धारा पर आश्रित है। सामान्य अलंकारों का वर्णन अमर की काव्य कल्पलतावृत्ति पर निर्भर करता है तथा केशव के मिश्र-अलंकार, अलंकार शेखर से अनूदित है।[2] इनके विशेष अलंकार दण्डी के काव्यादर्श से प्रभावित हैं। संस्कृत के काव्यशास्त्रों के प्रभाव की दृष्टि से इनकी कविप्रिया और रसिकप्रिया महत्व पूर्ण हैं।

कविप्रिया और रसिकप्रिया—

कविप्रिया के प्रणयन का उद्देश्य कवि के ही शब्दों में स्पष्ट था —

समुझै बाला बालक हूँ, वर्णन पन्थ अगाध"[3]

किन्तु रसिकप्रिया का उद्देश्य इससे भिन्न था—ये रसिकों के लिये थी। कवि ने स्वयं स्पष्ट किया है —

'अति रति गति मति एक करि, विविध विवेक विलास।
रसिकन को रसिक प्रिया, किन्हीं केशव दास॥"[4]

केशव ने कवियों को तीन भागों में बाँटा है —

केशव तीन हु लोक में, त्रिविध कविन के राय।
मति पुनि तीन प्रकार की, वर्णत सब सुख पाय॥
उत्तम मध्यम अधम कवि, उत्तम हरि रस लीन।
मध्यम मानत मानुषनि, दोषनि अधम प्रवीन॥"[5]

१—डा० भागीरथ मिश्र हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ १५०-५६
२—डॉ० भागीरथ मिश्र हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ १७५
३—कवि प्रिया—पृष्ठ ६
४—केशव ग्रंथावली—सम्पादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र पृष्ठ २
५—चतुर्थ प्रभाव कवि प्रिया छंद १, २

इन्होंने यह भी सुन्दर रूप से प्रतिपादित किया कि—

"केशव दास प्रकाश बहु, चन्दन के फल फूल।
कृष्ण पक्ष की जोन्ह ज्यों, शुक्ल पक्ष तम मूल॥"

एवं—

'जहँ जहँ बरणत सिन्धु सब, तँहे तँह रतननि खिले।
सूक्ष्म सरोवर कहें केशव हंस विशेष॥"

उन्होंने कहा कि कवि रूढ़ियों का वर्णन भी करते हैं, यद्यपि कमी किसी ने देखा नहीं।[1]

रसिकप्रिया—

रसिकप्रिया के प्रारम्भ में केशव ने गजानन्द की स्तुति की और शास्त्र सम्मत ढंग से नव रसों को स्वीकार किया, शृंगार को रस राज के रूप में माना।

अति अद्भुत रचि विरंचि—नव रस मय ब्रजराज नित।
एवं, सबको केशवदास हरि नायक है शृंगार।[2]

इन्होंने रस की महत्ता भी प्रतिपादित की है—

"ज्यों बिनु डीठि न सोभिजै लोचन लोल विसाल
त्यौंहीं केशव सकल कवि बिनु बानी न रसाल।[3]

राधिकाजू का वीर रस का वर्णन भी इनकी शृंगार प्रियता को प्रकट करता है। यथा—

गति गजराज साजि देह की दिपति बाजि
हाव रथ भाव प्रतिराजि चली चाल सा।
केसोंदास मदहास असि कुच भट भिरे
भट मर प्रतिभट मले नख जाल सों।

१—कविप्रिया चतुर्थ प्रभाव ४ व ११ वे दोहे के आगे।
२—केशव-ग्रंथावली (खण्ड १) पृष्ठ २-१४
३—केशव ग्रंथावली (खण्ड १)—पृष्ठ ८५

लाज साजि कुलकानि सोच पोच भय मानि
भौंहैं धनु तानि बान लोचन बिसाल सों।
प्रम को कवच कसि साहस सहायक लै
जीत्यौ रति-रन आजु मदन गुपाल सो ॥[1]

शृंगार को भी प्रकाश और प्रच्छन्न भेदों मे बाटा गया है। श्री राधिका जू के प्रच्छन्न और प्रकाश शृंगार के उदाहरण भी दिये गये हैं। इन्होंने काव्यशास्त्र के ही समान नहीं अपितु काम शास्त्र के समान भी नायिकाओं के वर्णन किये हैं। ऐसा वर्णन संस्कृत काव्यशास्त्रकारों म विश्वनाथ ने ऐसे जाति भेदो का संकेत मात्र दिया था किन्तु केशव ने उनका विस्तृत विवेचन किया है।[2] यही नहीं मुग्धा के सुरत लक्षण भी दिये हैं।[3] उन्होंने दंशन-लक्षण बताते हुए प्रकट किया है —

ये दोऊ दरस दरस होंहिं सकाम सरीर।[3]

इसी भाँति दम्पत्ति चेष्टा, मिलन स्थान (जनी के घर, सहेली के घर सूने घर, अतिमय मिलन) श्रीमती राधा की पत्री, मालीन को वचन राधा की सखि का वर्णन आदि को भी इन्होंने विस्तृत रूप दिया है जैसा कि संस्कृत के काव्यशास्त्र म नहीं प्राप्त होता है। इन वर्णनों से रसिक जनों को प्रेम प्रदान करने के उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है।

साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि इनका नायिका वर्णन काव्यशास्त्र के अनुकूल भी है। उदाहरण के लिये अष्ट नायिका वर्णन देखा जा सकता है।

ये सब ज्ञितनी नायिका, बरनी मति-अनुसार।
केशवदास बखानिये ते सब आठ प्रकार ॥
स्वाधिनपतिका उत्कहौं बासकसज्जा नाम।
अभिसंधिता बखानिये और खंडिता बाम ॥

१—केशव-ग्रंथावली पृष्ठ ८५
२—वही पृष्ठ ८
३—वही-पृष्ठ १२

केशव प्रोषित प्रेयसी लब्धा विप्र सु आनि ।
अष्ट नाइका ये सकल अभिसारिका सुजानि ॥[1]

इनमे इन्होने उदाहरण भी दिये हैं जो पठनीय हैं यथा प्रच्छन्न कामाभिसारिका नायिका को देखा जा सकता है ।[2] यहाँ नायिका के चरणों मे सप आ जाते हैं । वर्षा हो रही है, उसे गहनो के गिरने का ध्यान नही है और वह अभिसार याग मग्न हैं । वास्तव मे प्रिय मिलन वेला का यह चित्रण मनोवैज्ञानिक ही है जिसमे अतिशयोक्ति की छटा भी देखने योग्य है ।

केशव ने इसमे वृत्तियो को भी स्थान दिया है जो भरत के नाट्य शास्त्र का स्मरण दिलाती है ।[3] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि आरभटी के लक्षण तो भरत के अनुकूल है ही किन्तु इसके अतिरिक्त केशव ने भरत भिन्न मत प्रतिपादित किया है । यथा—केशवी म भरत केवल शृंगार और हास्य का विधान ही मानते है भरत ने उसमे करुण को स्थान नही दिया । परन्तु केशवदास ने करुण का भी समावेश कर दिया है । भारती मे केशव न भरत के करुण के स्थान पर वीर और हास्य को स्थान दिया है । केशव ने सात्वती में रौद्र के स्थान पर शृंगार का विधान किया है ।[4] इस प्रकार इन्होंने परिवर्तन किये हैं ।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि केशव के परिवर्तन कर देने पर भी टीकाकार सरदार कवि ने टीका म भरत के मत का ग्रहण किया है ।[5] इससे ज्ञात होता है कि यदा कदा कतिपय आचार्य जब संस्कृत काव्य शास्त्रकारो से दूर हट जाते तो अन्य कवि या टीकाकार पुन संस्कृत के आचार्यों की ओर आकृष्ट हो जाते ।

कविप्रिया—

केशव को कविप्रिया नाम की प्रेरणा संभवत आचार्य वामन के निम्नांकित कथन से मिली हो—

१—विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—केशव-ग्रन्थावली (खण्ड १) पृष्ठ ३६
२—वही – पृष्ठ ४४
३—वही–पृष्ठ ८६
४—डॉ॰ नगेन्द्र—हिन्दी काव्यालंकार सूत्र भूमिका पृष्ठ १४६
५—वही–पृष्ठ १४६

प्रणम्य परम् ज्योति र्वामनेन कवि प्रिया।[1]

उन्होने भामह[2] दण्डी[3] रुद्रट[4] और नमि साधु[5] आदि के अनुकूल कहा है—

विप्रन नँगो किजिये मूढ़ न कीजै मित्त।
प्रभु न कृतघ्नी सेइये दूषण सहित कवित्त।।[6]

ये सस्कृत के उपरिकथित पुराने आचार्यो के समान अलकार के समर्थक थे और कहत भी थे कि—

भूषण बिनु न विराजहीं कविता बनिता मित्त।

और इन्होने अलकारो के साधारण और विशिष्ट दो भेद किये। फिर भी ये कभी–कभी अनुभव करते थे कि—

तेरो अग बिनाहो सिंगार के सिंगारे है।[7]

(कहीं–कहीं) इन्होंने अलकारो से तात्पर्य सामान्यत अर्थालकारो से लिया अन्यथा अलकार तो नग्न वर्णन के दोष म (अनुप्रास तो) प्राप्त होते हैं।[8] अलकार विवेचन म दण्डि से सहमत होते हुए भी उन्होने वहाँ अलकार दोष चर्चा नहीं की है। अर्थात् भूषण हीन काव्य को वे नग्न मानते थे। इससे इन पर अग्नि पुराण का प्रभाव माना जा सकता है। इनकी कवि शिक्षा बाग भट्ट के अनुकूल है। नवम् प्रभाव मे स्वभावोक्ति अलकार दण्डी के अनुकूल है, किन्तु केशव ने दण्डी के रूप में गुण का भी समावेश कर दिया है। यथा—

१—वामन—काव्यालकार सूत्र—प्रयोजन स्थापना।
२—१– ११ भामह काव्यालकार
३—काव्यादर्श १–१७
४—नमि साधु की टीका
५—डा० ओमप्रकाश–हिन्दी अलकार साहित्य पृष्ठ ६३
६—कविप्रिया ३–६
७—कविप्रिया ६–१२
८—केशव ग्रथावली–पृष्ठ १०२ (सम्पादक विश्वनाथ प्रसाद मिश्र)

जाको जासों रूप गुण, कहिये ताहि साज।[१]

जसा कि डॉ० ओमप्रकाश कहते हैं[२] यदि इसका पाठ ताता जाति स्वभाव है ता इस पर काव्यादर्श के 'स्वभाव वोक्तिश्च जातिश्च'[३] का प्रभाव भी स्पष्ट हो जाता है। इसी प्रकार इनके विभावना के दो भेद—प्रसिद्ध कारण के बिना अन्य कारण से काय होना एवम् बिना कारण काय होना, इन पर दण्डी के प्रभाव को प्रदर्शित करते हैं। दण्डी कहता है—प्रसिद्ध हेतु व्यावृत्या यत्किंचित कारणान्तरम्। (-१६)

इस भांति इनके हेतु के निम्नांकित उदाहरण—

पीछ आवत प्रकास गनी बडा प्रेम समुद्र रहे पहिरे ही।[४] पर दण्डी की छाया है।[५] इनके ही प्रभाव से विरोध और विरोधाभास एक कर दिये गये हैं और इसका उदाहरण[६] दण्डि के उदाहरण से प्रभावित है।[७] इनका विशेष अलंकार नव्य आचार्यों की विभावना के अनुकूल है और मम्मट के विशेष के तीसरे भेद में उसे खोजा जा सकता है।[८]

इसी भांति ग्यारहवें प्रभाव में केशव के उदाहरण मम्मट के एकावली से प्रभावित दिखाई देते हैं।[९] इस प्रभाव में केशव ने प्राचीन आचार्यों के भेदों को कम कर दिया है।[१०] इनके अमित अलंकार पर प्रारम्भिक कविता की छाप दिखाई देती है और वह हेमचन्द्र की कविता से तुलनीय है।[११] सामाहित के केशव और

१—कविप्रिया २-८
२—डा० ओमप्रकाश-हिन्दी अलकार साहित्य पृष्ठ ६७
३—काव्यादर्श २-८
४—कविप्रिया ६-१८
५—काव्य प्रकाश २-२५७
६—कविप्रिया ६-२०
७—काव्यादर्श २-२३६
८—साहित्य दर्पण १०-१३६
९—डा० ओमप्रकाश-हिन्दी अलकार साहित्य पृष्ठ ६९
१०—वही पृष्ठ ७०-७१
११—वही पृष्ठ ८२

दण्डी के उदाहरण एक ही हैं। यही व्यवस्था रूपक की है। चौदहवें प्रभाव में उपमा के बाईस भेद हैं। जिनमें से पन्द्रह दण्डी से ज्यों के त्यों ले लिये गये हैं। केशव के हेतु अलंकार के भेद-सभाव और अभाव भी दण्डी पर आधारित दिखाई देते हैं। यही अवस्था इनके उपमा और के भेदों की है।

कविप्रिया में केशव की अपनी प्रतिभा के भी दर्शन होते है, यथा—

सहज सिंगारत सुन्दरी, जदपि सिंगार अपार।
तदपि बखानत सकल कवि, सौरहो सिंगार ॥[1]

इसी भाँति कवि नियम वर्णन में इनके जीवन का अनुभव और शास्त्र ज्ञान प्रत्यक्षत प्रकट हो जाता है। यह कथन राजशेखर के कथन के अनुकूल है। इन्होंने यह भी बता दिया है कि कौन-कौन सी वस्तुएँ कठोरता के वर्णन करते समय उपमा स्वरूप रखी जा सकती हैं और कौन-कौन सी निश्चल वर्णन में उपयोगी सिद्ध होती है।[2] इन्होंने बारहवें प्रभाव में वक्रोक्ति को अर्थालंकार माना है। उनके दिये गये भेदों को और उदाहरणों को डॉ० नगेन्द्र ने कुन्तक के वक्रता के भेदों के अनुकूल माना है। कविप्रिया के कतिपय छन्द रामचन्द्रिका में भी प्राप्त होते हैं।[3] इन्होंने बारह मास को भी स्थान दिया है और नखशिख चित्रण भी किया है। इन्होंने चित्रालंकारों को अन्त में स्थान दिया है जिनके आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने चित्र भी दिये हैं।[4]

नायक नायिका और अलंकारों के वर्णन के साथ केशव ने रस विवेचन को भी स्थान दिया है।

रस-विवेचन—

इन्होंने नव रस माने हैं और जैसा कि पहले कहा जा चुका है शृंगार को प्रमुखता प्रदान की है। साथ ही इसे संयोग और वियोग एवम् प्रच्छन्न और प्रकाश नामक भेदों में विभाजित किया है। इसका अनुसरण रीतिकाल में कतिपय

१—आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र-केशव ग्रन्थावली-पृष्ठ १०९
२—वही पृष्ठ १२१, १९७ से २१४
३—वही पृष्ठ १२८
४—केशव ग्रन्थावली के अन्तिम ६ पृष्ठ

कवियों द्वारा किया गया। केशव का नायिकाओं व मान का वर्णन शृंगार तिलक पर आधारित दृष्टिगोचर होता है। भावों और विभावों की परिभाषाएँ केशव की अपनी हैं।[1]

केशव का दोष वर्णन—

अधिकांशतः केशव का दोष वर्णन दण्डी के अनुकूल है। दण्डी ने लिखा है—

अपार्थं व्यर्थ मेकार्थं ससंशयम् अपक्रमम्।
शब्दहीनं यतिभ्रष्टं भिन्नवृत्तं विसन्धिकम्।
देशकाल कला लोक न्यायागम विरोधिच।
इति दोषा दशैं वेते वर्ज्याः काव्येषुसूरिभि।[2]

केशव ने अधिकांशतः इनके ही आधार पर लिखा है—

अंध बधिर अरु पंगु तजि नग्न मृतक मति सुद्ध।
अंध विरोधी पंथ को बधिरासु शब्द विरुद्ध।
छद विरोधी पंगु गनि, नग्न जु भूषण हीन।
मृतक कहावे अर्थ बिनु केशव सुनहुँ प्रवीन॥
अगनन को जो हीन रस अरु केशव यति भंग।
व्यर्थ अपारथ हीन क्रम, कवि कुल तजो प्रसंग॥
देश विरोध न बरनिये, काल विरोध निहारि।
लोक न्याय आगमन के तजो विरोध विचारि॥[3]

इसी भाँति व्यर्थ दोष का उदाहरण दण्डी के आधार पर देखिये—

दण्डी—

एके वाक्ये प्रबन्धेवा पूर्वा पर पराहतम्।
विरुद्धार्थतया व्यर्थ मिति दोषेसु पठ्यते॥[4]

१—रसिक प्रिया ६–१,२
२—काव्यादर्श तृतीय परिच्छेद १२५,२६
३—कविप्रिया तीसरा प्रभाव।
४—काव्यादर्श–तृतीय परिच्छेद

केशव—

> एक कवित्त प्रबंध में अर्थ विरोध जु होय।
> परब पर अनमिल सदा व्यय कहैं सब कोय॥

रसिक प्रिया मे प्रत्यनीक नीरस, वीरस, दु सधान और पात्रदुष्ट नामक दोषो का उल्लेख किया गया है।[1] यह रस दोष शृ गार तिलक पर आधारित प्रतीत होता है।[2] केशव ने औचित्य की अवहेलना को ही दोषो का मूल माना है जो सस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल है।[3] जहाँ अग्रेज कवि कह सकता है—हूम सोरो हैड मेड मोर ब्युटिफुल।[4] वही केशवदास औचित्य रक्षा करते हुए कहते हैं—

> जहाँ सोक माँहि भोग को बरनतु है कवि कोइ।
> केशवदास हुलास सौं, तहीं बिरस रस होय॥[5]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि इनके अलकारों पर सस्कृत के काव्य ग्रथो का प्रभाव है। इनके सामान्य अलकार काव्य कल्पलता वृत्ति और अलंकार शेखर के १६ और १७ वें प्रभाव पर आधारित हैं। इनका यद्यपि सुजाति" वाला दोहा इन पर आनन्द वधन और मम्मट की छाया प्रतिपादित करता है। साधारणतया काव्य कल्पलतावृत्ति अलकार शेखर का भी आधार है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि केशव मुख्यतया अलकारशेखर के साथ काव्य कल्पलता वृत्ति पर आधारित हैं। निम्नांकित उदाहरण इसे स्पष्ट कर देते हैं।

अलकार शेखर—

> शैले महौषधी धातु वश किन्नर निर्भरा।
> शृ गपादगुहारत्न वनजी वाद्य पत्यका॥[6]

१—रसिक प्रिया प्रकाश—१६।१ पृष्ठ ६१

२—डॉ० भगीरथ मिश्र—हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ ५७

३—लाला भगवानदीन—प्रिया प्रकाश पृष्ठ ४१ ३६

४—कीटस—हाईपेरियन

५—केशव ग्रन्थावली—पृष्ठ ६२

६—डा० भगवत स्वरूप—हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास—पृष्ठ १७२

कविप्रिया—

सुग धन बीरघवरी सिद्ध सुवरी पातु।
सुर नरयुत तिरि दरनिये औषध निभर पातु॥

निष्कर्ष—

इस प्रकार निश्चय निकाला जा सकता है कि केशवदास ने संस्कृतशास्त्र को भाषा में सुलभ बनाने का सराहनीय प्रयास किया है। उसमें उन्होंने आश्रय दाता की प्रशंसा करते हुए नायक नायिका और शृंगारिक चित्रों को प्रस्तुत किया है। हम यह कह सकते हैं कि उनके लक्षण ग्रंथों द्वारा वे कई ग्रंथों में आश्रय दाता की अतियुक्ति पूर्ण प्रशंसा से बच गये हैं। वे अधिकांशत पूर्व ध्वनि काल के आचार्यों के अनुकूल रहे हैं फिर भी यत्र-तत्र उन्होंने उत्तर ध्वनि कालीन आचार्यों के ज्ञान का परिचय भी दिया है। ऐसा करने से सम्भवत उनके अहं को तुष्टि मिली है। इनके ग्रंथ इनके पाण्डित्य को प्रदर्शित करते हैं और बहुधा इनकी शृंगार प्रियता और रसिकता को भी प्रकट करते हैं। निम्नांकित उदाहरण इसे स्पष्ट कर देता है —

आलिंगन अंग अंग पीडियत पद्मिनी के
सौतिन के अंग अंग पीडनीं पिराती है।[1]

भाव विभाव आदि की परिभाषा देते समय इन्होंने यत्र-तत्र मौलिकता का भी परिचय दिया है। इनके द्वारा हिन्दी को संस्कृत के ग्रंथों से संस्कृत के ज्ञान प्राप्त करने की दिशा मिली। इन्होंने यह बतला दिया कि लक्षण ग्रंथों के आधार पर राज्याश्रय भी प्राप्त किया जा सकता है और अतिशयोक्ति पूर्ण प्रशंसा से भी बचा जा सकता है।

सुन्दर कवि—

इसी काल के अन्य कवि हैं। इन्होंने शृंगार रस का विवेचन और नायिका भेद का चित्रण सुंदर शृंगार में किया है। इसमें अनुराग को दृष्टानुराग और श्रुतानुराग नामक भेदों में बाँट गया है। भावों की परिभाषा देते हुए कहा गया है —

१—कवि प्रिया—१२।६

सुन्दर मूरति देख, सुन चित में उपजावै चाव।
प्रगट होय द्रग मौंव ते, ते कहियत हैं भाव॥[1]

दशाओं के वर्णन में मरण को छोड़ कर अन्य ९ दशाओं का वर्णन किया गया है। इस प्रकार इनकी रचना भी संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल है।

इसी प्रकार सेनापति बिहारी, मतिराम, भूषण और देव आदि ने हिन्दी साहित्य के शृंगार में अभिवृद्धि करने का प्रयत्न किया।

१—सुन्दर शृंगार-छन्द ६३४

'ग' भाग—रीतिकाल

सम्वत् १७०० से १६०० तक

रीतिकाल में साहित्यकार सस्कृत के ग्रन्थो की छाया लेकर हिन्दी म
रीति ग्रन्थ प्रणयन का प्रयास करते थे। वे स्थान-स्थान पर इस ओर सकेत भी
कर देते थे।[1] साथ ही उनमे से कई एक किसी एक ही ग्रन्थ पर आधारित न
होकर विभिन्न ग्रन्थो और लक्षण ग्रन्थकारो का सहारा लेते थे।[2] यद्यपि सकेत
किसी एक ही साहित्यकार की ओर कर दिया जाता था।[3] इससे बात यह होता
है कि जसे आज का साहित्यकार किसी एक अग्रेज लेखक का नाम लेता है किन्तु
युग प्रभाव स्वरूप उस पर अन्य पाश्चात्य लेखको का भी प्रभाव होता है और उस
यह बात भी नही हो ऐसा भी हो सकता है।[4] इसी प्रकार उस युग म साहित्यकारो
के सामने सस्कृत से लक्षण लेने का द्वारा उन्मुक्त था और परवर्ती रीति ग्रन्थकारो
के सामने कई सस्कृत शास्त्रो की छाया से प्रणीत हिन्दी के ग्रन्थ भी थे। अन
रचयिता उनकी भी छाया ल लेते थे, जिनका नाम नहीं देते थे और अपने प्रिय
सस्कृत साहित्यकार के प्रति ही श्रद्धाञ्जली समर्पित कर कृत कृत्य हो जाते थे—
अथवा बहुत सों ने काव्य प्रकाश और साहित्य दर्पण का अनुसरण किया।[5] तो
दूसरो ने अन्य साहित्यकारो का। कतिपय ग्रन्थकार शब्द प्रवीण ग्रन्थ विचारि'
कह देते थे।[6] अतएव यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इस युग के
शास्त्रकारो के सामने सस्कृत लक्ष्य ग्रन्थ थे और उनका अनुकरण वे मूल से अथवा
कभी-कभी हिन्दी ग्रन्थकारो से कर लिया कर लेते थे। इस प्रकार हिन्दी के

१—आचार्य कुलपति मिश्र, चिन्तामणि त्रिपाठी

२—चिन्तामणि त्रिपाठी

३—वही

४—इन पक्तियो के लेखक का पी-एच० डी० का शोध प्रबन्ध-हिन्दी नाटको का विकासात्मक अध्ययन-एकाकी का विवेचन।

५—डा० भागीरथ मिश्र-हिन्दी रीति साहित्य पृष्ठ ३५

६—चिन्तामणि के शृगार मञ्जरी का प्रारम्भ एवम् डॉ० भागीरथ मिश्र-रीति साहित्य पृष्ठ ८१

साहित्यकार संस्कृत काव्यशास्त्रकारों के सहारे आगे बढ़ रहे थे। कभी-कभी वे मौलिकता प्रतिपादन का भी प्रयास करते थे जिनमें अधिकांशतः वे मौलिकता प्रतिपादन का प्रयत्न संस्कृत काव्य-ग्रन्थों के लक्षणों को मिला जुला कर या भुला कर एक कर देते थे।

आगे चलकर रीतिकाल में संस्कृत ग्रन्थों का सहारा इतना नहीं लिया गया जितना कि भाषा कवियों का, किन्तु भाषा कवि स्वयम् संस्कृत से प्रभावित थे। अतएव इन पर प्रकारान्तर से संस्कृत का प्रभाव परिलक्षित होता है।

इस युग में सामन्ती जीवन अत्यन्त वैभव सम्पन्न था और साधारण जीवन था दरिद्रता ग्रस्त।[१] इस हेतु राजाओं को प्रसन्न कर उनसे प्रशंसा व धन प्राप्त कर जीवन यापन करना कवियों का ध्येय था। क्योंकि अब तक राज्याश्रय की परम्परा दृढ़ हो चुकी थी। इस काय में वे जहाँ संस्कृत लक्षण ग्रन्थों से सहारा लेकर शास्त्रोक्त ग्रन्थ निर्माण करते थे वहीं उन्होंने शृंगारिक चित्रण, अष्टयाम, नायिकाओं के वर्णन और अन्य विलासिता पूर्ण वस्तुओं के दिग्दर्शन में सामयिक जीवन ने प्रेरणा दी। इसलिये कभी-कभी तत्कालीन काव्य में दरिद्रता, नीति और अन्य विषयों के चित्रण भी प्राप्त होते हैं। इसलिये उन्होंने यथार्थवादी चित्रण भी उपयुक्त ढंग से प्रस्तुत किया गया। अतएव यह कहा जा सकता है कि हमारे रीति साहित्य में जीवन के यथार्थ चित्रण विद्यमान हैं और अंग्रेजी साहित्य से सम्पर्क न भी होता तो भी ये विकसित होते। हाँ यह तथ्य अवश्य ही उल्लेखनीय है कि अंग्रेजों के आगमन से आलोचना में यथार्थ चित्रण-अधिकांशतः जीवन के निम्नस्तर के चित्रण का प्रयास बन गया है जो उस समय तक नहीं था। देव ने व्यभिचारी को शारीर और आन्तर भागों में विभाजित किया है। यह विभाजन भोज के अनुकूल है। विनय के भेद करने में उन्होंने संस्कृत का अनुसरण किया है। इसी भाँति संस्कृत की टीका पद्धति का इस युग में प्रयोग किया गया। बिहारी पर सरदार कवि की टीका और रसिक प्रिया पर सूरति मिश्र की जोरावर प्रकाश, टीका इसके उदाहरण हैं। इस काल की भक्तमाल की टीका प्रियादास विरचित टीका

१—डॉ० भगीरथ मिश्र एवम् राम बहोरी शुक्ल—हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास पृष्ठ ४,५

२—वही- पृष्ठ ८४

पद्धति पर लिखी गई है। इसी युग में मल्लीनाथ की प्रणाली पर तुलसी के ग्रन्थों की टीकाओं का प्रणयन किया गया।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि रीतिकाल में हिन्दी साहित्य के लक्षण ग्रन्थों के रूप में संस्कृत के काव्यशास्त्र की पुनरुद्धारणी प्रस्तुत की गई।[1] इस युग में काव्यप्रकाश की निरूपणशैली शृंगारतिलक और रसमञ्जरी की शृंगार रसमयी नायिकाभेद वाली शैली तथा चन्द्रालोक की संक्षिप्त अलंकार निरूपण शैली प्राप्त होती है।[2] इस युग में संस्कृत के आचार्यों में अनुकूल कवि द्वारा अपनाई गई चित्रकाव्य शैली को भी स्थान दिया गया। सेनापति के चित्र काव्य इसके उदाहरण है।

आलोच्य काल में अलंकारग्रन्थ, रसग्रन्थ नायिका भेद आदि ग्रन्थ और काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ प्राप्त होते हैं जिन पर संस्कृत काव्यशास्त्र का प्रचुर प्रभाव परिलक्षित होता है। इनमें इन आचार्यों से संस्कृत काव्यशैली और उनके तत्वों को ग्रहण किया गया। इस काल के आचार्यों का आगामी विवेचन इस कथन की पुष्टि करता है।

चिन्तामणि त्रिपाठी —

चिन्तामणि त्रिपाठी के कविकुल कल्पतरु का आधार काव्य प्रकाश (मम्मट विरचित) और विश्वनाथ विरचित साहित्य दर्पण है। इन्होंने काव्य की परिभाषा देते हुए कहा है—

"बात कहाऊ रस में जु है कवित कहावे सोय"

यह साहित्य दर्पण के वाक्य रसात्मक काव्य से स्पष्ट रूप से प्रभावित प्रतीत होता है। उनका निम्नांकित कथन—

सगुण अलंकारण सहित, दोष रहित जो होय,
शब्द अर्थ वारौ कवित विबुध कहत सब कोइ।

१—देखिये डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त पहला भाग, प्राक्कथन।

२—डा० नगेन्द्र—रीति काव्य की भूमिका।

मम्मट की उक्ति "तद् दोषौ शब्दार्थौ सगुणाकलकृति पुन क्वापि"[1] का स्मरण दिलाता है। यहा यह कथनीय है कि चिन्तामणि ने युग के अनुकूल अलकार सहित रचना का काव्य कहा है। उन्होंने कवित पुरुष की कल्पना की है। ये कहते हैं—

> जे रस आगे के धरम ते गुन बरने जात,
> आतप के ज्यों सूरतादिक निहचल अवदात।
> सब अथ लघु बरणीय जोवन रस जिव जानो,
> अलकाराहारादि ते उपमाधिक गन आनि॥
> श्लेषादिक गन सूरतादिक से माने चित।
> बरणी रीति सुभाव जो वृत्ति–वृत्ति सी मित॥

यहाँ इन्होने रीति को स्वभाव कहा है जो सस्कृत के आचार्यों के अनुकूल है यथा—विश्वनाथ और अकसूरी ने रीति को काव्य स्वभाव कहा है। इन्होने रुद्रट के आधार पर वक्रोक्ति का काकु और श्लेष भेदों मे बाटा है—

> और भाँति को वचन जो और लगावें कोई,
> कै श्लेष के काकु सो वक्रोक्ति है सोय।[2]

इन्होने सस्कृत के आचार्यों की छाया लेते समय उनकी ओर सकेत भी किया है—

> पद आरोहारोह सो, जोग समाधि प्रकार।
> ऐसे ओजहि कहत है मम्मट बुद्धि विचार॥

मम्मट के समान इन्होंने वृत्तिया का विवेचन वृत्यानुप्रास के भेदो के रूप मे ही किया है। इसी भाँति इन्होंने मम्मट के समान तीन गुणो की ही सत्ता मानी है।

> प्रथम कहत माधुर्य पुनि ओज प्रसाद बखानि,
> त्रिविधि गुण तिन में सब सुकवि लेत मन मानि।

१—काव्य प्रकाश प्रथम उल्लास सूत्र २
२—कविकुल कल्पतरु २–५
३—डा० नगेन्द्र–हिन्दी काव्यालंकार सूत्र पृष्ठ १४६

इन्होंने वामन और मम्मट दोनों के अनुकूल विवेचन किया है। शृंगार मंजरी इसका उदाहरण है। यह नायिका भेद सम्बन्धी ग्रन्थ है। इसके बारे में लिखा है—रसमंजरी आमोद परिमल शृंगारतिलक रसिक प्रिया रसार्णव प्रताप रुद्रीय सुन्दर सरस माधव दशरूपक विलास रत्नाकर काव्य परीक्षा काव्यप्रकाश, प्रमुख ग्रन्थ वितादि प्राचीन ग्रन्थ में जो विचार न रस युक्त युक्ति तिन को संग्रह करि और छाडि प्राचीनोदाहरणानुसार नायक भेद वर्णित करौं—[1]

इससे प्रतीत होता है कि लेखक ने संस्कृत काव्यशास्त्र का समुचित सहारा लिया है। इस ग्रन्थ में गद्यात्मक व्याख्या भी है जो कवि की अपनी मौलिकता है। इन्होंने ग्रन्थ में रस नायिका भेद आदि के सम्पूर्ण अंगों को चित्रित करने का प्रयत्न किया है। यह काव्यप्रकाश के अनुकूल है। इस प्रकार ये शैली और भाव की दृष्टि से संस्कृत काव्यशास्त्र पर अवलम्बित हैं।

तोष कृत सुधानिधि—

सुधानिधि में कवि तोष ने रस, रसाभास, हाव-भाव, दोष, वृत्ति और नायिका भेद का वर्णन किया है। अतएव यह संस्कृत काव्यशास्त्र पर आधारित प्रतीत होता है। इसी भाँति कवि धनी ने भी नखशिख षट्ऋतु वर्णन और तत् सम्बन्धित विषयों पर पुस्तकें लिखी होंगी। ऐसे प्रमाण प्राप्त होते हैं।[2] नखशिख में अज्ञात यौवना का चित्र सुन्दर बन पड़ा है। वहीं उसकी चेष्टाओं का वर्णन किया गया है। यथा-कालि ही गूँथि बबा कि सौं मैं गजमोतिन की पहिरी अति माला।

आयी कहाँ ते इहाँ पुखराज की संग गई जमुना तट बाला।
न्हात उतारी हौं न बनी प्रवीण हँसे सुनी बैनन नैन रसाला।
जानति ना अंग की बदली सब सों बदली-बदली कहे माला।

इनसे प्रौढ़ लेखक है जोधपुर नरेश जसवन्तसिंह जी।

जसवन्तसिंहजी भाषाभूषण—

हिन्दी साहित्य के प्रमुख आचार्यों में जसवन्तसिंहजी का नाम उल्लेखनीय है।[3] एक ही दोहे में लक्षण और उदाहरण देकर जसवन्तसिंहजी ने जयदेव के चन्द्रालोक

१—देखिये चिन्तामणि त्रिपाठी कृत शृंगार मंजरी।

२—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २२५।

३—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २२६।

की शैली का अनुसरण किया है। इन्होंने इस अलंकार ग्रंथ का प्रणयन विषय की दृष्टि से कुवलियानन्द को आधार बना कर किया है। परन्तु कई स्थानों पर चन्द्रलोक की स्पष्ट छाया दिखाई देती है। उदाहरणार्थ इनके अत्युक्ति और पर्यस्तापह्नुति के उदाहरणों पर चन्द्रलोक की स्पष्ट छाया है।[१] ये साहित्य जगत के सजग पुजारी थे और इनमें प्रतिभा भी थी। साहित्य में इनकी प्रगाढ़ रुचि दिखाई देती है। वह व्यक्ति जिनके बारे में इतिहासकार कहते हैं कि—

महाराजा लक्ष्मणसिंह ने अपने आप को इतना शक्तिशाली बना लिया था कि औरंगजेब उनसे बराबर डरता रहता था और उन्हें हिन्दू धर्म का शक्तिशाली समर्थक मानता था। इनकी मृत्यु पर उसने बहुत प्रसन्नता प्रकट की।[२] उनका हिन्दी साहित्य को कविता नाटक और शास्त्रीय ग्रन्थ प्रदान करना निश्चित रूपेण उनकी महान् प्रतिभा का परिचायक है। इनके भाषाभूषण में संस्कृत की सूत्रात्मक पद्धति का अनुकरण किया गया है और प्रतीत होता है कि यह एक प्रौढ़ ग्रन्थ है। इसमें भाषा और भूषण का संयोग है और संस्कृत के विभिन्न शास्त्र इसके आधार है।[3] इन्होंने रुद्रट के समान वक्रोक्ति के लिये कहा है —

> वक्रोक्ति स्वर श्लेषसों अर्थ फेर जो होय।
> रसिक अपूरब हो पिया बुरी कहत नहिं कोई।[४]

आपने चन्द्रलोक और कुवलियानन्द की शैली को लोकप्रिय बना दिया। इसका प्रारम्भ तो करणेश के श्रुतिभूषण से हो चुका था पर इसे प्रतिष्ठा जसवन्तसिंहजी ने प्रदान की।[५] इन्होंने चन्द्रालोक की शैली तो ग्रहण की किन्तु विष

१—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २२७
२—डा० एम० एल० शर्मा-जर्नल आफ दी राजस्थान इंस्टिट्यूट आफ हिस्टोरिकल रिसर्च दिसम्बर ६३ पेज २३।
३—रामचन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २२६ एवं भाषा भूषण २१०, २११ और,
अलंकार शब्दाय के कहे एक से आठ
किये प्रकट भाषा विषय देखि संस्कृत पाठ (२०८)
४—भाषा भूषण, अलंकार संख्या १८६
५—डा० नगेन्द्र-हिन्दी रीतिकाव्य की भूमिका पृष्ठ १४०।

विवेचन में कुवलयानन्द के समान शब्दालंकारों को महत्व नहीं दिया। अन्त में केवल समास रूप से उन्हें स्थान दे दिया है। इनके यमक के लक्षण—

जमक शब्द के फेरी श्रवण, अर्थ जुदा सो जानि।[1]

पर काव्य प्रकाश के यमकालंकार पर पुनः श्रुति का छाया दिखाई देती है।

इन्होंने कुवलयानन्द और चन्द्रालोक के समान अलंकार लक्षण अर्थालंकारों और शब्दालंकारों के सम्बन्ध अथवा दोनों आदि के विवेचन की अवहेलना की है। इन्होंने प्रथम सौ अलंकार कुवलयानन्द के ही समान रखे हैं।—नाम भी वही हैं। इसके पश्चात् के निम्नांकित अलंकार हैं।—कारणमाला को इन्होंने गुम्फ और उत्तर को गुणोत्तर कहा है। गुम्फ नाम चन्द्रालोक से लिया गया है।[2] इनके उपमा के उदाहरण—ससी सो उज्जल तिय वदन पल्लव से मृदु पान।[3] पर मधुर सुधावदधर पल्लव तुल्योति पनव पाणि का प्रभाव है।[4] इसी भाँति प्रतीप के उदाहरणों और लक्षणों पर कुवलयानन्द का स्पष्ट प्रभाव है।

जयदेव ने स्मृति भ्रांति और संदेह के लक्षण नाम से ही मान लिए हैं। महाराजा जसवंतसिंहजी ने भी लक्षण नाम प्रकाश पड़ा है। इनके दीपक तथा आवृत्ति दीपक पर भी कुवलयानन्द की छाप है। शब्दालंकारों पर मम्मट और विश्वनाथ का प्रभाव है। अनुप्रास पर दण्डी का। अलंकारों के उदाहरण कहीं-कहीं अनुवाद है और कहीं छायानुवाद।

निष्कर्ष—

इस प्रकार हम देखते हैं कि जसवंतसिंहजी ने चन्द्रालोक की शैली का अनुसरण किया है। विषय को कुवलयानन्द चन्द्रालोक और साहित्य दर्पण एवं काव्य प्रकाश प्रभृति ग्रंथों से ग्रहण किया है। कहीं-कहीं इन्होंने नामों में परिवर्तन भी कर दिया है। कहीं एक अलंकार के कुछ भेद कम कर दिये हैं तो कहीं कुछ

१—डा० नगेन्द्र-हिन्दी रीति काव्य की भूमिका पृष्ठ २०२

२—गुम्फ कारण माला स्यात् यथा प्राक प्रात कारण ५।८७

३—भाषा भूषण ४३

४—साहित्य दर्पण ४३

बढा दिया है इनके उदाहरण बहुधा बडे सुन्दर बन पडे हैं जो इस ग्रन्थ की प्रसिद्धि के कारण हैं और लेखक की मौलिक कवित्व शक्ति के परिचायक भी। युद्ध भूमि म शत्रु को कपा देने वाले व्यक्ति का एमे ग्रथ प्रदान करना वास्तव मे सराहनीय है।

इनके ग्रन्था की टीकाएं और तिलक भी लिखे गये यथा वंशीधर प्रतापसिंह और श्री गुलाबराय ने टीकायें लिखी। यह टीका लिखने की शैली सस्कृत काव्य-शास्त्र के अनुकूल है। इनके साथ ही नायिका भेद सम्बन्धी फतेप्रकाश (छेमाराम विरचित) शम्भुनाथ का नायिका भेद और मडन का रस रत्नावली तथा रस विलास इत्यादि सस्कृत काव्य शास्त्र का अनुकरण करते हैं। इनम मतिराम विशेष उल्लेखनीय है।

मतिराम—

मतिराम ने अलकार पचाशिखा मे सस्कृत के चन्द्रालोक के आधार पर लक्षण दोहा मे और उदाहरण कवित्तो म दिये हैं। इसके नाम पर ही सस्कृत के घोर पचाशिखा का प्रभाव दिखाई देता है। इसके उदाहरण मौलिक प्रतीत होत हैं। कवि का अपना मत है—

सस्कृत को अर्थ ले, भाषा शुद्ध विचारि,

उदाहरण क्रम से किये लीजै कवि सुधारी मतिराम के ग्रथ इतने प्रसिद्ध हुए कि इन पर टीकायें लिखी गई—प्रतापसिंह ने सनवन इस पर तिलक लिखा।[1] हरिदासजी मिडायत न भी मनोहर प्रकाश नाम से टीका बनाई। ललित ललाम पर गुलाबराज न ललितकौमुदी नाम की टीका का प्रणयन किया। इनके निम्नांकित काव्यशास्त्र और नायिका भेद सम्बन्धी ग्रथ उल्लेखनीय है। रसराज म इन्होन सन्देशरासक और रामचरित मानस आदि के समान अपने को अज्ञ कहा है और कहा है—

बरनि नायक नायकनि रचियो ग्रन्थ मतिराम।[2]

अतएव इसमे नायक नायिका का वर्णन प्राप्त होता है यथा कही नायिका तीन विधि प्रथम स्वकीयामान, परकिया पुनी दूसरा गणिका तीजी जान।[3]

१—मतिराम ग्रथावली पृष्ठ २२६
२—वही पृष्ठ २५४
३—वही पृष्ठ २५४

रसानुसार इसके भेद प्रभेद किये गये हैं। यहाँ पर नायिका का हावा दि के भेदानुसार और काम शास्त्रों के अनुकूल न होकर काव्यशास्त्रों के समान है। नायिका वर्णन के पश्चात् नायक वर्णन ने भी स्थान प्राप्त किया है। इसमें उत्पत्ति का वर्णन भी है। सखी के काम निम्नलिखित बताये गये हैं—

मंडन अरु शिक्षाकरण, उपालम्भ परिहास।
काज सखी के जानिये औरो बुद्धि विलास।[1]

मतिराम सतसई में दोहों में सरस वर्णन प्राप्त होता है यथा—

सरद सिसु सीतल लगी, प्रतिदिन सरद उदोति।
लहलह ज्योति ज्वार की मद गवाँरी की होती।(११)

× × × ×

पगी प्रेम नंदलाल के अरघु आप जल जाय।
घरी घरी घर के तरें घरनी देन दरसाय।(२०)

× × × ×

उजियारि मुख इंदु की परि कुचनि उर आनि।
कहा निहारती मुग्ध तिय पुनि पुनि छन्द न जानी।(१०७)

रसराज में शृंगार और नायिका भेद का सफल चित्रण हुआ है। इन्होंने भी आधार संस्कृत ग्रन्थों को ही रखा है।[2] इनके ललित ललाम की निम्नांकित उक्ति—

कवितार्य जाने नहीं, कछुक भयो सजोग।

में भाषा कवियों का दैन्य है संस्कृत पण्डितों का गर्वोक्ति नहीं। ललित ललाम में इन्होंने रस और अलंकारों पर विचार किया है।

ललितललाम में ४०१ छन्द है जिनमें तीनसौ साठ छन्दों में अलंकारों का वर्णन है। इन अलंकारों की संख्या तथा इनका क्रम कुवलयानन्द के अनुकूल है।

१—मतिराम ग्रंथावली पृष्ठ २।४

२—मतिराम ग्रंथावली कृष्ण बिहारी मिश्र द्वारा भूमिका एवं नायिका वर्णन।

किन्तु भेदों में अन्य पुस्तकों का सहारा लिया गया है। अलंकारों के लक्षणों पर चन्द्रालोक कुवलयानन्द काव्यप्रकाश और साहित्यदर्पण के प्रभाव परिलक्षित होते हैं। निम्नांकित उद्धरण इसे स्पष्ट कर देंगे—

पूरब-पूरब हेतु जहाँ उत्तर-उत्तर काज।[1]

यह साहित्य दर्पण और काव्य प्रकाश से तुलनीय है। इसी भाँति समासोक्ति के लक्षण—जहाँ प्रस्तुत में होत है अप्रस्तुत का ज्ञान' पर समासोक्ति परिस्फूर्ती—चन्द्रालोक की स्पष्ट छाया है। इनके उपमालंकार पर भी संस्कृत का प्रभाव है। यथा—

क—यथोत्तर चेत्पूर्वस्य पूर्वस्यार्थं स्य हेतुता। (काव्यप्रकाश)
ख—पर पर प्रति यदा पूर्व पूर्वस्या हेतुता। (साहित्यदर्पण)
ग—पूरब पूरब हेतुता जह उत्तर—उत्तर काज। (ललित ललाम)

यहाँ अवस्था उत्प्रेक्षा तथा अतिशयोक्ति की है।

क—जहाँ बरनिय दोहिनि की छबी को उल्लास। (ललितललाम)
ख—उपमा यत्र सादृश्य लक्ष्मीरुल्ल सति चयोर्द्व। (जयदेव)

और

परिवृति विनिमयो योर्थाना स्यात समासमय (काव्यप्रकाश)
घाटि बाढि ह्वै बात को, जहाँ पलटिबो होय। (ललितललाम)

मतिराम ने संस्कृत ग्रंथों का सहारा लिया है और उन पर संस्कृत सिद्धांतों की छाया युग प्रभाव और अन्य कवियों के माध्यम से भी गिरी है। इनके उदाहरण कहीं-कहीं बड़े ही ललाम है, यथा—

तेरे अंग-अंग में मिठाई और लुनाई भरी।
मतिराम कहत प्रकट यह पाइये।
नायक के नैननि में मन सदासौ सब—
सौतनि के लोचननी लोन सो लगाईउ।[2]

१—यह ललितललाम में कारणमाला का उदाहरण है। ऐसा ही साहित्य दर्पण में हो है। और काव्यप्रकाश में भी यही प्राप्त होता है।
२—मतिराम ग्रंथावली में नायिका वर्णन

इनके विवेचन के निष्कर्ष में हम डॉ० ओमप्रकाश के साथ कह सकते हैं कि कवि का उद्देश्य अपने आश्रयदाता को रिझाना प्रतीत होता है।

भूषण—

वीर काव्य के लिये प्रख्यात कवि भूषण भी युग प्रभाव से नहा बच सके हैं। इन्होने ३८२ छन्दों में शिवराज भूषण की रचना की जिसमें ३५२ छन्दों में अलकारों के लक्षण देकर उदाहरण शिवाजी से सम्बन्धित लिख दिये हैं। इस पर भट्टी काव्य की छाया का अनुमान लगाया जा सकता है। इनके अन्य ग्रन्थ भूषण उल्लास और दूषण उल्लास अप्राप्य ही हैं। इन्होने नवीन—सामान्य विशेष और भाविक छवि अलकारों की उद्भावना का प्रयत्न किया। किन्तु ये प्राचीन के नवीन नाम मात्र ही हैं।[1]

जयदेव कृत चन्द्रालोक में भाविक छवी प्राप्त हो जाती है।[2] भूषण ने शिवराज भूषण की रचना का उद्देश्य यह बताया है कि—

> शिव चरित्र लखियो भयो कवि भूषण के चित्त।
> भांति-भांति भूषणनिसों भूषितकरो कवित्त।[3]

इसमें अर्थालकारों के अन्दर शब्दालकार जिसमें चित्रालकार भी है और सब सगर का विवेचन किया है। रुद्रट के समान वक्रोक्ति को काकु व श्लेष दो भेदों में बाटा है—

> जहाँ श्लेषसों काकुसों अर्थ लगावें और।
> वक्र उक्ति ताको कहत भूषण कवि सिर मौर।[4]

यहाँ यह ध्यान योग्य है कि काकू और श्लेष दाय भेद तो रुद्रट के समान है। किन्तु इसे अर्थालकार मानना रुय्यक और अप्पय दीक्षित का प्रभाव है। इन्होने उत्तम ग्रन्थों का अध्ययन किया और अपना मत भी प्रतिपादित करने की आकांक्षा प्रकट की।

१—डा० भागीरथ मिश्र हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ ८६
२—चन्द्रालोक ५वा मयूख
३—भाषाभूषण २६
४—शिवराज भूषण-पृष्ठ १२७

युत चित्र सगर एक सत, भूषण कहे अरु पाच।
लखी चारु ग्रथनि निजि मतौ युत सुकवि मानव साच।[1]

इनके ग्रथो पर चन्द्रालोक का प्रभाव परिलक्षित होता है और प्रतिपोपमा ललितापमा और भावक छवी का उल्लेख इसका साक्षी है। भाविक छवी का लक्षण जयदेव के अनुकूल है पर उदाहरण म मौलिकता है। जहा जयदेव शृ गारिकता के पुजारी हैं वही भूषण वीरता के समर्थक हैं—

जहाँ दूरस्थित वस्तु का देखत बरनत कोय।

× × × ×

रातहु द्यास दिलीस तक सुव सनिक सूरती मूरती मेरी।

जयदेव के ही अनुसार कारणमाला को गुम्फ कहा गया है। जयदेव के कई अन्य लक्षण भी भूषण द्वारा अनूदित किये गये हैं।[2] साथ ही इनके निम्नांकित कथन मनमति है पुनरुक्तिमी पर पौनरू क्त्यात्व भाषण-साहित्य दपण के पुनरुक्त वदाभास का छाया है। प्रतिपोपमा का उदाहरण जयदेव पर आश्रित है।[3] इन्होंने हिन्दी कविता से भी सस्कृत के ज्ञान को प्राप्त किया था।[4] चाह जो कुछ हा इनके वणन सस्कृत काव्यशास्त्रकारो मे प्रभावित है और वीरता के उदाहरण इनके अपने है। वीर रस पर इनका अपना अधिकार है।

आचाय कुलपति मिश्र इनके समान सस्कृत ग्रन्थो से तो प्रभावित हैं परन्तु वे वीर रस के कवि नही है।

कुलपति मिश्र—

कुलपति मिश्र ने काव्यप्रकाश के आधार पर २० गुणो म से ३ की ही सत्ता मानी है।

१—भाषाभूषण ३७६
२—विरोध और विरोधाभास
३—जहां प्रसिद्ध उपमान को करी बरनित उपमेय। विख्यातयों प मानय मत्र श्याप मेयता।
४—डा० ओमप्रकाश-हिन्दी अलकार साहित्य पृष्ठ १७६

तीन गुण ही बीस गुण मधुररू ओज प्रसाद।
अधिक मुख लिखिये नहीं बरने कौन स्वाद।

इसी भांति इनके गुण लक्षण मम्मट के अक्षरशः अनुवाद है।[1] इन्होंने वृत्तियों का वर्णन भी मम्मट के अनुकूल वृत्तियानुप्रास के अन्तर्गत किया है।—
उपनागरिका मधुर गुण व्यंजक वर्णन होय।

ओज प्रकाशक वर्णमय पुरुष कहिये सोय।
वरण प्रकाश प्रसाद को कर कोमला सोय।
तीन वृत्ति गुण भेद भेदते कहे बड़े कवि लोय।[2]

इनके रस रहस्य में यह प्रकट करते हैं—

जिते साज है कवित्त के मम्मट कहे बखान।
ते सब भाषा में कहे रस रहस्य में आन।[3]

इसमें इन पर मम्मट का आभार प्रदर्शित होता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनके रस रहस्य को मम्मट का छायानुवाद माना है।[4,5] इन्होंने अपना मत वचन का में प्रतिपादित किया है। इनके जग सम्पनी आनन्द अनि दुखिन डारे न्याय पर भी मम्मट की छाया दिखाई देती है। इन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुसार कहा है—

दोष रहित अरु गुण सहित कछुक अल्प अलंकार।
सबद अरथ सो कवित्त है ताको करो विचार।[6]

इसको इन्होंने साहित्य दर्पण के अनुसार आलोचना की और अपना परिभाषा भी प्रदान की। काव्य की परिभाषा इन्होंने यह करते हैं—

१—डा० नगेन्द्र-हिन्दी काव्यालंकार सूत्र पृष्ठ १५३
२—वही-पृष्ठ १५८
३—रसरहस्य ८।३१
४—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २३८
५—डा० नारायणदास खन्ना-आचार्य भिखारीदास पृष्ठ ६४
६—रसरहस्य—१।२३

जस सम्पति आनन्द अति, दुरितन डारे खोय।
होत कवित ते चातुरी जगत राम बस होय।[1]

इस पर काव्य यशसेथ कृते, व्यवहार विदे की शैली का प्रभाव है। यह रस ध्वनि को प्रधान मानते हैं और साथ ही काव्यप्रकाश के अनुदित अंशों से रस विभावादि के उदाहरण भी देत हैं।

इमस इनके ग्रन्थ पर काव्यप्रकाश का प्रभाव परिलक्षित होता है। दोषों के वर्णन और परिहार म भी काव्यप्रकाश का सहारा लिया गया है। इन्होंने दोषों की परिभाषा निम्नांकित ढग से दी है—

शब्द अर्थ में प्रकट है, रस समुझन नहिं देय।
सो दूषण तन मन विया ज्यौं जिय को हरि लेय।
जाहि रहित ह्वै जो रहे, जिहि फेरे फिरि जाय।
शब्द अर्थ रस छन्द को सोई दोष कहाय।

इन्होंने काव्यप्रकाश का सहारा लेते हुए भी सुन्दर रूप से व्यक्त किया है कि काव्य म रस और ध्वनि महत्वपूर्ण है। ये रस ध्वनि वाद की प्रधानता मानते हैं और काव्य लक्षण के बहुत से लक्षणों के इन्होंने अनुवाद कर दिये हैं।[2]

सुखदेव मिश्र—

कुलपति मिश्र के समान इनका रसार्णव, भी रस से सम्बन्धित पुस्तक है। यह मतिराम के समान रसों का उल्लेख करते हैं। यह रसमंजरी की सी पुस्तक है। इन्होंने नायक नायिका शृंगार रस और विभावादी पर यथेष्ठ प्रकाश डाला है। इनके उद्दीपन वर्णन और मुग्धा भी मारिका नायिका के चित्रण की डा० भागीरथ मिश्र ने मुक्तकण्ठ स प्रशंसा की है।[3]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनके शृंगार वर्णन को बहुत ही सुन्दर घोषित किया है।[4]

१—रसरहस्य १-१८
२—डा० भागीरथ मिश्र-हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ ९१
३—वही।
४—हिन्दी साहित्य का इतिहास २४१

ये छन्दशास्त्र के भी पण्डित माने जाते हैं।[1] इनके अतिरिक्त रामजी कृत नायिका भेद, गोपालराय कृत रससागर भूषणविलास, बेनिराम विरचित रस विवेक, बलवीर कृत उपमालंकार आदि संस्कृत काव्यशास्त्र के आधार पर लिखे गये हैं। आचार्य देव ने अपनी प्रतिभा से रीति काल में प्रमुख स्थान प्राप्त किया है।

आचार्य देव—

इनके रस विलास, भवानी-विलास, शब्द रसायन या काव्य रसायन आदि पर संस्कृत काव्यशास्त्र का प्रभाव दिखाई देता है। काव्य पुरुष के रूप में इन्होंने रीति को अंग संस्थान कहा है जो शास्त्रानुकूल है। देव ने शब्द रसायन में रसवादी शास्त्रकारों के समान सहृदय सामाजिकों को ही काव्य को समझने वाला माना है। रुद्रट के समान व वक्रोक्ति को काकु और श्लेष नामक भेदों में बाँटते हैं—

> काकु वचन अश्लेष करी और अर्थ के जाय।
> सो वक्रोक्ति सुवरनिय उत्तम काव्य सुभाय।[2]

रस विलास में उन्होंने स्त्रियों के भेदों पर प्रकाश डाला है। भाव विलास में व संचारी के ही अन्तर्गत सात्विक को भी रखते हैं। वे कहते हैं ते सारीर अरु आनर विविध कहत भरतादि—

> स्तम्भादिक सारीर अरु आतर निर वेदादि।[3]

इनके काव्य रसायन का आधार ध्वन्या लोक है। फिर भी यह कहना उचित ही होगा कि इन्होंने अंधानुकरण नहीं किया है। उदाहरणार्थ भवानी विलास देखा जा सकता है।

भवानी विलास में रस को राधा और कृष्ण से उद्भूत आनन्द के रूप में स्वीकार किया है। व शृंगार को ही काव्य का मूल मानते हैं।

१—रामबहोरी शुक्ल और डा० भागीरथ मिश्र-हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास-पृष्ठ ६०

२—भावविलास पृष्ठ १४८

३—भाव विलास पृष्ठ ७

भूलि कहत नव रस सुकवि सकल मूल शृ गार ।
तेहि उछाह निरखेह ले वीर सात सचार ।[1]

इन्होने सात्विक भावो का संचारी से भिन्न अनुभावो के अन्तर्गत रखा है ।

कनव के अनुसार ये रस को प्रकाश और प्रछन्न भेदो म बाटते हैं । इन्होने शृगार को वियोग के बीच म आने वाला माना है । वास्तव म मनोविज्ञान के अनुकूल है । य कहते हैं—

तीन मुख्य नव रसनि, द्वै द्व प्रथम निलीन ।
प्रथम मुख्य तिन हुन पे दोऊ तेहि आधीन ।
हास भाव शृगाररस, रुद्र, करुण रस वीर ।
अद्भुत बीभत्स सता, साता बरनत धीर ।[2]

इन्होने रस निप्पती के सम्बन्ध मे शास्त्रकारो की व्याख्या तो नहा की है किन्तु रुपक बाधकर उसे समझाया है ।

रस अ गुर थाई विभाव रस के उपजवन,

× × × ×

रस अनुभव अनुमान सात्वि की रस झलक्वनि
छिन छिन नाना रूप रसननि सचारी उजक ।
पुर रस सयोग विशद रस रग समुद्धके ।
ये होत नायिका दान में प्रत्यधिक रस भाव पट ।
उपजावत शृ गारादि गावत नाचत सुकवि नट ।[3]

य भट्ट लोलट क उत्पत्ती वाद के समथक थे क्योकि इन्होने रस को उद्भावक विभाव का कहा है । रस की स्थिति भी इन्होने नायिकादि मे समझी है और नट क कौशल से उसकी उत्पत्ति मानी है । इन्होने नाट्य शास्त्रो के समान भी नाटको म आठ रस और काव्य म काव्यशास्त्रो के अनुसार नव रस माने हैं ।

१— ११११०
२—शब्द रसायन ततीय प्रकाश पृष्ठ ३१
३—शब्द रसायन पृष्ठ २६

रति चण्डी होत शृंगार रस हासि चडो क हास।
करुण सोक घडी एय रसा रस रिस चडी करत प्रकाश।[1]

इन्होने रसा क कई भेद किये है यथा केशव के अनुसार प्रच्छन्न और प्रकाश भेदा को भी इन्होने स्थान दिया है—

चित थापित फिर बीजविधि होत अ कुरित भावादि।

इन्होने करुणा के भी पाँच भेद माने है और विभत्स के दो भेद। तक प्रधान विधि को अपना कर इन्होने कहा है कि नायिका का आकषण ही उन्हें नायिका वणन पहले करने को वाध्य करता है।

इन्होने दया वीर, दानवीर और युद्धवीर भी स्वाकार किये हैं। भाव विलास म य भरत का नाम अत्यन्त श्रद्धा से लेते हैं। नायक नायिका और अलकारा का वणन केशव के अनुसार करत हैं। इन्होने भाव विलास म उद्दीपन का सुन्दर वणन किया है। ये छन्द नामक चौंतीसवा सचारी मानते है। डा० भागीरथ मिश्र न रस तरगिणी के अनुकूल कहा है।[2] और आचाय रामचन्द्र शुक्ल की भी यही मान्यता थी।[3]

इसी भाति इन्होने जो वितरक के अवान्तर विप्रपती विचार सशय और अध्यवशाय भेद किये है वे भी रस तरगिनी क अनुवाद ही है।[4] ये भेद प्रभेद ता वढाये जा सकते है। क्योकि इनके लिये विश्वनाथ ने कह दिया था कि ये तो लक्षणमात्र है जिनकी वृद्धि सम्भव है। इन्होने अलकारा क निम्नाकित ३६ भेद मान्य हैं। य कहत हैं—

अलकार मुख्य ३६ हैं देव कहे ये हा पुरानो मुनि मतनि में पायिय।
आधिमक कवित के सगत अनेक और इन्हीं के भद और विवद बताइये।[5]

१—शब्द रसायन पृष्ठ २०
२—हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ ६७
३—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ ३२० ३२१
४—डा० नगेन्द्र रीति काव्य की भूमि पृष्ठ १४६
५—भाव विलास ५।२

काव्य रसायन में इन्होंने काव्य का स्वरूप निर्माण किया है। ये कहते हैं—

शब्द जीव तिहि अर्थ मन रसमय सुजस शरीर।
चलत वहै जुग छंद गति अलंकार गंभीर।

इन्होंने तीन रसों को मुख्य माना है। इनकी मान्यता थी—

तीन मुख्य नव रसनि में द्वय द्वय प्रथम विलीन।
प्रथम मुख्य तिन तिहुन में दोऊ तिहि आधीन।

इस प्रकार का वर्णन भावना की दृष्टि से भरत के नाट्यशास्त्र पर आधारित दिखाई देता है। आचार्य ने साहित्य दर्पण निम्नांकित कथन—

वाक्य रसात्मकं काव्यं दोषा स्तस्यापकर्षका।
उत्कर्ष हेत वह प्रोक्ता गुणालंकार रीतयः।

की छाया में कहा है—

मानुष भाषा मुख्य रस भावनायिका छंद।
अलंकार पंचांग ये कहत सुनत आनंद।

इसमें इन्होंने उल्लेख, समाधि, दृष्टान्त विरोधाभास असंभव असंगति परिकर तथा तद्गुण अलंकारों को अपने काव्य विलास में वर्णित अलंकारों में जोड़ लिया है। ये नवीन अलंकार चन्द्रालोक में वर्णित है।[1] इनके द्वारा वर्णित गौण अलंकार कुवलियानन्द में पाये जाते हैं। उपमालंकार में इन पर केशव का प्रभाव दिखाई देता है। जो स्वयं दण्डी से प्रभावित है। इसीलिए ये अंततो गत्वा दण्डी से प्रभावित है।

निष्कर्ष—

अतएव इन पर नाट्य शास्त्र, भोज के ग्रंथ और रसतरंगिणी का अधिक प्रभाव दिखाई देता है, और चन्द्रालोक व काव्यप्रकाश का कम।[2] इन्होंने कवि कुल

१—दे० उपमा का विवेचन।
२—रामबहोरी शुक्ल और डा० भगीरथ मिश्र-हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास पृष्ठ ६०-६१

हिन्दी म अलकारो के महत्व के कारण इन्हान अलकार रसखान कहा है। इन्होने आगे कहा है—

जदपि दोष बिन गुण सहित, सक्षन परमनूप।
तदपि न भूषण बिनु लसे, बनिता कविता रूप।

साथ ही इन्होन रस की महत्ता को भी स्थान दिया है। इनका स्थाई भावो और व्यभिचारी भावो का विवेचन भरत के नाट्य के अनुकूल है। ये कहते हैं—

जो रस को उपजाय के भावित कर विशेष।
तासो कहै विभाव कवि श्रीपति नर मुनिलेष।

आचाय रामचन्द्र शुक्ल ने इसे बहुत ही प्रौढ ग्रन्थ कहा है। इसी भाति रसिक सुमति कृत अलकार चन्द्रोदय भी संस्कृत काव्य शास्त्र से प्रभावित है।

रसिक सुमति—

इन्होने कुवलयानन्द के आधार पर कहा है—

तिनि मथि कुवलयानन्द मत जनो न्यो उद्योग।
अलकार चन्द्रोदय निकारियो सुमति लिलख जोग।

इसमे अलकारो का वर्णन है जो संस्कृत काव्यशास्त्र का स्मरण दिलाता है। ये कहते हैं—कि अलकारो का वर्णन कुवलयानन्द के आधार पर किया गया है। इस युग म सोमनाथ का रस पियूष निधि एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है।

सोमनाथ—

सोमनाथ न रस पियूष निधि म मम्मट के आधार पर काव्य की परिभाषा देते हुए कहा है—

सगुन पदारथ दोष बिनु, पिंगल मत अविरुद्ध।
भूषण जुत कवि कर्म जो सो कवि कवित्व कहि बुद्ध।

तदनन्तर काव्य प्रयोजन यश धन, आनन्द और मगल बताये गये हैं। जो काव्य प्रकाश कृत पर आधारित है। ये संस्कृत के ध्वन्यालोक और काव्यप्रकाश के अनुकूल व्यग की महत्ता देते हुए कहते हैं— अर्थ और वाच्यार्थ व्यग के नायक

है जहाँ सो विवक्षित काव्य ध्वनि । ताके ध्वय भेद । एक असलक्ष्य-क्रम व्यंगि-ध्वनि और दूजो सलक्ष्य-क्रम-व्यंगि-ध्वनि ।" ग्रंथ में भी इन्होंने कहा है—

व्यंग्य प्राण अरु अंग सब, शब्द अरथ पहचानि ।
दोष और गुण अलंकृत दूषणादि उरानि ।

इनका ध्वनि का विवेचन काव्य प्रकाश पर आधारित है । व भरत और अभिनव गुप्त का मत देने का प्रयत्न करत हैं । "जहाँ विभाव अनुभाव सहित सचारी, व्यंग कियो थिर भाव । इहि सौ रस रूप बताव । भरत मत का लक्षण कह्यो ।[1]

इन्होंने अलकार विवेचन म अन्य आचार्यों के मत उद्दृत किये हैं । उदाहरणार्थ काव्यलिंग अलकार म इन्होंने लक्षण दोहों में और उदाहरण छन्दों म दिये हैं । इनकी आलोचकों ने बहुत प्रशंसा की है-वे इनके उदाहरणों को बहुत ही सुन्दर मानत हैं ।[2]

इनके समान करण कवि ने रस कल्लोल में भरत का आधार लेते हुए कहा है—

रस अनुकूल विकार को, भाव कहत कवि गोत ।
इक मानस सारीर इक, द्वै विधि कहत उदोत ।

इनके समान गोविन्द का कर्णाभरण भी चन्द्रालोक की शलि पर आधारित है । इनके उदाहरण कई स्थानों पर स्वतन्त्र और मौलिक हैं यथा—

सुव कृपानि पानीयमय जदपि नरेश दिखाति ।
तौं प्यास पर प्राण की, या नाह ही बुझात ।[3]

रसलीन ने अंग दर्पण और रस प्रबोध प्रदान किय । अंग दर्पण म ही प्राप्त होता है—

'अमी हलाहल मद भरे' इत्यादि—

१—डॉ० भागीरथ मिश्र-हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ १२४

२—डॉ० भागीरथ मिश्र-हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ १२०।१२५

३—डा० ओमप्रकाश-हिन्दी अलंकार साहित्य पृष्ठ १४६,१५५

रस प्रमोद मे नायिका भेद का मौलिक प्रयास किया गया है। इन्होंने शैशव यौवना, उन्मत्त यौवना लघुसंज्ञा मूढ पति दुखिता जसे भेद किये हैं। दुलह कवि ने कविकुल कण्ठाभरण दें चन्द्रालोक और कुवलयानन्द का सहारा लिया है। इन्होने केशव के ममान यह कहा कि—

वरण वरण लच्छन ललित रीति जि करतार।
बिन भूषण नहि मूर्ष कविता वनिता चार।[1]

कुवलियानन्द के समान इन्होंने स्तुति की और उसके समान अलकारो का विवेचन भी। शब्दालकार और अन्य विषयो को छोड दिया गया है। इन्होने एक साथ लक्षण देकर और फिर एक साथ उदाहरण दे दिये हैं। इससे इनकी कुछ नवीनता दिखाई देती है। नाम लेने म ये कुवलियानन्द और चन्द्रालोक दोना के ही लेते हैं परन्तु आधार कुवलियानन्द का ही है चन्द्रालोक का नहीं। इनके इस कथन पर—

ताही कटि-खीनता को नातो मानि सिह हने
तो गति गहैया गज अजब अजूबै को।१६

आचार्य भिखारीदास—

जसा कि पहले कहा जा चुका है— काव्यकला कल्पना सौष्ठव और चमत्कारिक रमणीयता की है जैसे रीतिकालीन काव्य वास्तव मे सुन्दर है। उस समय के कविया ने आचाय कम और कवि कम, दोनों स्थानाथ किये हैं।[2] फलत काव्यशास्त्रीय ग्रथो का सरस रूप से वणन किया गया, जिनका आधार सस्कृत का यशास रहा है।[3] आचाय भिखारीदास के काव्य म आचायत्व के साथ सरस कवि क दशन होते हैं। ये सस्कृत के इनके काव्यनिणय शृगार निणय छदोणव पिगल रस साराश विष्णु पुराण नाम प्रकाश अमरकोश अमरतिलक तेरिज रस

१—आचाय रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ २५८ एव कविकुल कण्ठा भूषण २
२—डा० रामशकर शुक्ल रसाल–हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ ४०३
३—डा० दीनदयाल गुप्त–डा० नारायणदास खन्ना विरचित–आचाय भिखारिदास का उपोदघात

सारांश और तेरिज काव्य निर्णय प्रभृति ग्रंथ माना जाता है।[1] इनके छन्दप्रकाश को आलोचकों ने अप्रमाणिक ग्रंथ कहा है।[2]

इन्होंने काव्यशास्त्र के विभिन्न अंगों काव्य प्रयोजन गुण, प्रदाय, तुक काव्यदोष छंदानरूपण रस और अलंकारों पर विचार किया है। नायिका भेद पर इन्होंने रसिकता प्रवक दृष्टिपात किया है।

दासजी ने संस्कृत के विभिन्न काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का अध्ययन कर अपने ग्रंथों का निर्माण किया। यथा–वे कहते हैं—

बुझि सुचन्तालोक अरु काव्य प्रकाश हु ग्रंथ।
समुझि सरुचि भाषा कियो है औरौ कवि पंथ।[3]

एवं–

प्रकृत भाषा संस्कृत लाख बहु छंदों ग्रंथ।
दास कियो छंदोरण व भाषा रचि शुभ पंथ।[4]

अतएव इन पर संस्कृत काव्यशास्त्र का प्रभाव आवश्यक है।

संस्कृत शास्त्रकारों के समान इन्होंने सहृदय सामाजिकों के लिये ही, इनमें भी जो थोड़े से रस को समझना चाहते हैं, इनके लिये, रस सारांश की रचना की।

चाहत जानिय थोरे ही रस कवित कों बंश।
तिन रासिकन के हेत यह मो हो रस सारांश।[5]

इस प्रकार इन पर संस्कृत काव्यशास्त्र का प्रभाव परिलक्षित होता है। निम्नांकित विवेचन इसे स्पष्ट कर देता है—इनके काव्य निर्णय और संस्कृत के काव्य प्रकाश में आपस में निकट साम्य प्राप्त होता है—

१—डा० नारायणदास खन्ना विरचित–आचार्य भिखारीदास–प्राक्कथन
२—वही पृष्ठ १००
३—काव्य निर्णय पृष्ठ २
४—छंदोर्णव पिंगल पृष्ठ ४
५—रस सारांश पृष्ठ ३

काव्यप्रकाश—

औनिद्र्यम दौर्बल्य चिंताल सत्व सननि स्वसितम ।
मम मंद भागिन्या कृते सखित्वापी अहह परि भवति ।[1]

काव्यनिर्णय—

चिंता जम्भा नींद अरु व्याकुलता अवसानि ।
लसयो अभागिनी हां अली ते हूँ गहो सुवानि ।[2]

इसी प्रकार इनके काव्य में स्थान-स्थान पर छायानुवाद या शब्दानुवाद प्राप्त होते हैं ।[3] चन्द्रलोक से भी इन्होंने अनुवाद किये हैं । निम्नांकित उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाता है—

चन्द्रलोक—

मातगृ होय करणमय खलु नास्तो तिसाधितम त्वया ।
तदमण किं करणीय मेव मेव न वासर स्थायी ।[4]

काव्यनिर्णय—

अ वे फिर मोहिं कहेगो कियो न तू गृह काज ।
कहै सुकरि आऊँ अबै मु वो जात दिनराज ।[5]

श्री पद्मसिंह शर्मा ने काव्यनिर्णय और संस्कृत के आचार्यों के काव्या में समता प्रदर्शित की है ।[6] इनमें उद्भट, भर्तृहरि मम्मट आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं इन्होंने काव्य में अलंकारों और गुणों का विवेचन मम्मट के आधार पर किया है—

१—पृष्ठ ८२
२—पृष्ठ १८
३—डॉ० नारायणदास खन्ना विरचित आचार्य भिखारीदास पृष्ठ २६ ३२ ४० ४२
४—वही पृष्ठ २६
५—वही
६—सरस्वती नवम्बर १ १९१२

माधुर्योज प्रसाद के सब गुण है आधीन।
ताते ही को गया मम्मट सुकवि प्रवीन।[१,२]

इन्होंने श्लष की गुरु, लघु और मध्यम की कल्पना की है जिस आलोचकों ने इनकी मौलिकता माना है।[३] दास जी ने शब्द शक्तियों का सागोपाग वर्णन किया है जो शास्त्र के अनुकूल है। यत्र-तत्र इन्होंने परिवर्तन भी किये हैं यथा लक्षणा के भेदों में इन्होंने अपने भेद दिये हैं—यथा लक्षणा के भेदों में लक्षणा के स्थान पर लक्षित लक्षणा नाम दिया है। फिर भी ये अधिकांशतः मम्मट आदि संस्कृत आचार्यों के अनुकूल रहे हैं। अवर काव्य की परिभाषा हमारे मत की पुष्टि करती है। नायिका भेद में धीरा, अधीरा और धीरा धीरा भेद इन पर भानुदत्त की काव्य मंजरी का प्रभाव प्रकट करता है।[४] संस्कृत आचार्यों और केशव के समान इन्होंने चित्र काव्य को भी स्थान दिया है।[५] काव्य निर्णय में पूर्व ग्रंथों—(हिन्दी के ग्रन्थो) से भी सामग्री ग्रहीत की गई है। काव्यप्रकाश और चन्द्रालोक का प्रभाव तो स्वयं कवि ने स्वीकार किया हैं। साथ ही इन्होंने भाषा की रुचि के अनुकूल अपना मत भी प्रतिपादित करने का प्रयास किया है।[६] काव्य निर्णय के उल्लासों में काव्यांग का विवेचन करते हुए वे ध्वनि की महत्ता की प्रतिपादित करते हैं। काव्य प्रयोजन में इन्होंने साधना सम्पत्ति, यश और सुख को स्थान दिया है जिससे मम्मट और हिन्दी कवियों के काव्य प्रयत्न का समन्वय हो गया है। सूर और तुलसी के काव्य को इन्होंने तपयुक्त कहा है।

इन्होंने अलंकारों का आधार ढूँढ कर उन्हें वर्गों मे बाँधने का मौलिक प्रयास किया है। ये वक्रोक्ति को काकु और श्लेष भेदों में बाँटते हैं जिससे इन पर रुद्रट का प्रभाव दिखाई देता है—

१—काव्यनिर्णय पृष्ठ १६६

२—आचार्य भिखारीदास पृष्ठ १७३

३—आचार्य भिखारीदास पृष्ठ १७४

४—आचार्य भिखारीदास पृष्ठ २५०

५—वही पृष्ठ ३२५

६—डॉ० ओमप्रकाश हिन्दी अलंकार साहित्य पृष्ठ १५६ पाद टिप्पणियाँ २,३

काकु वचन अरु श्लेष करि और अर्थ ल जायो ।
सो वक्रोक्ति सुवरनिय उत्तम काव्य सुवायो ।[१]

इन्होंने गुणो को रस मे अवश्य ही उपस्थित रखने को कहा है[२] पर तुक का निरुपण इनका अपना है । ये मम्मट द्वारा प्रतिपादित ध्वनि सिद्धान्त के अनुयायी है । साथ ही इनके निम्नांकित कथन–विरह वरी को मैं नही कहतो लाल सन्देश पर कुवलियानन्द के निम्नांकित कथन का प्रभाव दिखाई देता है । "ना हम तुझो तनोत्स्या पत्तरया वाला न लापना की छाया दिखाई देती है । समस्त अलंकारो का वर्णन करते हुए इन्होंने अप्पय दीक्षित के समान कहा है । इन पर विश्वनाथ का प्रभाव भी दिखाई देता है ।[३] इनका नाय वर्णन संस्कृत के काव्य प्रकाश के आधार पर है । इसी भाँति इन्होंने जो प्रीति नामक भाव माना है वह रुद्रट का प्रमाण ही है ।[४]

इन्होंने शृंगार निर्णय मे नायक नायिका के भेदो का वर्णन किया है । नायक भेद मे पति और उपपति भेद किये गये हैं । नखशिख वर्णन मे सौन्दर्य वर्णन भी है । परकीया नायिका के भेदो मे इन्होंने अपनी रुचि का परिचय दिया है ।[५] इन्होंने अलंकारो को वर्गों मे विभाजित किया और नायिका भेद भी समयानुकूल किया ।[६] रस सारांश मे रसों का विवेचन है । इसमे इन्होंने नटिन, धोबिन, कुम्हारिन और बरहन को दूतियो के रूप मे ग्रहण किया है ।[७] दास के निम्नांकित कथन पर रसवादी शास्त्रकारो–विश्वनाथ का विशेष प्रभाव परिलक्षित होता है । यथा—

१—भाव विलास पृष्ठ १४८

२—काव्य निर्णय १६ वा उल्लास–६३,६४

३—डा० ओमप्रकाश–हिन्दी अलंकार साहित्य पृष्ठ १६२

४—डा० नगेन्द्र–रीतिकाव्य की भूमिका पृष्ठ १४६

५—डा० ओमप्रकाश–हिन्दी अलंकारसाहित्य एवम् डॉ० भागीरथ मिश्र हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ १४३

६—डा० नगेन्द्र–रीति काव्य को भूमिका पृष्ठ १५३

७—रामचन्द्र शुक्ल–इतिहास पृष्ठ २४८

रस कविता को अ ग, भूषण है भूषण शवल ।
गुण रूप और अ ग, दूषण कर कुरूपता ।[1]

य उनके ही समान सहृदय समाजिक की आवश्यकता पर वल देते हैं[2] और उनके आगामी कथन—

भिन्न भिन्न यद्यपि शवल रस भावादिक दास ।
रस व्यग्य सबको भयो ध्वनि को जहा प्रकाश ।[3]

पर रस ध्वनि प्रतिपादन सिद्धान्त का प्रभाव है । इनका अथ पति को उदाहरण साहित्य दपण से प्रभावित है—उदाहरणाथ—

हारोयं हरिणाक्षीणा लुठति स्तनमण्डले ।
मुक्तानामप्यवेस्थेवा के वयं स्मरकिंकरा ॥ (साहित्य दप ण)
पदुमनि-उरजनि पर लसत मुकुतमाल की जोति ।
समुभावत यों सुथल गति, मुक्त नरन की होति ।(का यनिणय

इन्होने रस और अलकारा के सम वय का सु दर प्रयास किया है । यथा—

अनुप्रास उपमादि जे, शब्दार्थालकार ।
ऊपर त भूवित कर, जैसे तन को हार ॥
अलकार बिनु रसहु है रसौं अल कृत छडि ।
सुकवि-वचन-रचमान सौं, देत दुहुँन को मडि ॥

इन्होने का य के हेतु वताते हुए शक्ति निगुणता और अभ्यास को मिला दिया है और रथ के रूपक द्वारा अपने मतव्य का स्पष्ट किया है दास ने तुनरक्ति प्रकाश नामक एक नये गुण की कल्पना की है और सौकुमारी गुण को छोड दिया है ।[4] इनक का यागो का विवचन का भी प्रकाश पर आधारित है । कई स्थानो

१—काव्य निर्णय
२—वही
३—डा० ओमप्रकाश हिन्दी अलकार साहित्य पृष्ठ १६६
४—डा० नगेन्द्र-काव्यालकार सूत्र पृष्ठ १६७

पर तो उसका अनुवाद ही है। गुणीभूत व्यंग्य तो ठीक काव्यप्रकाश के ही हैं। ध्वनि कार के विवेचन को भी महत्ता दी गई है।[१,२]

चन्द्रालोक के समान नामों से ही लक्षणों का प्रकट होना भी कहा गया है—

सुमिरन, भ्रम, सदेह को, लक्षण प्रगटे नाम।?

इसी भाँति इनका निम्नांकित कथन कुवलियानन्द की छाया में लिखा गया है—

बधन-डर नप सा करे, सागर कहा विचारि।
इनको पार न शत्रु है अरु हरि गई न नारि॥
सवय्या गते किमति बेपत एव सिंधु—
स्त्व काव्य सेतुम यङ्दत किमसी विमोति।

इनके काव्य में शृंगारिता और रूप सौन्दर्य के सुन्दर उदाहरण प्राप्त होते हैं। यथा एक नायिका मेघाच्छन्न भादों की रात्रि में प्रिय मिलन हेतु अपने शरीर को ढक कर जाती है क्योंकि उसकी तन द्युति से प्रकाश न हो जाय। पवन के झकझोरों से उसकी ओढनी कभी-कभी उडती है और लोग उस समय बिजली चमकती हैं ऐसा अनुमान करते हैं। दासजी कहते हैं—

जलधर ढार जल धारन की अधियारी
निपट अधारी मारी भादव की यामनी।
तामें श्याम बसन विभूषण पहरि,
स्यामा स्याम प सिधारी प्यारी मत्त गज गामिनी।
दास पौन लागे उपरैनी उडी उडि जात,
तापर कयों न हूँ भाति जानी आलि भामिनी।
चारु चटकोली छबी चमकि चमकि उठ,
लोग कहे दमकि दमकि उठ दामिनी।[३]
इनका यह वर्णन यहा तक बढा कि,
उसमें अश्लीलता भी दिखाई देन लगी।[४]

१—डा० भगवत स्वरूप-हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास पृष्ठ २०३
२—वही
३—शृंगार निर्णय पृष्ठ ५६,५७
४—उदाहरणों के लिये देखिये काव्य निर्णय पृष्ठ १४७ १६१ आदि

एक तथ्य और उल्लेखनीय है कि हिन्दी म इनके तुक वणन का अनोखा माना जाता है।[1] सस्कृत म वण वृत्ता और भिन्न तुकान्त छदो क कारण सम्भत इसकी आवश्यकता ही नहीं समझी गई थी। हिन्दी की प्रवति क अनुकून इनका तुक विवेचन वास्तव में सराहनीय है। इनके छदा का विवेचन भी मौलिकता स परिपूण है।[2] मिश्र बन्धुआ न दासजी क श्रीपति क काव्य स अपहरण कर लेने का चर्चा की। डा० नारायण दास खन्ना न सोदाहरण इस मद का खण्डन किया और बताया कि कई उक्तियाँ तो दोनो न ही सस्कृत से चन्द्रालाक और काव्य प्रकाश स ग्रहण की हैं।[3]

निष्कर्ष—

अतएव निष्कष निकाला जा सकता है कि आचाय दास सस्कृत क ग्रथा का अनुवाद करते, छाया अनुवाद करत और कभी-कभी अपना मत भी उधरित कर देते। इन्होने लक्षण ग्रथ सस्कृत शली म लिखने का प्रयत्न किया जिसम तत्कालीन प्रवृति के अनुसार शृगार को अत्यधिक महत्ता दी जिससे उनके वणन बडे सुन्दर बन पडे हैं किन्तु कई स्थाना पर उनम अश्लीलता भी दिखाई देती है। इन्होने आचायत्व और कवित्व का एक कर देन का प्रयत्न किया था। हिन्दी म तुक वणन करने वाला म ये अग्रगण्य माने जात हैं। इनकी एक विशेषता यह भी रही है कि इन्होन भाषा की रुचि के अनुकूल अपने मत का प्रतिपादित किया है दास ने स्वगुण, उत्तरोत्तर, रत्नावली, रसनोपमा तथा देहली दीपक एस नाम दिय हैं जो पहले इसी नाम स नही मिलत हैं। सिहावलोकन भी एक एसा ही उदाहरण है। इनक अपने उदाहरण सरस और सुदर हैं। यथा—

वहै अपन्हुति अधरछत करत न प्रिय, हिम-वाय। (काव्य निर्णय)

एवम् कज क सपुट है ये, खरे हिय में गडि जात ज्यों कुन्त की कोर है।
मेरु हैं पै हरि हाथ में आवत चक्रवर्ती पै बडेई कठोर हैं।
भावती तेरे उरोजनि में गुन दास लख्यो सब औरहु और हैं।
सभु हैं पै उपजावै मनोज, सुवृत्त है पै परचित्त के चोर हैं।

१—डा० भागीरथ मिश्र हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ १४४,१४५
२—डा० पुत्तूलाल शुक्ल—आधुनिक हिन्दी काव्य में छन्द योजना अध्याय ४
३—डा० नारायणदास खन्ना—आचार्य भिखारीदास पृष्ठ ३३६

शिवनाथ कृत रसवृष्टि एक नायक नायिका भेद सम्बन्धी ग्रंथ है जो केशव की परिपाटी पर आधारित है। इसमें इन्होने सामान्या के प्रसग मे नवीन भेद किये हैं। इसी प्रकार रमन कवि और ऋषिनाथ भी युग प्रभाव से अछूते नही रह सके। जनराज कृत कविता रस विनाद मम्मट के काव्य प्रकाश पर आधारित है। ये कहते हैं—

गुन गन भूषण उचित दूषन प्रगठन होय।
बिग सु शब्दार्थ सहित कवित कहाव सोय।

इन्होने लिखा है अन्य अधम काव्य वर्णनातासौं अलकार कहते हैं। जिससे इस पर कुवलियानन्द का प्रभाव भी दिखाई देता है। उजियारे कवि ने रस चन्द्रिका म भरत के आधार पर रस वर्णन किया है। ये कहते हैं—

'याके अनुभाव भरत सूत्र " आदि

यशवतसिंह का शृगार शिरोमणि रस विभाव उद्दीपन और अन्य वर्णन प्रधान पद्धति पर आधारित है। इन्होंने नायक का वर्णन करते हुए उसके सहायक नम, सचिव व्याकरणी नैय्यायिक पूर्व मीमासक उत्तर मीमासक, वेदान्ती, योगशास्त्री और ज्योतिषि आदि का वर्णन किया है। ऐसभेद का वर्णन भरत कृत नाट्य शास्त्र मे पाया जा सकता हैं। जगतसिंह ने साहित्य सुधानिधि का आधार चन्द्रालोक नाट्यशास्त्र और काव्य प्रकाश को बनाया है। थानकवि ने दलेलप्रकाश म गन गुण, रस और अलकारों का स्वेच्छा पूर्वक बिना किसी क्रम के वर्णन किया है।[1] ज्ञात ऐसा होता है कि इन्होंने भाषा रीति ग्रंथ में बिन बिन विषयों को चाहा चुना और पाण्डित्य पूर्ण रीति स उनका विवेचन किया। गुरुदीन पाण्डे ने बाग मनोहर नामक रीति ग्रंथ का प्रणयन किया जिसम छन्द पर भी प्रकाश डाला है। इन्होंने रस गुण शब्द शक्ति और छन्द का अध्ययन प्रस्तुत किया है।

महाराजा मानसिंह ने रसशिरोमणि म रसमजरी का आधार बनाया। इन्होंने रसनिरूपण म मायाजन्य का वर्णन भी किया है जिसका स्थायी भाव मिथ्या ज्ञान माना है। इन्होंने भानुदत्त की रसमजरी का आधार लिया है। अलकार दर्पण म व अलकार दर्शी हैं है। इनकी उपमा सम्भवत मम्मट पर आधारित है।

1—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २५६

सेवादास ने भक्ति को ही अपना उद्देश्य माना था। फिर भी ये रघुनाथ अलकार म चन्द्रालोक और कुवलियानन्द के प्रभाव से अछूते नहीं रह सके हैं। इस पुस्तक म किया गया अलकारो का वणन इसका साक्षी है—इन्होंने कहा है—

> कुवलियानन्द व चन्द्रालोक में अलकार के नाम।
> तिन को गति अवलोकि के अलकार कहो राम। (१६४)

रस दपरा भी एक नायिका भेद सम्बन्धी ग्रन्थ है जिसम राधा और गोपी का वरान किया गया है। इसकी पद्धति रसमजरी से मिलती जुलती है। गोकुलदास न चेतचन्द्रिका म अलकारो का स्थान दिया है। रीतिकाल के कवियो म पद्माकर का भी महत्वपूरा स्थान है। ये चन्द्रालोक को कहीं-कहीं ज्यो का त्यो आधार बना लेते हैं। जैसे—

> नाय सुधाशु, कि तर्हि? व्योमगगा सरोरुह।—चन्द्रालोक
> यह म सखी तो है कहा? नभगगा जलजात॥—पद्माभरण

पद्माकर—

पद्माकर म पद्माभरण को दो प्रकरणो म विभाजित किया है। प्रथम प्रकरण के सौ अलकार कुवलियानन्द के अलकार ही हैं। इस प्रकार अलग प्रकरण बनाना कवि की अपनी सूझ है। सभवत इसे बोध गम्य बनाने के लिये ही ऐसा किया गया है।[1]

इनके कुछ उदाहरण साहित्यदपरा से भी प्रभावित है। उदाहरण के लिये दो लक्षण नीचे दिये जाते है—

> जु कहूँ पावतो आप में, द्वै अरविन्द अमद।
> तो तेरे मुखचन्द की, उपमा लहतो चन्द। २१४
> यदि स्यानमण्डले सवतमिन्दीवरिन्दो वर द्वयम।
> तदोपमीयते तस्या वदन चारुलोचनम।

इनके लक्षण कुवलियानन्द काव्यप्रकाश तथा साहित्यदपरा से प्रभावित है।[2] साथ ही यत्र-तत्र कवि न मौलिकता का भी प्रयास किया है। किन्तु उसम

१—डॉ० ओमप्रकाश-हिन्दी अलकार साहित्य पृष्ठ १८२
२—वही १८६

एकाधिक ग्रंथों का अनुकरण और कतिपय लक्षणों को ग्रहण करना ही प्राप्त हो सके हैं। यथा कुवलियानन्द के रूपक में दो भेदों के अतिरिक्त साध्यव भेद भी माना गया है। जो साहित्य दर्पण के अनुकूल है किन्तु साहित्य दर्पण के नियम को छोड़ दिया गया है।

रणधीरसिंह ने काव्य रत्नाकर में चन्द्रालोक और काव्यप्रकाश तथा भाषा ग्रंथों का आधार लिया है। ये स्वयं कहते हैं—

> लखि गति चंद्रालोक अरु काव्य प्रकाश सुदीप्त।
> औरो भाषा ग्रंथ बहु ताको सगत गीत।
> काव्य रीति जितनी प्रकट आनि करीं इकठोर।
> इतनोई पढ़ो बुझि है सकल काव्य को तौर।

इन्होंने काव्य का प्रयोजन धन धर्म यश और मोक्ष बताये हैं। नारायण कृत नाट्यदीपिका में भरत और नारायण को उदाहरण के लिये उपयोग में लिया गया है। इसके उदाहरण पद्य में है और लक्षण गद्य में है। भरत के नाट्यशास्त्र अभिनव गुप्त मम्मट आदि ने इन्हें प्रभावित किया है। ध्वन्यालोक तथा विश्वनाथ के साहित्यदर्पण आदि का विवेचन कर ग्रन्थकर्ता को मत प्रतिपादित किया गया है। इनके रस कथन में भरत की ओर संकेत किया गया है। साहित्यदर्पण के सत्वाद्रेकात की छाया भी दिखाई देती है। इसी भाँति साहित्यदर्पण के मुग्धा के उदाहरण की प्रशंसा की जाती हैं।[१] प्रतापसाही ने शब्द शक्ति विवेचन में मम्मट का अनुवाद कर दिया है। व्यङ्ग्यार्थ कौमुदी में काव्य की आत्मा ध्वनि को बताया गया है। इन्होंने मम्मट का सैद्धांतिक आधार ग्रहण किया है।

काव्य विलास में अधिकांशतः काव्यप्रकाश का आधार लिया गया है। काव्यप्रदीप साहित्यदर्पण रसगंगाधर चन्द्रालोक कुवलियानन्द रसतरंगिणी और रसमञ्जरी आदि ने भी इन्हें प्रभावित किया है। इन्होंने नवरसों की जो व्याख्या की है उस पर ध्वनिकार और भरत का प्रभाव है। उत्तमचन्द भण्डारी भी अलंकारवादी थे और केशव के समान अलंकार को मुख्य मानते थे।

इस युग में टीकायें भी लिखी गई जिनसे आलच्यकाल की आलोचना पर संस्कृत का प्रभाव दिखाई देता है। सरदार कविकृत मानस रहस्य मानस की टीका

१— आचार्य रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २६५

है। इसम ग्रथ के लेखक ने काव्यविलास रस रहस्य और समा प्रकाश का सहारा लिया है। इस आलाचना का आधार शास्त्रीय पक्ष रहा है।

रस रूप के तुलसी भूपण म कुवलियानन्द और चन्द्रालोक का प्रभाव दिखाई देता है। ब्रह्मदत्त के दीप प्रकाश के लक्षणो पर भी चन्द्रालोक का प्रभाव है। यथा—

उपमा यत्र सादश्य लक्ष्मीरुल्लसति द्वं । चन्द्रालोक

शोभा सरिस दुहुन में सो उपमालकार। दीपप्रकाश

काशीराज की चेतचन्द्रिका पर सरस्वती कण्ठाभरण और काव्यप्रकाश की छाया है। गिरधरदास ने भारती भूपण मे कुवलियानन्द का आधार लेकर अलकारो और नायिका भेद का वणन किया है। जसे दण्डी ने काव्यादश म उपमावाचक शब्द दिये हैं वैसे ही इन्हान भी हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुकूल और प्रकृति के अनुसार शब्दो की सूची बनाई है। कवीन्द्र ने रस चन्द्रोदय की रचना म शास्त्रीयाधार लिया है। वीर ने कृष्ण चन्द्रिका नामक रस और नायिका भेद सम्बन्धी ग्रथ का प्रणयन किया है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है यह युग टीका पद्धति भी प्रदान कर रहा था। अतएव रघुनाथ ने बिहारी की टीका लिखकर इसम सहयोग लिया। कृष्ण कवि ने भी बिहारी की टीका लिखी। इसम वार्तिका म काव्याशो को स्पष्ट किया गया है। दलपतिराम और वसीधर ने अलकार रत्नाकर नामक ग्रथ लिखा। सोमनाथ ने पियुप निधि म पिगल काव्य लक्षण प्रयोजन, भेद, शब्दशक्ति, ध्वनि भाव, रस और गुन एव दाप का विवेचन किया।

इस काल म निर्णयात्मक एव इच्छापूवक युक्तियाँ भी प्रकट की गई। इन पर सस्कृत शली का प्रभाव दिखाई देता है।

उक्तियाँ और निणय—

रीति काल म टीकाओ और तिलक के अतिरिक्त कवियो के सम्बन्ध म उक्तिया भी प्राप्त होती हैं। ये उक्तियाँ कई बार तो किसी प्रसिद्ध ग्रथ म से लेली जाती हैं और कई बार इनके निर्माता अज्ञात स हो रहते हैं। जिस प्रकार सस्कृत साहित्य मे अनुभूति एव निणय प्रधान उक्तियाँ मिलती हैं वसे ही इन उक्तियो म भी अनुभूति और निणय पाये जाते हैं। यथा सस्कृत म कहा जाता है—

'पुरेषु चंपा नगरेषु लंका,
स्त्रीषु रंभा, पुरुषेषु विष्णु ।"

और कवियों के सम्बन्ध में कहा जाता है कि,

'उपमा कालिदासस्य भारवी अर्थ गौरवम् ।' इत्यादि । ऐसे ही प्रयोग हिंदी में भी किये जाने लगे यथा—काव्य निर्णय में कहा गया है—

'तुलसी गंग दुओ भये, सुकविन के सरदार ।
इनको काव्यन में मिलि भाषा विविध प्रकार ॥"

× × × ×

सूर केसौ मंडन बिहारी कालिदास ब्रह्म,
चिंतामणि मतिराम भूषण से जानिये ।

इसी प्रकार के अन्य प्रयोगों की दृष्टि से निम्नांकित पद्यांश पठनीय हैं—

सूर सूर तुलसी शशी उडगन केशवदास
सतसइया के दोहरा, ज्यों नावक के तीर ।
तुलसी गंग दुओ भये सुकविन के सरदार
उत्तम पद कवि गंग के कविता को बलवीर,
केशव अर्थ गम्भीर सूर तीन गुण धार ।
किधौं सूर को सर लग्यो, किधौं सूर को पीर

इस प्रकार उपयुक्त कथन निर्णयात्मक शैली और अपने अनुभव के प्रकाशन की दृष्टि से संस्कृत की ऐसी ही उक्तियों से तुलनीय हैं—इन पर संस्कृत का प्रभाव भी कहा जा सकता है ।

रीति कालीन काव्य और अन्य कवि—

इस युग के कवियों में [illegible] का प्राधान्य रहा है । बिहारी इस प्रभाव से नहीं रह सके हैं । उ[illegible] दोहा हमारे कथन की पुष्टि करता है ।

लिखन बैठी [illegible] [illegible]कर ।
[illegible] [illegible]ते

इसी भाति इनका—

> ललन चलन सुनि कलन में असुवा झरके आई।
> भई न लखा यतु सखिन हीं भू ठे हो जमुहात॥

यह वर्णन नायिका की प्रिय कमन से उत्पन्न खिन्नता को स्पष्ट रूपेण प्रकट करता है। इन्होंने अपना मत यों व्यक्त किया है—

> मानहु विधि तन अच्छ छवि एवच्छ राखी बेकाज।
> दग पग पोंछन को कियो भूषण पायदाज॥

इससे प्रतीत होता है कि चमत्कारा को इतनी महत्ता देने वाले कवि बिहारी भी नायिका के सौंदय को महत्ता देते हैं—भूषण को तो वे पायदाज मानते हैं। उनका निम्नाकित दोहा भी जीवन की सादगी, प्रिय के साथ रहने की लालसा और जीवन म सुख की आकाक्षा की व्यग्रता को प्रकट करता है।

> पटु पाखै भखे काकरो सदा परे ही सग।
> सुखी परेवा जगत में एको तुहीं विय ग॥

बिहारी के समान सेनापति के काव्य म भी शास्त्रीय तत्व खोजे जा सकते हैं[1]

सेनापति के काव्य म श्लेस का चमत्कार देखने योग्य है। सभँग और अभग दोना ही रुप प्राप्त होते हैं। कवित्त रत्नाकर की दूसरी तरग म शृगार वर्णन नख शिख, उद्दिपन, भाव और रय सधि आदि को स्थान दिया गया है।

सेनापति का कथन है कि—

> सूधन को आगम सुगम एकता को
> जाको सीखन विमल विधि
> बुद्धि है अयाह को। कवित्त रत्नाकर।

इस कथन पर— विमल प्रतिमान शालि हृदय' के लक्षण का प्रकटीकरण उल्लखनीय है। इनकी रीति सम्बन्धी धारणाये आलोचकों ने खोज निकाली है।[2] निम्नाकित उद्धरण हमारे कथन की सच्चाई प्रगट करते हैं—

१—डॉ० नगेन्द्र-हिन्दी काव्यालकार सूत्र पृष्ठ १४७
२— वही पृष्ठ १४६, १४७

क-दोष सो मलिन गुण हीन कविताई है तो,
कीने अरबीन परबीन कोई सुनि है ॥

एव—

रा-मकरंद है विशद करत है रो आपना में ।
जाते जगतो को जड़ताउ विनसित है ॥

यहाँ एक तथ्य का उद्घाटन सामयिक ही होगा कि रीति कालीन कवियों की धारणाओं और अंग्रेजी के शास्त्रीय युग की अभिव्यक्तियों में समानता खोजी जा सकती है। इसका उल्लेख यथा स्थान किया जा चुका है, फिर भी यह तो कहना ही होगा कि केशव के काव्य तक में प्राप्य कई उक्तियाँ शेक्सपीयर के नाटकों की सुनाई देती है। उदाहरण के लिये केशव कहते हैं—

केशव चूक सबै सहियो मुख,
चूमि चले यह प न सहोंगी।
क मुख चुमन दे फिर मोहि के,
आपनी धाई सा जाइ कहोगी ॥[२]

और शेक्सपीयर कहते हैं—

'दि सिन आफ माई लिप्स
रिटन इट टू मी'[३]

घनानन्द—

रीति काल के घनानन्द ने सुजान सागर म सवया पद्धति स शृगार, नायक नायिका और उद्दीपन आदि का सुन्दर चित्र प्रस्तुत किया है। उन्होंने अपनी कविता में छन्दों से सुन्दर चित्र प्रस्तुत किये हैं। उदाहरण के लिये निम्नांकित सौन्दर्य के दर्शन कीजिये—

लाजति लपेटी चितवन भद भाय भरि
लसति ललित लोल चख तिरछानि में।

१—कवि प्रिया—नायिका वर्णन।
२—रोमियो जूलियट—रोमियो का कथन।

छवि को सदन गोरो बदन रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानि में ।
दसन दमक फैली हिये मोती माल होत
पिय सौं लडकि प्रेम पगि बतरानि में ।
आनन्द की निधि जगमगति छबीली बाल
अगनि अनग रग दूरि मुरझनि में ॥"

इन्होंने भाव–अनुभाव सचारि और वियोग आदि के चित्रण भी सजीव रूप में प्रस्तुत किये हैं । इनका हृदय तो सुजान प्रेम पीडा से मीहर रहा था । अतएव अभिव्यक्ति में भाव सबलता का होना अनिवार्य ही था । फिर भी इनके कला पक्ष को कम नहीं कहा जा सकता ।

विरह की दशा की अत्यत तीव्रानुभूति नीचे के छन्द में प्राप्त होती है ।

'कारी कूर कोकिल कहा को बैर काढति री ।
× × × ×
चातक घातक त्योंही तुहूँ कान फोरि लै
× × × ×
तोलौ रेडरारे वज मारे घन घोरि लै ॥"

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि घनानन्द के काव्य में रीति तत्व विद्यमान अवश्य थे ।[1]

रीतिकाल निष्कर्ष—

इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि रीतिकाल में काव्य–शास्त्रीय ग्रन्थों पर सस्कृत के काव्यशास्त्र का प्रचुर प्रभाव दिखाई देता है । इस युग का काव्य हाल की सतसई खुसरो की मनोरजन प्रधान कविताओं और मन्देश रासक के रचयिता की दृष्य प्रकरण की विशेषताओं से सम्पन्न हैं । इस समय तक रासो ग्रन्थों व विद्यापति के काव्य में प्राप्य शृंगारिक वर्णन बहुत विकसित हो गया जो कभी–कभी तो अश्लीलता की सीमा को छूने लगा । प्रश्रयदाताओं की

[1]—डा० भागीरथ मिश्र–हिन्दी रीति साहित्य पृष्ठ १३३ १३४

प्रशसा म भी ग्रथ लिखे गये। भूषण ने तो सभवत इन्ह रच कर उन्हें रीतिबद्ध कर दिया। लक्षण देने के बाद ऐसे वर्णन किये जो उनके उदाहरण बन गए। विद्यानाथ कृत प्रताप रुद्र यशोभूषण ऐसा ही ग्रथ है। लक्षण लिख कर अपना ही रचनाओ के उदाहरण द देने की शैली पण्डित राज जगन्नाथ के अनुकूल थी। इसे अपनाने से कई कवियो को राजा की प्रशसा करने का और लक्षण लिख देने का—दोनो का ही सौभाग्य प्राप्त हो गया। यही नही अन्य कवियो का लक्षण बता कर मनोनकूल श्रृ गारिक चित्रण दे देने का स्वातन्त्र्य भी प्राप्त हो गया।

रीतिकाल म कतिपय आचार्यों ने अपनी भाषाये स्थापित करने के प्रयास किये। आचार्य कुलपति मिश्र की रचनाएँ उदाहरण स्वरूप देखी जा सकती है। तत्कालीन राज दरबारों म नायिका के लक्षणो पर वाद–विवाद भी हो जाया करते थे। लक्षण ग्रथकार इसम सरुचि भाग लेते थे। वहां कवि–आचार्यों की एक प्रकार से परीक्षा सी हो जाती थी। अतएव इसम भाग लेने वालो का विभिन्न ग्रथा से परिचित होना आवश्यक और स्वाभाविक ही था। इस प्रकार जब ये कवि ग्रथो मे परिचित होते तब अपनी रचनाओ मे भी विभिन्न ग्रथो का सहारा अवश्य ही ल लेते—सस्कृत के और आगे चल कर बाद के हिन्दी के कवि भाषा क ग्रथो का भी समुचित उपयोग करने लगे। वे नाम किसी एक आचार्य या कतिपय थोडे स बहु चर्चित प्रसिद्ध और प्रचलित आचार्यों का दे देते। कई बार तो सहारा किसी अन्य आचार्य के लेते और नाम किसी अपने प्रिय आचार्य का दे देते।

जसा कि पहल कहा जा चुका है राजकाश्रय प्राप्ति हेतु राजा की प्रशसा की जाती थी और नायिकाओ के भेद आदि से कवि परिचित रहते थे। यहा यह ध्यान देने योग्य है कि राज स्वय अधिक पण्डित नही होते थे, एतदर्थ श्रृ गारिक वर्णनों द्वारा उन्ह प्रभावित और आकर्षित किया जाता था। इन नायिकाओ उनकी दूतिया और सखियो के वर्णनों मे तत्कालीन परिस्थितियो ने भी सहयोग दिया।[1]

इसके अतिरिक्त केशव जसे पण्डित भी थे जो कई ग्रन्थो मे राजा की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशसा से भी बच जाते थे और राज दरबार म अपने लक्षण ग्रथो

१—डा० नगेन्द्र रीति काव्य की भूमिका पृष्ठ ११

के द्वारा सम्मान भी प्राप्त कर लेते थे।[1] यह कहें तो भी अत्युक्ति नहीं होगी कि प्रवीणराय जैसी शिष्याए भी समवत आचार्यत्व से प्रभावित हो उनकी बन जाती थी राज दरबार का विलासतापूर्ण जीवन कवियो को प्रेरणा देता और वे लिख देते—

> "गुलगुली गिल में गलीचायें गुनी जब है,
> चादनी है चकें है चिरागन की माला है।[2]

इस प्रकार कवि और आचार्य विलासपूर्ण चित्रण में व्यस्त और मस्त रहे। इसी हेतु वे काव्यशास्त्र से हटकर कामशास्त्र के अनुकूल नायिकादि के विस्तृत विवेचन करने लगे। देव के अष्ट याम ऐसे शृगारिक वर्णनो के उदाहरण है। तत्कालीन काव्य मे रस, ध्वनी और अलकारों पर विस्तृत प्रकाश डाला गया और रीति व वक्रोक्ति पर सैद्धान्तिक दृष्टि से कम ही लिखा गया। रतिवर्णन जगतसिंह ने अवश्य किया है।[3] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि कवियो ने कतिपय काव्य सिद्धातो को अपनाया और अन्य को छोडसा दिया। इसका कारण यह भी हो सकता है कि इन कवियो का उद्देश्य अपने आप को पण्डित और आचार्य सिद्ध करना था न कि साहित्य को समृद्ध करना। इसी युग म सस्कृत के अनुकूल रहत हुए भी यत्र-तत्र विषय विस्तार या सकोच भी किया गया।

सस्कृत काव्यशास्त्रकारो के अनुकूल काव्य पुरुष की कल्पनाएँ की गई जिनमे अधिकाशत सस्कृत का प्रभाव परिलक्षित होता है। कुलपति मिश्र ने ऐसा ही किया है। काव्य पुरुष की कल्पना मे ही नहीं, विषय निरूपण की शली पर भी सस्कृत ग्रथो का प्रभाव दिखाई देता है। यथा काव्य प्रकाश की शैली पर काव्य के अधिकाश अगो का विवेचन किया गया तो कही शृगार तिलक और रसमजरी के अनुकूल नायक नायिका भेद का चित्रण किया गया। चन्द्रालोक और कुवलियानन्द की शलियो ने भी हिन्दी रीति साहित्य को प्रभावित किया। कही कुवलियानन्द के समान लक्षण और उदाहरण अलग-अलग दिये गये तो कही चन्द्रालोक के अनुकरण पर एक ही छन्द मे लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत कर दिये।

१—डा० भागीरथ मिश्र—हिन्दी रीति साहित्य पृष्ठ २२
२—जगदविनोद—पद्माकर विरचित
३—साहित्य सुधा निधि ६, ५४, ५५

साहित्य दपण और काव्य प्रकाश आदि के यत्र-तत्र अनुवाद म कर लिए गये। कहीं-कहीं भोज के शृगार प्रकाश, भानुदत्त की रसतरगिनी और अग्नि पुराणादि के अनुकूल शृगार को रस राज माना गया।[1] यह भी उल्लखनीय है कि कभी कभी कतिपय ग्रन्थो की विवेचन प्रणालियो को भी एक कर लिया जाता था। उदाहरणार्थ हरिनाथ ने अलकार दपण म ८६ दोहो म लक्षण लिख लिए और फिर ४० छन्दो म उनके उदाहरण दे दिए। यह पद्धति चन्द्रालोक की शैली स अधिक भिन्न नहीं कही जा सकती है। इसी भाति अलकारमाला और अलकार चन्द्रोदय म शैली तो चन्द्रालोक की अपनाई गई परन्तु विषय का आधार कुवलिया नन्द को बनाया गया। सिद्धान्त रूप स शब्दालकारो को कम महत्व देने की प्रवृत्ति पर दो भिन्न-भिन्न प्रभावो का सयोग दिखाई देता है। एक तो चन्द्रालोक मे ऐसा ही किया गया है और दूसरा रस और चमत्कार के कारण भी सभवत ऐसा हुआ है। अलकारो मे शब्दालकार रस ध्वनि से अधिक दूर दृष्टिगोचर होते हैं। एक अन्य कारण यह भी बताया जा सकता है कि शब्दालकारो के द्वारा अपने हृदय की शृगारिता का भी उतनी सफलतापूवक नहीं प्रकट किया जा सकता जितनी की सफलता अथलकारो के द्वारा प्राप्त होती है। फिर भी सस्कृत के अनुकूल कतिपय विवेचको ने चित्र काव्य तक को स्थान दिया है। जगत विनोद मे रस को ब्रह्मानन्द सहोदर माना गया है। कुछ ग्रन्थो म रस सम्बन्ध म भरत के नाट्य शास्त्र के अनुकूल चार रसो को प्रमुख माना गया है और अन्य की उत्पत्ती उनसे ही बताई गई है।

इस काल मे कवियो के सम्बन्ध म निर्णयात्मक और इच्छा के अनुकूल उक्तियां भी कही गई हैं जो सस्कृत की प्रसिद्ध उक्तियो की शैली के अनुकूल है।[2] साहित्य दपण क नाम पर भी अलकार दपण (रतन कवि विरचित) और अन्य अलकार दपण (हरिनाथ कृत) आदि प्राप्त होते है। महाराजा रामसिंह कृत अलकार दपण भी इसकी पुष्टी करता। यह काल टीका पद्धति का भी अनुसरण

१—केशव कृत रसिक प्रिया एव देव विरचित शब्द रसायन।

२—(क) काव्य निर्णय पृष्ठ ४, ६

(ख) डा भगवत स्वरूप हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास पृष्ठ २६०–२६१

करता हुआ दिखाई देता है। अत एक शब्द में कहा जा सकता है कि भाव और शैली की दृष्टि से रीति युग के काव्यशास्त्रीय ग्रथो और लक्ष्य ग्रथो पर संस्कृत के काव्यशास्त्र का प्रभाव परिलक्षित होता है। यहा यह कह देना असगत न होगा कि अब तक काव्य मे शृगारिता राधाकृष्ण मिलन दूतिवाक्य सयोग वियोग उपालम्ब, रूप वर्णन और काम कल्पनाए तथा उहात्मक वर्णन बहुतायत से प्राप्त होने लगे। यह इनकी चरम सीमा थी। जिस प्रकार से अग्रेजी मे शेक्सपीयर के नाटको के बाद स्वतन्त्रता वाले नाटक अति स्वतत्र होगये जिन्हे बनजोनसन और क्रोमवल द्वारा रोका गया। उसी प्रकार से हिन्दी-काव्यशास्त्र को भी पण्डित महावीर प्रसाद द्विवेदी और तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियो ने नई और शुद्ध सात्विक राह बताने का सफल प्रयास किया। अग्रेजी आलोचना सिद्धान्तो ने इसमे सहयोग दिया।

द्वितीय प्रकरण

भारतेन्दुकाल 'क' भाग

(सम्वत् १९०० से १९५७)

सामान्य परिचय—

रीतिकाल तक हिन्दी काव्यशास्त्र संस्कृत नियमों की ओर दृष्टि लगाये हुए था। कभी तो वह सीधा संस्कृत आचार्यों की सामिग्री ग्रहण कर लेता था और कभी अपने पूर्ववर्ती भाषा लेखकों के आदर्श को स्वीकार कर लेता था। कहां कहीं वह एकाधिक लेखकों के सिद्धान्तों को मिला कर अथवा उनमें अपनी बुद्धि, सूझ और अपने ज्ञान के आधार पर अथवा कभी-कभी भूल से भी कुछ तथाकथित नवीन और मौलिक से सिद्धान्तों का प्रतिपादन भी कर लेता था। कालान्तर में इसमें परिवर्तन हुआ—यह हुआ भारतेन्दुकाल में। भारतेन्दु युग में अंग्रेजी प्रभाव प्रत्यक्ष परिलक्षित होने लगा और लेखकों के सामने पहले जहाँ संस्कृत आदर्श ही था वहाँ अब अंग्रेजी सिद्धान्त और नवीन प्रणालियों के रूप भी सामने आये। आलोचक परीक्षण कर नूतन काव्य सिद्धान्तों का भी अनुकरण करने लगे तो कभी अनुपयुक्त प्राचीन पृष्ठ भूमिका त्याग भी कर देते। यह हुआ अंग्रेजी काव्यशास्त्र के संपर्क से।

अंग्रेजों का आगमन—

इस समय तक अंग्रेजों का आगमन हो चुका था और उनके विशाल साम्राज्य की जड़ें दृढ़ हो रही थीं। ईसाई धर्म प्रचारक अपने कार्य में संलग्न थे और अंग्रेजी भाषा का प्रचार भी होने लगा था। ये सभी कार्य हो रहे थे। इस समय अंग्रेजी साहित्य से संपर्क स्थापित हुए अधिक काल व्यतीत नहीं हुआ था। यातायात के साधनों का भी सुधार हो रहा था। फिर भी यूरोप जातियाँ भारतीय साहित्य को प्रभावित कर रही थीं। उनके मनोरंजन के साधन भारतीय जनजीवन पर प्रभाव डाल रहे थे और भारतीय लोग भी उनके ही समान नाटकों की आलोचना

की ओर भी बढ रहे थे। अंग्रेज नाट्य प्रेमी सज्जनो ने इसमे सहयोग दिया।[1] अब तक भारतीय भी उसी दृष्टिकोण से साहित्य को परखने का प्रयत्न करने लगे।

एतिहासिक दृष्टि से भारत मे प्रथम अंग्रेज के आगमन के बारे मे मतभेद हो सकता है किन्तु यह अधिकाशत सब सम्मत का ही है कि टामस स्टीफन्स नामक प्रथम अंग्रेज सोलहवी शताब्दी मे भारत मे आकर बस गया।[2] इसके बाद फिच तथा न्यूबरी भारत मे आये।[3] जौन मिडन नामक अंग्रेज सन् १५६६ मे अकबर के दरबार मे गया। ये यात्राएँ केवल कुछ व्यक्तियो तक ही सीमित थी। लन्दन मे ३१ दिसम्बर सन् १६०० मे महारानी एलिजेबेथ ने भारत मे व्यावसायिक कम्पनी खोलने की राजाज्ञा प्रसारित की। सन् १६१२ तक कम्पनी के कर्मचारियो की अलग-अलग नौ यात्रायें हुईं। इस काल तक की यात्राओ का उद्देश्य भारत मे धन एकत्रित कर विलायत ले जाना और अंग्रेजो को भारतियो की दृष्टि मे अन्य विदेशियों से शक्तिशाली सिद्ध करना था। उधर कम्पनी के हिस्सेदार अधिक धनोपार्जन के इच्छुक थे। इंग्लैंड की सामान्य जनता का ध्यान भी भारतीय वैभव की ओर आकृष्ट हो चुका था। अतएव सन् १६५८ मे एक व्यापारिक कम्पनी की नीव डाली गई। सन् १७०२ मे युक्त दोनो कम्पनियो का एकीकरण कर दिया गया। इस सयुक्त कम्पनी ने भारतीय जनजीवन से विश्वास प्राप्त करने का प्रयत्न किया। इसने अंग्रेजी भाषा का प्रचार न करके प्राच्य भाषाओ को समुन्नत बनाने की नीति को अपनाया।

अंग्रेजों का शासन और उनकी भाषा सम्बन्धी नीति—

लोर्ड हेस्टिंग्स ने सन् १७८१ मे मुस्लीम मदद से नीव डाली और सन् १७८४ मे अरेबिक सस्था की स्थापना की। जब चार मई सन् १८०० मे फोर्ट विलियम कालेज की स्थापना हुई तब उसका उद्देश्य अंग्रेजो को भारतीय भाषाओ का ज्ञान प्रदान करना था। सन् १८१३ के अधिनियम के अनुसार शिक्षा पद्धति पर

१—विकासात्मक अध्ययन पृष्ठ १८ २०,८२ ८३

२—क—श्री नेत्र पाण्डे भारत वर्ष का इतिहास पृष्ठ १०७

ख—रामधारीसिंह दिनकर—संस्कृति के चार अध्याय पृष्ठ ४०५

३— १५८३ में।

एक लाख रुपया व्यय करना निश्चित किया गया। वह धन सन् १८२३ में व्यय किया जा सका। सन् १८२३ में जन शिक्षा सभा (कमेटी ओफ पब्लिक इन्सट्रक्शन्स) की स्थापना हुई। लोड मेकाले व राजा राममोहन राय आदि ने अंग्रेजी की शिक्षा का माध्यम मानने पर बल दिया।[1] डा० विलसन ने फारसी, अरबी और संस्कृत को उन्नत बनाने के असफल प्रयास की।

मेकाले प्रदत्त अंग्रेजी शिक्षा प्रसार के दृष्टिकोण को प्राप्त करके भी अंग्रेज अपनी भाषा का सफल प्रचार नहीं कर पा रहे थे। उन्हें रेल तार डाक आदि की व्यवस्था करनी थी। सन् १८५७ से पूर्व भारतवर्ष में विश्वविद्यालयों की स्थापना भी सम्भव नहीं हो सकी। सन् १८५७ से पूर्व तक के कम्पनी के राज्य को स्वेच्छाचारी और निरकुंशता का राज्य कहा जाता है।[2] यह भी कहा जाता है कि अभी तक अंग्रेजों ने भारतियों की दुर्दशा की और उन्हें सभी अच्छी वस्तुओं से वंचित रखा। यही नहीं उनकी जाति व उनके धर्म को भी अपमानित किया।[3] फलतः तथाकथित सिपाही विद्रोह अथवा भारतीय स्वतन्त्रता के प्रथम संग्राम का सूत्र पात्र हुआ।

स्वतन्त्रता-संग्राम और अंग्रेजों की नीति—

स्वतन्त्रता संग्राम के कारण महारानी विक्टोरिया ने शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली और भारतियों के साथ सहिष्णुता के व्यवहार की घोषणा की। उसने धर्म निरपेक्षनीति को अपनाया तभी से अंग्रेजी राज्य की एक निश्चित नीति बन पाई। यद्यपि राज्य सत्ताने तो धर्म निरपेक्ष नीति की घोषणा की किन्तु ईसाई धर्म प्रचारक पादिरी अवश्य ही अपने धर्म प्रसार कार्य में लगे हुए थे। ईसाई प्रचारक इस कार्य में दत्तचित्त थे।

१—लोड मेकाले ने बंटिक के शासन काल में भारतियों को अंग्रेजी शिक्षा देने का प्रबल समर्थन किया।—मिनिट २३ फरवरी १८३५ पारा २८। राजा राम मोहन राय ने भी अंग्रेजी शिक्षा के लिये सन् १८२३ में लोड एमहर्स्ट से निवेदन किया—वेस्टन इनफ्लुयेंस इन बगाली लिटरेचर पृष्ठ ४६।

२—श्री नेत्र पाण्डे-भारत वर्ष का इतिहास पृष्ठ २५, ६५ एवं १७५से २००

३—वही ४३३

ईसाई प्रचारकऔर हिन्दी—

वैसे तो ईसाई प्रचारक बहुत प्राचीन काल से ही भारत म आते रहे है। ईसा क अन्यतम शिष्य सट टोमस का सन् ६५ म ही भारत म आना कहा जाता है—ये प्रचार भारत वष म डच, पुर्तगालिया और फ्रासीसिया के राज्य म भी चलत रह।[1] यह काय अग्रेजी शासन काल म तीव्रता धारण करने लगा। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रारम्भिक अधिकारी—क्लाइव और उनके सहयोगी तो इनक विरुद्ध नही थे परन्तु इनके शीघ्र ही बाद कान वालिस जैसे शासक इन्हें हयोत-साहित करन लग।[2]

कालान्तर म ये निर्वासित से कर दिय गये। अन्त म सन् १८३३ मे इगलण्ड की ससद मे विल्वर फोस नामक अधिनियम द्वारा इनकी रक्षा की। इन धम प्रचारको का उद्देश्य धम प्रचार करना ही था जिसमे उन्होने प्रेम, समाज सुधार और साक्षरता मे सहयोग लिया। फिर भी यह प्रचार काव्यशास्त्र और आलोचना में प्रत्यक्ष रूप से सहयोग नही दे सक। इगलण्ड म बहुत पहले ही नाटक और अन्य साहित्य विधायें पादरियो से सरक्षण प्राप्त करने म असफल हो चुकी थीं।[3] व प्रचारक जो कि इन्द्रीय सुखोपभोग के विरुद्ध थे।[4] आलोचना को धारण न दे सके—सम्भवत उन्ह इगलैण्ड म घटित दसवी—बारहवी शताब्दिया का ध्यान था जिसम धम सहायक स्वरूप गृहीत साहित्यिक विधाओं ने लौकिक आनन्द प्रोत्साहन देकर अधार्मिक रूप धारण कर लिया था।[5]

अनेक राजनीतिक परिस्थितियो म उलझ जाने स कम्पनी के लोग साहित्य के प्रचार और प्रसार की ओर अधिक ध्यान नही दे पाये थे। फिर भी भारत

१—हिन्दी साहित्य कोष पृष्ठ १२४
२—हिन्दी साहित्य कोष पृष्ठ १२४
३—डा० विलियम केरे भारत में आये और उन्होंने मालाबार में चच की स्थापना की। कम्पनी ने बाधा डाली, फलत उन्हें सी रामपुर जाना पडा।
४—दी चीफ ब्रिटिश ड्रामेटिस्टस भूमिका एवम् पृष्ठ १२ १४,२४
५—वस्टन इनफुलेंस इन बगाली लिट्रेचर—पृष्ठ ४७

स्थित कई सहृदय एवम् साहित्य प्रेमी अंग्रेजी साहित्य की ओर भारतिया का ध्यान आकर्षित कर रहे थे।[1] यहां पर अंग्रेजी नाटकों के अभिनय होते जो भारतियों को उक्त विधा की ओर आकर्षित करते। वहां वे साधारण रूप में नाट्यालोचन में भाग भी लेते। यह आलोचना बहुत ही प्रारम्भिक रूप की कही जा सकती है। फिर भी इतना तो तथ्य ही है कि इससे हिन्दी आलोचकों को दुखान्त नाटकों को स्वीकृति देने में सहायता मिली। १९वीं शताब्दी में भारतीय नाटकों की आलोचना करने वाले हिन्दी आलोचकों ने वियोगात नाटकों को स्वीकार किया।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है सन् १८५७ में कलकत्ता, बम्बई और मद्रास विश्वविद्यालयों की स्थापना हुई। फलत भारतीय, अंग्रेज प्राध्यापकों के निकट सम्पर्क में आये। इन अंग्रेज विद्वानों ने हिन्दुस्तानियों को संस्कृत साहित्य की ओर आकर्षित किया। क्वीन्स कालेज के पिकाट साहब ने राजा लक्ष्मणसिंह को शकुन्तला के अनुवाद की प्रेरणा दी। उन्होंने नाटक भूमिका लिखकर हिन्दी आलोचकों को संस्कृत की ओर आकर्षित किया और उन्हें नाटक की स्वतन्त्र आलोचना लिखने का भी सम्भवत निर्देश किया। पिकाट साहब अन्य साहित्यकारों को भी पत्रों द्वारा प्रोत्साहित किया करते थे।[2,3] सर विलियम जोन्स के शकुन्तला के अंग्रेजी अनुवाद ने भी भारतीयों को अपने साहित्य को परखने का साहस प्रदान किया। इससे आलोचक और नाटककार हमारे साहित्य को महत्ता प्रदान करने लगे।

शनै शनै भारत में अंग्रेजी राज्य की जड़े मजबूत हुई। उनकी सभ्यता और संस्कृति से हम अछूते नहीं रह सके। साहित्य में अंग्रेजी राज्य की सराहना उसके प्रति रोष, उससे छुटकारा पाने के प्रयत्न और स्वदेश प्रेम आदि को स्थान दिया गया। आलोचकों ने अंग्रेजी से आई हुई नवीन साहित्यिक पद्धतियों को अपनाया।[4] वियोगात नाटक और उपन्यास उदाहरण स्वरूप पढ़े जा सकते हैं।

१—वन एक्ट प्लेज ओफ टु डे-पृष्ठ २६६,३६
२—देखिये शकुन्तला नाटक की भूमिका
३—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ ४४३
४—नाटकों पर अंग्रेजी प्रभाव की दृष्टि से देखिये हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन पृष्ठ १८ से २१

एक शब्द म हम कह सकते हैं कि हमारी आलोचना पद्धति इस प्रभाव से एक नवीन दिशा म बढन लगी। हिन्दी की प्रारम्भ मे ही यह प्रवृत्ति रहा है कि वह देशकाल अनुसार शास्त्रीय तत्वा का ग्रहण करती हैं।

अतएव इस युग मे हिन्दी न परीक्षण द्वारा सस्कृत नियमा की पृष्ठ भूमि म अग्रेजी आलोचना के नियमा को अपनाना प्रारम्भ किया। समालाचक कवि और भावक कभी किसी पद्धति को अपनाते तो कभी किसी को। कभी-कभी व इनके समन्वय का भी प्रयत्न करते। इस प्रकार इस युग म हिन्दी काव्य शास्त्र यूनानिक स दोना का ही सहारा लेता हुआ आगे बढ़ता हैं। इस युग की आलोचना की विभिन्न प्रवृत्तिया हमारे कथन की साक्षी हैं।

सस्कृत काव्यशास्त्र क परिपार्श्व में—

इस युग म भी काव्य शास्त्रीय सैधान्तिक ग्रन्थो का निर्माण हो रहा था। शास्त्रकार सस्कृत के काव्यशास्त्रो की छाया म भाषा म ग्रन्थ प्रतिपादित कर रहे थे। यथा कवि कल्पद्रुम,[1] रसिक विनोद व नखशिख-ग्वाल विरचित और इनक ही अलकार भ्रम भजन आदि देखे जा सकत हैं। गगाभरण,[2] रामचन्द्र भूषण[3] एवम् वनिता भूषण[4] ग्रथ भी हमारे कथन की पुष्टी करते हैं। य सस्कृत के साहित्यदर्पण काव्यप्रकाश, रसगगाधर चन्द्रालोक और कुवलियानन्द पद्धति ग्रथा स प्रभावित प्रतीत होते हैं। उस समय लोगा की सस्कृत भाषा म रुचि भी थी— पिताजी का कहना था कि मनुष्य को उस लोक के लिय सस्कृत पढनी चाहिय और इस लोक के लिये उर्दू।[5] इसलिये लोग सस्कृत पढते थे और अन्य हिन्दी की धार्मिक पुस्तका पर टीकायें भी लिखते थे।

१—रचनाकाल १९०१ लेखक रामदास

२—रचनाकाल स० १९३५ लेखक नन्दकिशोर मिश्र

३—रचनाकाल १९४७ सवत लेखक लच्छीराम

४—गुलाबसिंह द्वारा सवत १९४९ में भी रचित

५—ब्रजमोहन व्यास-बालकृष्ण भट्ट-पृष्ठ १५-७८

टीका साहित्य—

आलोच्य काल म सस्कृत प्रणाली के अनुकूल टीकाओ की रचनाएँ हुई । मानसीनन्दन कृत मानव शकावली शिवलाल द्वारा सम्पादित मानव मयक तथा शिवरामसिंह वी रचित तत्त्व प्रबोधिनी इसक प्रमाण हैं। इनम रस व भारतीय शास्त्रीय तत्वा ने प्रमुखता प्राप्त की । शका समाधानावली म पुरातन पद्धति का अनुशरण किया गया । मानव मयक तो पद्य वध टीका है जिस स्पष्ट करने के लिये प्राचीन प्रणाली के अनुकूल इन्द्रनाथ को तिलक लिखना पडा । इन ग्रथो म शास्त्रीय रस को प्रधानता दी गई । यही क्या प्राचीन लखक और शास्त्रीय तत्व तो पत्र पत्रिकाओ मे भी स्थान प्राप्त करते थे ।

हिन्दी प्रदीप मे प्राचीन लेखका का एक स्थाई स्तम्भ था । जिनम शास्त्रीय तत्वो की दृष्टि से उनकी आलोचना की जाती थी अर्थात आलोचना करते समय रस अलकार ध्वनि और वक्रोक्ति का सहारा लिया जाता था । कविवचनसुधा म भी इसी प्रकार की आलोचनाएँ प्राप्त होती थी । उदाहरण क लिये लेखक ने स्थाई भाव रस, आलम्बन और उद्दीपन का विवचन करते हुए लिखा गया था— 'स्थाई उस कहत हैं जो मूल रूप मे रस मे रहे । इस विभत्स का स्थाई घन है। रसो म आलम्बन और उद्दिपन भी होते हैं आलम्बन मे जा रस का आलम्बन हाता हा वस ही उद्दीपन वह जो रस जगाव हमारे इस परम पवित्र की जो गनिगा हैं वह उद्दीपन और आलम्बन दोना ही है।' इस प्रकार उक्त आलोचनाओ म हम शास्त्रीय तत्त्व प्राप्त होते हैं ।

शास्त्रीय तत्त्व—

भारतेन्दु काल म साहित्य की आत्मा रस को महत्व प्रदान किया गया था । यद्यपि यह तथ्य है कि प्रयोगात्मक दृष्टि स इस पर इतना बल नही दिया जाता था किन्तु आलोचक इसका स्मरण अवश्य ही कर लेत थे । भारतेन्दु न नाटक म रस की महत्ता को स्वीकार किया और रूपक म वस्तु और नेता के महत्व को भी घोषित किया । व अलकारो और ध्वनि का भी यत्र तत्र स्मरण कर लत थे ।[1]

१—भारतेन्दु कृत नाटक—

इस समय तक संस्कृत शास्त्रीय शब्दो को आलोचक अपनाये हुए थे और इसी हेतु कविता के लिये भी नाटक शब्द का और नाटक को कविता के रूप म लिख देने का प्रयोग करते थे।—तो जानना चाहिय कि यदि संयोगिता स्वयम्वर पर नाटक लिखा गया तो कोई दृश्य स्वयम्वर का न रखना मानो इस कविता का नाश कर डालना है। क्योकि यही इसम वर्णनीय विषय है।[1] इसी भाति अंग्रेजी से आये हुए सीन शब्द को वे दृश्य न कह कर गर्भांग कहते थे। कहने का तात्पय यह कि व संस्कृत शास्त्र का आधार ग्रहण कर लेत थे।

आधार—

आलोचक संस्कृत ग्रंथो को अपना आधार मानत थे और अधिकाशत उनका समुचित आदर भी करते थे वे यत्र-तत्र इसका स्मरण कर अत्यन्त श्रद्धा प्रकट करत थ। कभी-कभी तो कविता तक म अंग्रेजी आकर्षण के प्रति रोष प्रकट किया जाता था।

'पहिर कोट पतलून बूट अरु हैट धारि सिर।
मालू चरबी चरचि लवेंडर को लगाई फिर॥
नई विदेशी विद्या ही को मानत सवस।
संस्कृत के मृदु वचन लागत इनको अति ककश॥[2]''

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि हिन्दी का आलोचक संस्कृत काव्यशास्त्र का आधार ग्रहण किये हुए था। आलोचना म शास्त्रीय तत्वो को अपनाया जाता था। काव्य शास्त्रीय ग्रंथो का निर्माण भी होता था और टीकाओ की रचनाएँ भी। फिर भी समालोचक अंग्रेजी आलोचना के प्रति भी जागरूक थे।

अंग्रजी काव्यशास्त्र के परिपार्श्व म—

जसा कि पहले कहा जा चुका है कि इस युग म अंग्रेजी आलोचना का प्रभाव स्पष्ट रूप से परिलक्षित होने लगा था आलोचना के मानदण्ड, आदश और

१—प्रेम घन-संयोगिता स्वयंबर की समीक्षा। संस्कृत में काव्य नाटक में सम्मिलित होता है।—काव्येषु नाटकम् रम्यम इसका उदाहरण है। अतएव आलोचक ने नाटक के अथ में कविता का प्रयोग किया है।
२—भारत धम

स्थान परिवर्तित से होने लगे किन्तु अंग्रेजी भाषा का प्रभाव हिन्दी शैली पर अव्यवहित रूप से ही पड रहा था।[1] अब सबसे पहला उल्लेखनीय प्रभाव तो नाम म ही हो गया जहा पहले काव्यशास्त्र, नाट्यशास्त्र, साहित्य दपण शृगार मजरी या रसमजरी आदि शब्दों के प्रयोग होते थे वहा अब आलोचना या समालोचना को काम मे लिया जाने लगा जो क्रीटिसिज्म का समानार्थी है। इसी भांति मौलिकता का आग्रह और नवीनता का आकषण भी महत्ता प्राप्त करने लगा।

मौलिकता और नवीनता का आदर्श—

जहा प्राचीन काल मे शास्त्रीय नियमो के पालन की आकाक्षा रहती थी वही अब साहित्य का अंग्रेजी आलोचना की ओर आकृष्ट होने लगे। पहले साहित्यकार आगम निगम सम्वत अथवा भरत मम्मट और राज शेखर क अनुकूल रचना करने मे गौरव का अनुभव करते थे वहा अब अंग्रेजी आलोचको और साहित्यकारो के नाम गिनाये जाने लगे। कभी-कभी नवीन प्रतिपादन शैली को भी महत्व दिया जाने लगा। कविराज मुरारी दान के जसवन्त यशोभूषण म इस नवीनता क आग्रह को देखा जा सकता है। अब आलोचक और साहित्यकार अपनी मौलिकता को बताने का भी प्रयत्न करने लगे। कहा जाने लगा 'अब तक नागरी और उर्दू भाषा म अनेक तरह की अच्छी-अच्छी पुस्तकें तयार हो चुकी हैं परतु मेरे जान इस रीति से कोई नही लिखी गई, इसलिये अपनी भाषा मे यह नवीन चाल की पुस्तक होगी[2]।' इससे मण्डन करके खण्डन करने की प्रणाली का ह्रास हुआ और अपनी ही प्रतिमा को अद्वितीय मानने का आग्रह दिखाई देने लगा। इससे आलोचको म प्रतिस्पर्धा बढ़ी।

आलोचको की प्रतिस्पर्धा—

जब इस युग म मौलिकता और नवीनता के आग्रह के साथ पण्डित अपने मत और सिद्धात को महत्वपूर्ण मानने लगे तो आपसी सघर्ष अनिवार्य था पत्र

१—डा० दीनदयाल गुप्त—उपोद्घात महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग पृ०
ले-लेखक डॉ० उदयमानुसिंह

२—लाला श्रीनिवासदास—परीक्षा गुरु भूमिका पृष्ठ १ २

पत्रिकाओ म व्यग्य को बढावा मिला। इसमे अग्रेजी की छाया पाई जाती है। सयोगवश यह पत्रकार प्रतिद्वन्दता इगलैण्ड म सौलवी शताब्दी म पल्केटियस के सघष से तुलनीय हैं।[1] इस सघष मे जो एक दूसरे पर कटु व्यग्य करने की प्रवृत्ति है वह अग्रेजी साहित्य के सम्पक स विकसित हुई प्रतीत हुई है। पाश्चात्य साहित्य मे व्यग्य को प्रारम्भ से ही स्थान दिया जाता रहा है। वहा सुखात नाटको मे इसे भलीभाति देखा जा सकता है। हिन्दी के प्रहसन और यह आलोचना शैली भी इनसे अप्रभावित नही रह सकी। इस सघष मे भाषा को सुधार कर गद्य के रूप को स्थिर करने की लालसा थी। अग्रेजी के गद्य साहित्य ने सम्भवत हमारे आलोचको को एसी ही प्रेरणा दी होगी। यह तो तथ्य ही है कि हिन्दी का गद्य साहित्य अग्रेजी के सम्पक स विकसित हुआ था और अग्रेजी आलोचना के समान अब गद्य म आलोचना की जाने लगी। पहल जहा कविता मे काव्य शास्त्रीय तत्वों का निरूपण होता था वहा अब अग्रेजी आलोचना के समान गद्यात्मक आलोचनाएँ प्रास होने लगी। साहित्यकार पत्रो द्वारा नवीन विधाओ के–गद्य विधाओ के निर्माण की प्रेरणा देने लगे। भारतेन्दु बाबू ने अपने मित्र पण्डित सन्तोषसिंह को लिखा—'जसे भाषा म अब कुछ नाटक बनाये गये हैं अब तक उपन्यास नही बने। आप या हमारे पत्र के योग्य सम्पादक जैस बाबू काशीनाथ व गोस्वामी राधाचरणजी कोई भी उपन्यास लिखें तो उत्तम होगा।[2] इस प्रकार नवीन विधा के प्रादुर्भाव विषय प्रतिपादन की शली मे नवीनता का समावेश किया जाने लगा।— पहले तो पढने वाल इस पुस्तक म सौदागर की दुकान का हाल पढ़के चकरावेंगे। इनम मदनमोहन कौन, वृजकिशोर कौन इनका स्वभाव कसा परस्पर सम्बन्ध कैसा हर एक की हालत क्या है यहा किस समय किस लिये इकट्ठे हुए हैं। यह बातें पहले कुछ भी नही बताई गई। इस प्रकार लाला श्रीनिवास ने परीक्षा गुरू म अग्रेजी से आये हुए तत्व जिज्ञासा को अपनाया और उनके ही समान अपनी पुस्तक की भूमिका मे अपने उपन्यास पर प्रकाश डाला। इस प्रकार आलोचना प्रतिपादन की शली म अन्तर आया।

१—डॉ० सेंटस बरी–ऐलिजाबेथन लिट्रेचर–अध्याय १,२

२—डा० रामविलास शर्मा–भारतेन्दु युग–पृष्ठ ६३

सिद्धान्त प्रतिपादन शैली—

संस्कृत साहित्य म, अलकार ध्वनि, वक्रोक्ति, रीति और औचित्य सम्प्रदाय थे। उनके बारे मे आलोचना की जाती थी अथवा सिद्धान्त प्रतिपादन के समय उनका ध्यान रखा जाता था। रीति काल तक रस अलकार और ध्वनि किसी न किसी रूप म विद्यमान रहे। अब तो अ ग्रेजी प्रभाव के कारण य सिद्धान्त भुला दिये गये। इनकी उपेक्षा भी की गई। यहा तक कि शास्त्रीय तत्वो को ध्यान मे रख कर भी उन्हे अनिवाय नही माना गया। अब यदि अ ग्रेजी म भारतीय शास्त्रीय पद्धति का समानार्थी सिद्धा त या शब्द मिल जाता तो सस्कृत शैली को अपना लिया जाता अ यथा बहुधा छोड दिया जाता था।

शास्त्रीय शब्द और अग्रजी—

इस काल म शास्त्रीय शब्दो के अ ग्रेजी के रूपा और पर्यायवाची नामो का प्राप्त करने के प्रयत्न किये गये। अग्रेजी के अलकारो को सस्कृत अलकारों के स्थान पर रखा जाने लगा। साहित्य म भी उन्ही अलकारो को महतता मिली जिन्होने अपना रूप अ ग्रेजी म भी पाया था। पत्र पत्रिकाओ मे अ ग्रेजी के नामो और वाक्यो को स्थान दिया जाने लगा।

पत्र-पत्रिकाएँ—

अ ग्रेजी के सम्मान हिन्दी म भी पत्र-पत्रिकाओ का प्रणयन होने लगा। ब्राह्मण कवि वचन सुधा, हरीशचन्द्र मैगजीन, हिन्दुस्तान सारसुधानिधी और भारत मित्र प्रभृति पत्र निकलने लगे। जिनमे व्यवहारिक आलोचना को स्थान दिया जाने लगा। पत्र-पत्रिकाओ म पुस्तक समीक्षा ने भी स्थान प्राप्त कर लिया।[1] इसकी पद्धति से तत्कालीन आलोचका म क्षोभ भी था। वे कहते थे — हमारे देश म यह प्राचीन समय म जसी होनी चाहिए वसी न थी। और अर्वाचीन काल म भी लुप्त प्राय हो गई थी। पर अभी दस प द्रह वर्षों म ही अ ग्रेजी ग्र थ कृताओ

१—डा० रविन्द्र सहाय वर्मा-पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव। पृष्ठ १४८ एवम् डा० विश्वनाथ मिश्र हिन्दी भाषा और साहित्य पर अ ग्रेजी प्रभाव। पृष्ठ १३०-१३१

के परिचय स ब्वन कही-कहीं इसका प्रारम्भ हो चला है। विलायत म मासिक और त्रिमासिक जितने पत्र हमारे दृष्टि म आते हैं उन सब म यह प्रकरण भलीभांति सम्पादित किया हुआ दीख पडता है।[1] इन पत्र पत्रिकाओ म स अधिकाश की दशा अच्छी नहा थी।[2]

प्रयोगात्मक आलोचना—

अ ग्रेजी आलोचना के परिपार्श्व म हिन्दी समालोचना म प्रयोगात्मक आलोचनाओ की प्रवृत्ति विकसित हुई। इसका प्रारम्भ हिन्दी म अ ग्रेजी के समान पुस्तक समालोचना (बुक रिव्यु) म हुआ। इनम अ ग्रेजी के गद्य और पाश्चात्य शिक्षा के सम्पर्क और अ ग्रेजो के लाये हुए प्रेस न पूरा-पूरा सहयोग दिया। इन आलोचनाओ म काम म लिये जाने वाले सिद्धान्त भी भारतीयता म दूर हट रह थ। पुस्तक परिचय के रूप म हिन्दी प्रदीप म एवम् आनन्द कादम्बरी म आलोचनाएँ की जाने लगी। श्री श्रीधर पाठक क गोल्डस्मिथ के अनुवादों के परिचय इसी श्रेणी म रखे जा सकते हैं। वह लेख लन्दन क एंग्लो-इण्डियन मेल सन् १८६० क लेख स प्रभावित प्रतीत होता है।

अग्रजो द्वारा आलोचना मे सहयोग—

श्रीधर पाठक ने गोल्डस्मिथ के डेजर्टेड विलेज का उजड ग्राम नाम से अनुवाद किया था। उसकी प्रशसा लन्दन स प्रकाशित इण्डियन मैगजिन म जून १८८८ म की गई। और उसे श्रेष्ठ कविता बताया गया।[1] इसी भाति अलीगढ़ इस्टीटयूट ने भी अ ग्रजी म इसकी प्रशसा प्रस्तुत की। इससे ज्ञात होता है कि अ ग्रेजो न और अ ग्रेजी म की गई आलोचना म हिन्दी आलोचना क विकास म सहयोग दिया। अ ग्रेजी म प्रशसा प्राप्त कर लेने क बाद ही हिन्दी म कहा गया।

१—डा० रविन्द्र सहाय वर्मा—पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव। पृष्ठ १४८ एवम् डॉ० विश्वनाथ मिश्र हिन्दी भाषा और साहित्य पर अ ग्रेजी प्रभाव। पृष्ठ १४६

२—बालकृष्ण भट्ट—पृष्ठ १५ सम्पादक वृजमोहन व्यास

१—श्रीधर पाठक—मनोविनोद—३ खण्ड—पृष्ठ ४२

"पाठक जी आँख फेर कर इधर भी हेरें।"[1] अब ऊजड़ ग्राम इंगलैण्ड में कहीं भी नहीं है, उसकी जन्म भूमि हतभाग्य भारतवर्ष में सर्वत्र है।"[2]

इस युग में समालोचकों को साहित्यकार समझा जाने लगा।[3] यहाँ हम यह कह सकते हैं कि सैद्धान्तिक और शास्त्रीय दृष्टि से तो हिन्दी रीति काल में बहुत विवेचन हो चुका था परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से कृति विशेष या लेखक विशेष की टीका से भिन्न आलोचना अब प्राप्त होने लगी। इस प्रकार से साहित्यिक प्रस्फुटन में निश्चित रूपेण अंग्रेजी की आलोचना पद्धति और अंग्रेजी पत्रिकाओं के लेखकों का हाथ था। अंग्रेजी की आलोचना पद्धति की ओर साहित्यकार आकृष्ट हो रहे थे। और उसके अनुसार साहित्य सर्जन में लीन थे। फलतः रत्नाकरजी ने पोप के ऐसे ऑन क्रिटीसिज्म का पद्य-बद्ध अनुवाद किया गया। यह संयोग ही था कि इसी वर्ष नागरिक प्रचारिणी।

नागरिक प्रचारिणी सभा—

सन् १८९७ में इस पत्रिका के प्रथम अंक में ही गंगाप्रसाद अग्नीहोत्री ने समालोचना शीर्षक निबंध लिखा जिसमें हिन्दी आलोचना पर अंग्रेजी प्रभाव के प्रत्यक्षीकरण का प्रयास किया गया था। अग्नीहोत्रीजी ने यह अनुभव किया था कि अंग्रेजी पढ़े लिखे नवयुवकों को इसमें सहयोग देना चाहिये। इस सभा ने हिन्दी के उत्थान में अपूर्व सहयोग दिया। १९०२ में उसके कार्य के अवलोकनार्थ जो समिति बनाई गई थी उसका निम्नांकित निर्णय हमारे कथन की पुष्टि करता है —

(क) पारिभाषिक शब्दों को चुनने के लिये उपयुक्त हिन्दी शब्दों को पहले स्थान दिया जाय।

(ख) इन शब्दों के अभाव में मराठी, गुजराती, बंगला और उर्दू के उपयुक्त शब्द ग्रहण किये जाँय।

१—श्रीधर पाठक-मनोविनोद-३ खण्ड पृष्ठ ५०-५७
२—सुदर्शन-फरवरी-पृष्ठ १६०
३—डॉ० वेंकट शर्मा-आधुनिक हिन्दी में समालोचना का विकास पृष्ठ १४८-४९

(ग) इनके अभाव मे पहले संस्कृत के शब्द ग्रहण किये जाय, तब अंग्रेजी के शब्द रखे जाय और अन्त मे संस्कृत के आधार पर नये शब्द निर्माण किये जाय।[1]

इससे ज्ञात होता है कि उस समय मे पारिभाषिक शब्द बनाते समय मे अंग्रेजी के शब्दो को सबसे बाद मे स्थान दिया जाता था। इनके अभाव मे आधार भारतीय भाषाओ का ही रखने का प्रयास किया जाता था। फिर भी यह मानना ही होगा कि अंग्रेजी के शब्द हिन्दी मे अपनाये जा रहे थे।

अंग्रेजो द्वारा सचालित विद्यालयो की पाठ्य पुस्तको ने भी हिन्दी आलोचना को बल प्रदान किया। पाठ्य पुस्तका के द्वारा एक विशिष्ट शैली का निर्माण हुआ। इसने आलोचनात्म प्रवृति को बल प्रदान किया।

अंग्रेजी आलोचना ने भारतीय कवियो को भी प्रकाश मे लाने की प्रेरणा दी। जिस प्रकार से अंग्रेजी "बुक रिव्यु" से हिन्दी पुस्तकालोचन प्रभावित था उसी भांति कवियो की जीवनियो पर भी निम्नाकित अंग्रेजी प्रभाव की सभावना है।

कवियो की जीवनियाँ—

(क) अंग्रेजो द्वारा संस्कृत का अध्ययन महत्व प्राप्त कर रहा था। फलत संस्कृत विद्वानों की जीवनियो को प्रकाश मे लाने के प्रयत्न किये गये।

(ख) डा० जाह्नसन कृत लाइव्ज ओफ पोइट्स जैसे ग्रन्थ प्रेरणास्पद रहे और उनमे जीवनी के आधार पर आलोचना की शैली ने हिन्दी आलोचको को ऐसी ही आलोचना करने की प्रेरणा दी। जो लोग अंग्रेजी पढ़े लिखे नहीं थे उन्होने हिन्दी लेखको की शैली से, जो अंग्रेजी से प्रभावित थी प्रेरणा ली और हिन्दी की श्री वृद्धि की।

मान दण्ड मे अन्तर—

अब साहित्यक विधाएँ नवीन रूप धारण करने लगी। अतएव उनकी आलोचनाएँ भी नूतन दृष्टिकोण लिये हुए थी। यथा भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने अंग्रेजी

१—डा० श्यामसुन्दर दास, मेरी आत्म कहानी—पृष्ठ ४५ से ५५

नाट्य विधाओं को अपनाया। उन्होंने गद्य "नाटक" में इसका उल्लेख किया है।
अतएव यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी का काव्यशास्त्र अंग्रेजी से सम्पर्क ग्रहण कर आगे बढ़ रहा था। यदि क्या वह इस युग में प्राप्त काव्य शास्त्र ग्रन्थ मात्र रीति ग्रन्थ भी अंग्रेजी प्रभाव से विमुख नहीं हो सके। लच्छीराम और गुलाबसिंह ने पद्य के स्थान पर गद्य में टीकायें प्रदान की। लच्छीराम इसके अग्रगण्य कहे जा सकते हैं। साथ ही इसके पद्य में भी यत्र-तत्र खड़ी बोली को स्थान दिया गया है।[1] इसमें ज्ञात होता है कि अब प्राचीन परिपाटी के समर्थक भी अंग्रेजी आलोचना से प्रभावित हो रहे थे। जब साहित्य का उद्देश्य भी रीतिकाल के उद्देश्य के समान मनोरंजन या शृंगारिकता और नायिका ग्रन्थ प्रणयन न रहकर विलासिता के विरोध में मानव और यथार्थ का गुण्ठन माना जाने लगा। साहित्य जन साधारण की वस्तु बनने लगा। एतदर्थ चमत्कार का स्थान रागात्मक तत्व ने ले लिया जिसमें बौद्धिकता का आग्रह भी था।[2] अतएव आलोचना में भी चमत्कार का ह्रास और बौद्धिकता का आग्रह दिखाई देने लगा। साथ ही अंग्रेजी साहित्य की प्रमुख प्रवृति व्यंग्य भी इस युग में महत्ता प्राप्त करने लगा।

आलोचना और अंग्रेजी—

भारतेन्दु काल में अंग्रेजी भाषा प्रचलित हो चुकी थी और उसका प्रभाव भी लोगों पर बहुत था। इस निमित्त साहित्यिक पत्रों पर इसका प्रभाव अवश्य प्रभावी था हरीशचन्द्र मैगजीन के नाम में ही अंग्रेजी शब्द को स्थान मिला है। उक्त पत्रिका के मुख पृष्ठ पर भी अंग्रेजी की पंक्तियां प्राप्त हुआ करती था।[3]

इसी भांति विभिन्न साहित्यिक सभाओं के मन्त्री सक्रेट्रीज कहलाते थे।[4] और जो प्रशंसा पत्र कवियों को दिये जाते थे जो उनकी कविता के एप्रीसियेशन को प्रकट करते थे वे अंग्रेजी के किसी प्रशंसा पत्र का अनूदित प्रतिलिपि के समान दिखाई देते थे।[5] इसी प्रकार से भूमिकाओं के वाक्यों का अंग्रेज लेखकों के समान

१—डा० भागीरथ मिश्र—हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ १७२ से १७८
२—डा० भगवत स्वरूप मिश्र—हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास पृष्ठ २३५
३—कवि वचन सुधा—वोल्युम २ ७ ६—आश्विन कृष्ण पक्ष संवत १६२७
४—वही—पृष्ठ १६
५—क—डा० विश्वनाथ प्रसाद हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव पृष्ठ ११४—१५

कृति की आलोचना या आत्मालोचन के प्रथम प्रयास कहे जा सकते हैं। जिनमें अंग्रेजी शब्दों को मुक्तहस्त स्थान दिया जाता था। किशोरीलाल गोस्वामी की अंगूठी का नगीना की भूमिका इसकी साक्षी है। वहाँ लिखा गया है— 'एक सज्जन हमारे घर पर काशी में पधारे उन्होंने अपने घर की सच्ची कहानी कही यही इसका आधार है।'[१,२]

जैसा कि पहले कहा जा चुका है इस युग की आलोचनात्मक कृतियों में लेक्चर, स्पीच लिटरेचर क्रीटिसीज्म, क्रीटिक और नोवल आदि शब्दों के प्रयोग किये जाते थे।[३] कामताप्रसाद गुरु का हिन्दी व्याकरण डा० गिल क्राइस्टफोर्ट विलियम के सचालक और हिन्दी अंग्रेजी के अध्यापक की व्याकरण की सेवाओं का उल्लेख करता है।[४]

अंग्रेजी के विराम चिन्ह—

हिन्दी गद्य और आलोचना के विकास में अंग्रेजी शब्दों के साथ आये हुए विराम चिन्हों ने भी बहुत सहयोग दिया है। लाला श्रीनिवास दास ने अपने उपन्यास परीक्षा गुरु की भूमिका में उन पर अपनी अभिव्यक्ति प्रकट की। जिससे इसकी आलोचनात्मक सम्मति कहा जा सकता है। प्रेम सागर और नासिकेतोपाख्यान में इन विराम चिन्हों को महत्व पूर्ण स्थान दिया गया। इनके कारण भावों की अभिव्यक्ति में सहायता मिली जिससे हिन्दी आलोचना को बल मिला। हिन्दी के अनुसंधान और इतिहास ने भी अंग्रेजी से बहुत कुछ ग्रहण किया है।

अनुसन्धान और इतिहास—

जब अंग्रेज लेखकों द्वारा हिन्दी साहित्य को महत्ता दी जाने लगी और ग्रियर्सन ने हिन्दी का इतिहास लिखा—तब भारतीय विद्वान भी इस ओर द्रुततर

१—भूमिका—पृष्ठ १,२

२—डा० भगवत स्वरूप मिश्र—हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास—पृष्ठ १२०, १३२

३—डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव पृष्ठ १८१ से १६०

४—पृष्ठ—६ संस्करण १६२७

गति से बढने लगे। एफ० एस० क्रूसो ने रामायण ऑफ तुलसीदास मे विस्तृत तुलनात्मक आलोचना के सिद्धातो को प्रकट किया। ऐसा ही काय नागरिक प्रचारिणी सभा द्वारा किया जाने लगा। अग्रेज विद्वानो द्वारा भाषा वज्ञानिक अध्ययन को भी बल मिला। गासी दी तासी ने भी इतिहास ग्रथ लिखा—तात्पय यह है कि पाश्चात्य और विदेशी विद्वानो ने हिन्दी आलोचना को बल प्रदान किया। इससे हमारी तक शक्ति बढ़ी और टीकाओ की पद्धति मे भी अन्तर आ गया। अब टीकाओ के स्थान पर प्रयोगात्मक आलोचनाएँ सामने आई। इन टीकाओ म भूमिकाएँ भी स्थान प्राप्त करने लगी जो अग्रेजी आलोचनों के अनुकूल था।

एक तथ्य यह भी उल्लेखनीय है कि जहाँ सस्कृत काव्य शास्त्र म भरत कृत नाट्य शास्त्र प्रथम प्राप्य प्रमाणिक और प्रौढ़ रचना मानी जाती है उसी भाँति हिन्दी म भारतेन्दु युग म भारतेन्दु कृत नाटक आलोचनात्मक प्रौढ निब ध दृष्टिगोचर होता है। साथ म प्रयोगात्मक आलोचनात्मक निबन्धो म भी नाटको की आलोचना प्रमुखता रखती है। सयोगिता स्वयम्बर की आलोचना इसका प्रमाण है। यही क्यो प्रेम धनजी की आलोचना का सूत्र पात भी दृश्य रूपक या नाटक के प्रकाशन स ही हुआ था।[1] पण्डित बालकृष्ण भट्ट ने युग के युग रीन्दु के प्रारम्भ का सूत्र पात भी सयोगिता स्वयम्बर की आलोचना स किया। उन्होंने रणधीर और प्रेम मोहिनी तथा च द्रसेन और गुरू गोवरधनदास के अभिनय की आलोचना अपने लेखो म की।

निबन्ध और आलोचना—

अग्रेजी प्रभाव के कारण निबन्धो म आलोचना को स्थान दिया जाने लगा। महत्व पूर्ण साहित्यिक विधा की अवतारणा हुई।[2] आलोचनात्मक निब ध सामने आये।

निबन्ध और आलोचना—

इसम सस्कृत की निर्णयात्मक शली के साथ अग्रेजो व्यग्य प्रहार करने की शैली भी विद्यमान थी। पण्डित बालकृष्ण भट्ट जसे मनीषी इन आलोचको म थे

१—डॉ० वेंकट शर्मा-हिन्दी साहित्य में समालोचना का विकास।

२—डॉ० रवीन्द्र सहाय वर्मा-पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव पृष्ठ ११२

जो बुद्धि के ही अनुयायी थे और आलोचना ही जिनका धर्म था।[1] धर्म राजनीति और देश प्रेम भी इसमे ही आ जाते थे।[2] साथ ही वहा भाषा और तत्कालीन परिस्थितियो का भी वर्णन होता था। उदाहरण के लिये निम्नांकित कथन देखिये—"किन्तु एक समय था जब कुटिल आकृति धारण करने वाली वभावर्तिनी, कराला उर्दू के सिवाय और कुछ था ही नही। वर्तमान हिंदी साहित्य के जन्म दाता प्रात स्मरणीय सुगहीत नामधेय बाबू हरिशचन्द्र तथा दो एक उन्ही के समकक्षों को छोड सुलेखको का सर्वथा अभाव था निज उन्नति के आगे हिंदी की उन्नति का उत्साह भग हो गया पर हम अगीकृत का परिपालन अपने जीवन का उद्देश्यमान प्रति दिन इसे अधिकाधिक अपनाते ही गये।[3]

इससे ज्ञात होता है कि लेखकों मे देश प्रेम और राजनीति प्रेम भी उत्पन्न हो रहा था। यहाँ यह कहना सम्यक होगा कि वैसे भारतवासियो के लिये देश प्रेम कोई नवीन बात नही थी। यहाँ तो प्रारम्भ से ही जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि, गरयसी की भावना थी। फिर भी तत्कालीन [परिस्थिया ने इसमे सहयोग दिया। उस समय देशी शासक अपने व्यक्तिगत स्वार्थों और अहं के वश आपस म लड रहे थे। व अपने निजि स्वार्थों के सम्मुख देश को भूल चुके थे। यही नही डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी का अनुभव सत्य है कि—अपने देश को धन, धान्य से सम्मृद्ध बनाने के लिये दूसरे देशो का शोषण करना, अपने देश के प्रासाद सवारण के लिये दूसरे देश की झोपडियो को जलाना आदि भावनाओ से भी भारतवासी परिचित होने लगा।[4] तत्कालीन निबन्धो म ये भावनाएँ स्पष्ट रूप से अनुभव की जा सकती है।

१—बृजमोहन व्यास–बालकृष्ण भट्ट पृष्ठ १११

२—वही पृष्ठ १५५–पहले यहा यह देश सोने से फूला–फूला था वहाँ लोहा भी मयस्सर नहीं है—जिस बात पर अशर्फिया लुटती थीं उसमें अब कोयले पर भी मोहर। हिन्दुस्तान दियमान दशा और अंग्रेजी राज्य की नीति।

३—वही पृष्ठ १६२

४—हिन्दी साहित्य पृष्ठ ३६५

निष्कर्ष—

अन्त में निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि भारतेन्दु युग में संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल कतिपय लक्षण ग्रन्थों का निर्माण कार्य चल रहा था। सामान्यतः आलोचक और लेखक शास्त्रीय तत्वों को भी महत्व प्रदान कर रहे थे। निबन्धों और आलोचनाओं में संस्कृत के विचारकों और शास्त्रों के मत उद्धृत किये जाते थे इसके साथ ही अंग्रेजी के प्रभाव स्वरूप काव्यशास्त्र नाम के स्थान पर अंग्रेजी के क्रिटिसिज्म का हिन्दी रूपान्तरित रूप आलोचना या समालोचना प्रचलित हो गया। आलोचना में नवीनता और मौलिकता का आग्रह मान्य हुआ। आलोचना में सिद्धान्त निरूपण का स्थान प्रयोगात्मक आलोचनाएँ ग्रहण करने लगीं। भारतेन्दु के नाटक में जहाँ सिद्धान्त निरूपण का प्रयत्न किया गया है वहाँ भी उन पर अंग्रेजी आलोचना का प्रभाव देखा जा सकता है। उन्होंने वियोगान्त नाटकों का स्वीकृति प्रदान की और केवल भारतीय आधार पर नाटक रचना को अनुपयुक्त बताया। यह प्रत्यक्षतः अंग्रेजी आलोचना और नाटकों का ही प्रभाव था।[1] अब आलोचकों द्वारा छन्दों और भाषा के सुधार की ओर भी ध्यान दिया गया। यह स्वाभाविक ही था। इंगलैंड में भी प्रारम्भ में ऐसी ही मनोवृत्ति विद्यमान थी। सोलहवीं शताब्दी तक वहाँ के साहित्यकार चौसर स्पेन्सर और इतालवी छन्दों का अध्ययन कर साहित्य निर्माण में संलग्न थे।[2] चेक एसकम और गास्कायिन आदि ने इसमें सहयोग दिया था। इनकी आपसी असमन्वय जैसा स्वर हिन्दी के तत्कालीन साहित्यकारों में भी विद्यमान था।

इस युग की पत्रिकाओं में संस्कृत और अंग्रेजी—दोनों का ही स्थान दिया जाता था। हरिश्चन्द्र मैगजीन में हिन्दी के साथ अंग्रेजी के लेख भी छपते थे और वहाँ संस्कृत की रचनाओं को भी समुचित स्थान दिया जाता था। काव्यप्रभाकर और ब्राह्मण भी इसके अपवाद न थे। इन पत्र पत्रिकाओं में अंग्रेजी के समान हिन्दी में भी कुछ रिव्यू को अपनाया। इसमें प्रयोगात्मक आलोचना को बहुत बल प्राप्त हुआ।

१—हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन—भारतेन्दु के नाटकों का विवेचन।

२—डॉ० रामवरी हिस्ट्री ऑफ इंगलिश क्रिटिसिज्म एवं एलिजाबेथन लिटरेचर—अध्याय १ २

बुक रिव्यू ने आगे चल कर प्रयोगात्मक आलोचना का रूप धारण कर लिया। ऐसी भूमिकाएँ लिखी जाने लगी जिनमे लेखक अपने मतव्य को प्रकट करते और वे अंग्रेज लेखकों के समान अपने कृति का महत्व प्रदर्शित करते। सामान्यत आलोचक पुरातन पद्धति के आधार पर नवीन विद्याओ को ग्रहण कर रहे थे। प्रेस के प्रादुर्भाव और विकास से आलोचकों म आपस म सघष भी चला जो अंग्रेजी के पफनटियस के सघष से तुलनीय है। अलकारो के और आलोचना के अंग्रेजी पर्याय भी दिय जाने लगे। काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने शास्त्रीय शब्दावली के निर्माण मे सहयोग दिया। उसका उद्देश्य हिन्दी को प्रान्तीय भाषाओ स उदू स सस्कृत से और अंग्रेजी स शब्द लेकर सम्पन्न बनाना था।

साहित्य की सजनात्मक और कारयित्री विद्याओ म अंग्रेजी प्रभाव के कारण परिवतन दृष्टिगोचर होने लगे। फलत आलोचना पर भी यह प्रभाव परिलक्षित होने लगा। समालोचकों द्वारा नवीन विद्याओ को ग्रहण करने और प्राचीन विद्याओ म समयानुकूल यत्र-तत्र परिवतन कर देने के प्रयत्न किये जाने लगे। प्रारम्भ म देशज भाषाएँ काव्यशास्त्रीय ग्रन्थो के प्रणयन की उदासीनसी हो थीं। वे समयानुकूल सुविधानुसार सस्कृत नियमो को ग्रहण कर लेती थी अथवा उन्हे त्याग देती थीं।[1] अतएव हिन्दी मे प्रारम्भ से ही नियमो के अन्धानुकरण की प्रवृत्ति नहीं थी। वह सस्कृत के नियमों स दूर भी जा रही थी। रीतिकाल म भी सस्कृत काव्यशास्त्र को देश कालानुसार ही अपनाया गया था। इसी कारणों से वक्रोक्ति और रीति सम्प्रदायो की अवहेलना हुई। नाटक का तो विवेचन प्राय छोड ही दिया गया। अत हिन्दी की नियमो के शिकजे से छूटने की प्रवृत्ति अंग्रेजो के आने स पहले ही विद्यमान थी। उस अंग्रेजी आलोचना ने और भी अधिक प्रोत्साहित किया। पहले हिन्दी जगत क सामने केवल सस्कृत और देशी भाषाओ के शास्त्रीय तत्व ही विद्यमान थे। य तत्व प्राचीन और अमर भाषाओ के थे। इस युग म अंग्रेजो क कारण जीवित विदेशी भाषाओं से हिन्दी का सम्पक हुआ। अतएव हिन्दी आलोचनाओ पर उसका प्रभाव वाछनीय मनोवैज्ञानिक और ऐतिहासिक दृष्टि से समचीन था।

अंग्रेजी भाषा म जीवन भाषा के प्राण थे नवीनता थी विदुता थी और था तक सबल भी। अंग्रेज शासक भी थे। और भारतियो तथा अंग्रेजो म अंग्रेजी

१—देखिये प्रस्तुत प्रतिनिबन्ध—वीरगाथाकाल और भक्तिकाल का विवेचन।

के प्रसार के प्रयत्न भी किये थे। इसलिये भाषा का आलोचना साहित्य अंग्रेजी आलोचना से प्रभावित हुआ और उसके सहारे से आगे बढ़ने लगा। इसमे हिन्दी मे उन विधाओं और सिद्धान्तो को जो दोनो मे विद्यमान थे दृढतापूर्वक स्वीकार कर लिये थे जो केवल किसी एक की साहित्य मे थे उन्हे सुविधानुसार त्याग दिये अथवा ग्रहण कर लिये। कई बार सस्कृत के शास्त्रीय तत्वो को छोड़ दिया जाता था और बहुत सी बार अंग्रेजी आलोचना के सिद्धान्तो को अपनाने का प्रयत्न भी किया जाता था। अंग्रेजी के प्रभाव से हिन्दी मे निर्णयात्मक ढग की आलोचना शली के दर्शन होने लगे। इस आलोचना शली मे कहीं-कहीं तुलनात्मक शली भी दिखाई देती है।[१] अंग्रेजो के समान हिन्दी आलोचक भी गद्य और पद्य की भाषा के बारे मे सोचने लगे।

अंग्रेजी प्रभाव के कारण गद्य और पद्य की भाषा के भेद के महत्व को समझा गया। इस काय मे अयोध्या प्रसाद खत्री ने आगे आकर अगुवा के रूप मे काम किया पिगाठ महोदय जिन्होने नाटको मे आधुनिकता लाने का प्रयत्न किया था उन्होंने ही अयोध्या प्रसाद की खडी बोली की कविताओ का कुशल सम्पादन किया। उन्होने खत्रीजी को साधुवाद भी प्रदान किया। इसी तथ्य पर सन् १८८८ मे हिन्दुस्तान के सम्पादक ने गद्य और पद्य की भाषा के भिन्न-भिन्न न रखने पर बल दिया। इस प्रकार अंग्रेजी साहित्य-वड्सवथ के, सिद्धान्तो के समान हिन्दी मे भी भाषा भिन्नता को त्याज मानने के बीज दृष्टिगोचर होने लगे।[२] इनका विकसित स्वरूप आगामी युग मे दिखाई देने लगा। यहा अंग्रेज विद्वानो द्वारा की गई हिन्दी साहित्य के इतिहास की सेवा की प्रशसा करना उपयुक्त ही होगा। उन्होने भारतियो को प्राचीन साहित्य की ओर जाने का निर्देश भी दिया। वे समय समय पर हिन्दी समालोचकों का प्रोत्साहित भी करते थे। विभिन्न विद्यालयो और विश्वविद्यालयो ने हिन्दी को स्थान दिया। इससे हिन्दी की गद्यशली का विकास हुआ और पाठ्यक्रमो की पुस्तको की रचनाओ से शली मे एक विशिष्ट स्थिरता के

१—डॉ भगवत स्वरूप मिश्र—हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास पृष्ठ २४२

२—क-हिन्दी काव्य पर आंग्ल प्रभाव पृष्ठ ८२ ८५

ख-पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव पृष्ठ ६३ ६४

ग-शान्तिगोपाल-वड्सवथ के काव्य सिद्धात।

भी दर्शन होने लगे। साहित्यक रचनाओ मे जीवन का चित्रण हो ऐसा भी माना जाने लगा। रीति कालीन शृंगारिकता को भी अवाछनीय बताये जाने लगा।[1]

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस समय के आलोचक संस्कृत और अग्रेजी दोनो से ही सबल ग्रहण कर आगे बढ रहे थे। संस्कृत को उन्होने पैतृक सम्पति के रूप मे प्राप्त किया था और अग्रेजी का ज्ञान उनके अपने परिश्रमो से सचित और अर्जित धन था। इस युग के आलोचक और उनकी आलोचनाएँ हमारे मत का समर्थन करती है। आलोचको मे एक वर्ग संस्कृत साहित्य की ओर रुचि रख रहा था तो दूसरा अग्रेजी नियमो से आकर्षित हो रहा था। बहुधा सुविधानुसार दोनो ही आलोचना पद्धतियों को अपनाने के प्रयत्न किये जाते थे। आगामी विवेचन इसका साक्षी है।

१—डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र-हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास पृष्ठ २३५।

'ख' भाग

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र—

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र रचनात्मक साहित्यिक विधाओं का सृजन करते हुए आलोचना की दृष्टि भी रखते थे। इन्होंने नाटक में उसके प्रतिमानों को लिखा था। ये अपने मित्रों को साहित्य की नवीन विधाओं का अनुवाद की प्रेरणा भी देते थे। इस प्रकार ये स्वयं आलोचक के रूप में साहित्यकारों के सहयोगी भी थे। इन्होंने अपने मित्र पंडित गदाधरसिंह को जो पत्र लिखा था वह हमारे कथन का साक्षी है।[1] इससे प्रकट होता है कि आलोचक भारतेन्दु हिन्दी साहित्य की क्षति-पूर्ति की आकांक्षा रखते थे, अपने साथियों को प्रेरणा देते थे और जब यह कार्य पूरा नहीं होता था उसे पूरा करने का वे स्वयं प्रयत्न करते थे। जब उन्होंने हिन्दी में उपन्यासों की कमी को अनुभव किया तो उन्होंने स्वयं चन्द्रप्रभा और पूर्ण प्रकाश नामक उपन्यास में उसे पूरा करने का प्रयत्न किया।[2] इसी भांति उन्होंने नाट्य क्षेत्र को भी पुष्ट और उन्नत बनाया। भारतेन्दु बाबू ने कालिदास, जयदेव और सूर तथा पुष्टिवल्लभाचार्य के चरित्र लिखे। इस प्रकार इन्होंने जीवन चरित्र मूलक आलोचना को पुष्ट बनाया। इस आलोचना को अंग्रेजी के भारतीय कवियों के ऊपर किये गये कार्य से प्रेरणा मिली होगी। यहां यह भी उल्लेखनीय है कि ये विषय अर्थात् कवियों के जीवन निःसंदेह भारतीय थे। इस प्रकार इन पर विषय की दृष्टि से भारतीयता का प्रभाव है और प्रतिपादन की शैली की दृष्टि से अंग्रेजी का। इन्होंने शाण्डिल्य ऋषि के भक्ति के सौ सूत्रों का भाष्य लिखा। यह भाष्य लिखने

१—डा० रामविलास शर्मा–भारतेन्दु युग पृष्ठ ६२–६३–इन्होंने लिखा था "जैसे भाषा में अब तक कुछ नाटक बन पाये हैं अब तक उपन्यास नहीं बने हैं। आप—उपन्यास लिखें तो उत्तम रहेगा।"

२—यह मराठी उपन्यास का रूपान्तर था और उन्होंने अपनी पत्रिका हरिश्चन्द्र चन्द्रिका में कुछ आप बीती जग बीती उपन्यास का प्रारम्भ भी किया था, जो अधूरा ही रहा।

की पद्धति इन पर संस्कृत के प्रभाव की परिचायक है। इन्होंने अपने नाटक में भी संस्कृत के रस को पूर्ण रूपेण विस्मृत नहीं किया है। ये उसके समयानुकूल उपयोग के समर्थक थे। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि ये संस्कृत काव्यशास्त्र को आधार बनाये हुए थे साथ ही ये नवीन सिद्धान्तों के प्रति सतर्क और जागरूक थे।

भारतेन्दु बाबू अंग्रेजी आलोचना के परिपार्श्व में—

भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्र ने बुक रिव्यु लिखे और तहकीकात पूरी की। तहकीकात में इन्होंने उसका प्रखर रूप सामने रखा। इन्होंने दादु नानक कबीर प्रभृति आदि भक्त और ज्ञानियों को देवताओं के निबरल दल में रखा है।[1] इन्होंने जातीय संगीत में लोक गीतों के प्रति रुचि दिखाई है जिसका कारण अंग्रेजों द्वारा फाक सोंगज की महत्ता हो सकती है। भाषा शीर्षक निबन्ध में भाषा की पाचन शक्ति की बात कही गई है जो अंग्रेजी की प्रवृत्ति के अनुकूल है। वे तो अपने जीवन के अंतिम दिनों में जीवन की बाधाओं को भी नाटकीय शैली में प्रस्तुत किया।—"छः जनवरी सन् १८८५ ई० प्रातः काल के समय जब भीतर से बीमारी का हाल पूछने मजदूरिन आई तो आपने कहा कि—जाकर कह दो कि हमारे जीवन के नाटक का प्रोग्राम नित्य नया छप रहा है, पहले दिन ज्वर की, दूसरे दिन दर्द की, तीसरे दिन खासी की सीन हो चुकी, देखें लास्ट नाइट कब आती है।'[2]

जीवनियाँ—

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इन्होंने जीवनियाँ भी लिखी। वैसे जीवनी साहित्य भक्ति काल में ही प्राप्त होने लगा था, किन्तु भारतेन्दु बाबू ने भक्ति कालीन लोकोत्तर तथ्यों का उल्लेख न करके अंग्रेजी में प्राप्त यथार्थ मूलक जीवनियों के समान जीवनियों का प्रतिपादन और सम्पादन किया। भारतेन्दु विरचित कालिदास, जयदेव और सूरदास जैसे साहित्यकारों की जीवनियाँ उदाहरण स्वरूप देखी जा सकती है। प्रामाणिक जीवन वृत्त प्रस्तुत करने का इनका उद्देश्य था।

१—स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन, मित्र विलास खण्ड ८, संख्या ४० १९ जून सन् १८८५।

२—अयोध्याप्रसाद खत्री–खड़ी बोली का पद्य (सन् १८८९) पृष्ठ ३१,३२।

इसकी प्रेरणा सम्भवत डॉ० जोनसन की लाइव्ज ओफ पोइटस से मिली होगी। इन्होंने अपने नाटक म भारतीयता के साथ अंग्रेजी आलोचना तत्वों को ग्रहण किया है।

नाटक—

भारतेन्दु ने नाटक द्वारा दोनों का भाषाओं के गुणों से नाट्य निर्माण की आकांक्षा प्रकट की है। वहाँ उन्होंने नाटकों को प्राची और अर्वाचीन नामक दो भागों म विभाजित किया है। उनकी मान्यता है कि प्रहसन (प्राचीन म) एक ही अङ्क होता था पर अर्वाचीन में दृश्य बदलना आवश्यक हो गया है। नवीन नाटकों म उन्होंन यूरोप और बंगला का प्रभाव बताया है। अंग्रेज आलोचकों के समान उन्होंने नाटकों म कई दृश्यों को स्वीकार किया है। नाटकों के संयोगान्त दोनों ही भेदों को स्वीकार किया है। अर्थात् दुखान्त नाटकों को उन्होंन मान्यता प्रदान की है। भारतेन्दु ने यथार्थ वाद पर बल दिया और मिथ्या आशा को दूर करने के लिये स देश भी दिया। वे कहते हैं कि संस्कृत नाटकादि रचना के निमित महामुनि भरतजी ने जो सब नियम लिख दिये हैं उनमें से हिन्दी नाटक रचना के नितान्त उपयोगी है। और इस काल के सहृदय सामाजिक लोगों की रुचि के अनुयायी हैं वे ही नियमादि यहाँ प्रकाशित होते हैं।[1] इस प्रकार ज्ञात होता है कि अनेक दृश्यों की व्यवस्था देने वियोगान्त नाटकों की महत्ता स्वीकार करने, यथार्थ के आग्रह को मान्यता प्रदान करने सूत्रधार की अवहेलना करने आदि म भारतेन्दु पर अंग्रेजी आलोचना और नाटकों का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है।

नाटक में भारतेन्दु ने नाटकों का इतिहास भी दिया है—भारतीय ही नहीं यूरोप के नाटकों का भी इतिहास दिया है इससे अवश्य ही नाटकों के पठन पाठन म अभिवृद्धि हुई होगी। उनकी इस आलोचना से तत्कालीन परिस्थितियों में अंग्रेजी साहित्य के प्रभाव का परिचय मिल जाता है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि उस युग म शोध कार्य विकसित न होने के कारण वे कम ही आलोचकों

१—(क) भारतेन्दु नाटकावली प्रथम भाग–सम्पादक बाबू ब्रज रत्न दास पृष्ठ ७२२

(ख) विस्तृत विवेचन के लिये देखिये–हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन पृष्ठ १०० से १३६

के मत उधृत कर पाये। जैसे—भास, दण्डी और रुय्यक आदि के नाम उन्होंने नही लिये है।

निष्कर्ष—

भारतेन्दु ने शास्त्रीय रस को महत्ता प्रदान करते हुए भी सामयिक दृष्टि से भक्ति, वात्सल्य, सख्य और आनन्द नामक चार नवीन रसो की कल्पना भी की। जब इसकी आलोचना प्रत्याआलोचना होने लगी तो उन्हाने स्वय सम्पादक के नाम पत्र लिख कर अपने मत की पुष्टि की फलत विरोधियो का दमन हो गया। व लिखते हैं—

"वाह वाह रसो का मानना भी मानो वेद के धर्म को मानना है। जो लिखा है वही माना जाय और उसके अतिरिक्त करे तो पतित होय। रस ऐसी वस्तु है जो अनुभव सिद्ध है। इसके मानने मे प्राचीनो की कोई आवश्यकता नही। यदि अनुभव मे आवे मानिये न आवे न मानिय।"[1]

× × × ×

'भक्ति—कहिये इसको आप किस के अन्तगत करते हैं क्योकि इस रस की स्थाई श्रद्धा है और इसके आलबन भक्त और इष्ट देवता हैं और उद्दिपन भक्तो का प्रसग और सतसग है।"[2]

इस प्रकार निष्कष निकाला जा सकता है कि उन्होने अग्रेजी काव्यशास्त्र के सहारे हिन्दी काव्य शास्त्र की अभिवृद्धि करनी चाही। उन्होने जहा सस्कृत नियमो मे रूढितावाद देखा वहा उसे हेय बताया। साथ ही वे सस्कृत काव्यशास्त्र को आधार बनाये हुए थे। उन्होने जब नवीन रसो की कल्पना की तो शास्त्रीय दृष्टि से उपयुक्त सिद्ध करने का प्रयत्न भी किया। उन्होने जब भारतीय मनिषियो के चरित्र लिखे तो *एतिहासिक आलोचना को दृष्टि पथ पर रखा।* जब उन्होने साहित्य मे नवीन विधाओं का ह्रास पाया तो उसके परिपूरण करने का प्रयत्न भी किया। वे अपने युग के श्रेष्ट साहित्यकार और आलोचक तो थे ही, उन्होने अनेक कवियो और लेखको का प्रेरणा भी प्रदान की।

१—कवि वचन सुधा जिल्द ३ सख्या २२, ५ जुलाई १८७२
२—वही जिल्द ३

बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन—

भारतेंदु धारा के आलोचकों में प्रेमघनजी का अपना स्थान है। वे विवेकशील सम्पादक के रूप में काम करते रहे। नवीनता के प्रति ये आकृष्ट हुए और इन्होंने युक्ति द्वारा प्रयोगात्मक आलोचना को महत्त्व दिया। इनकी आलोचनायें आनन्दकादम्बिनी और नागरीनीरद नाम पत्रिकाओं में प्राप्त होती हैं। इन्होंने अपने दृश्य रूपक या नाटक नामक निबंध में संस्कृत और अंग्रेजी नाटकों का उल्लेख किया है।[1] अतएव ये अंग्रेजी और संस्कृत साहित्य तथा समालोचना के साथ आगे बढ़ रहे थे। उनका इन पर प्रभाव भी था।

संस्कृत के परिपार्श्व में—

उक्त लेख में इनका रस को महत्त्व देना नाट्य शास्त्र और काव्य शास्त्रीय परम्परा के अनुकूल है। इसी भांति संयोगिता स्वयम्बर की आलोचना करते समय उन्होंने शास्त्रीय तत्वों-वस्तु नेता और रस का आधार ग्रहण किया है। यथा क्या इसमें मुख्य और अंगी रस कौन है? इसका भी विवेचन किया गया है जो पूर्णतया नाट्य शास्त्र और साहित्य दर्पण के अनुकूल है। इसी भांति इन पर अंग्रेजी आलोचना का प्रभाव भी दिखाई देता है।

अंग्रेजी आलोचना के परिपार्श्व में—

बंग विजयता की आलोचना करते हुए इन्होंने बताया कि वह आर्य भाषा में होकर भी अंग्रेजी प्रबन्ध प्रणाली से युक्त है।[2] इससे स्पष्ट ज्ञात होता है आलोचक की दृष्टि अंग्रेजी प्रबन्ध प्रणाली के गुण भी थे। उन्होंने यह भी बताया कि प्रथम परिच्छेद में आई हुई घटनायें इतिहास के अधिक निकट हैं, उपन्यास के नहीं। अतएव इस परिच्छेद को उन्होंने भूमिका में रखने का आग्रह किया। इससे अंग्रेजी पुस्तकों में लिखी गई भूमिकाओं का प्रत्यक्ष प्रभाव मानना चाहिए।

१—आनन्द कादम्बिनी संख्या ८ ५ सन् १८८१

२—प्रेमघन सर्वस्व द्वितीय भाग पृष्ठ ४४१

इनके हिंदी भाषा से सम्बन्धित नाटकों[1] में हिंदी के विकास की कामना प्रदर्शित की गई है। उनका कलकत्ते में तीसरे साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के समय दिया गया भाषण हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास को प्रकट करता है। इन्होंने स्वयं पत्रिका की प्रार्थना में २६ पुस्तकों के फारवर्ड लिखने की बात कही है। इन्होंने नागरी समाचार पत्र और उनके समालोचकों का समाज में भारत मित्र और सरस्वती के सम्पादकों—बाबू मुकुन्द गुप्त और महावीर प्रसाद द्विवेदी के संघर्ष का हृदय बताया है। इनके उर्दू पर किये जाने वाले व्यंग्य अंग्रेजी के सटायर के समान प्रतीत होते हैं।

इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल रस आदि को मान्यता प्रदान की। अंग्रेजी आलोचना के समान इन्होंने प्रयोगात्मक आलोचना को महत्व दिया। भूमिकाएँ लिखना और व्यंग्य प्रहार करना भी अंग्रेजी पद्धति के अनुकूल हैं। इनके ही समान पण्डित बालकृष्ण भट्ट पर भी संस्कृत काव्यशास्त्र और अंग्रेजी आलोचना का प्रभाव दिखाई देता है।

पण्डित बालकृष्ण भट्ट—

संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित बालकृष्ण भट्ट अंग्रेजी समीक्षा सिद्धान्तों के प्रति उदार नहीं थे। इन्होंने संयोगिता स्वयम्बर पर लेखनी चलाई जिसे भारतेन्दु युग की आलोचना में प्रथम स्थान दिया जा सकता है। रणधीर और प्रेम मोहिनी, चन्द्रसेन तथा गुरु गोवर्धन दास आदि की भी इन्होंने आलोचनाएँ कीं। इनके सामने अंग्रेजी का निबन्ध और आलोचना साहित्य था परन्तु इन्होंने अन्धानुकरण नहीं किया। हिंदी प्रदीप द्वारा पाठक वर्ग तैयार किया। इनकी शैली में व्यंग्य का प्राचुर्य प्राप्त होता है। इस प्रकार ये एक ओर संस्कृत काव्यशास्त्र के निकट हैं तो दूसरी ओर अंग्रेजी आलोचना से प्रभावित हुए ही हैं।

१—हिन्दी, हिन्दु और हिन्दी हमारी प्यारी हिन्दी, हमारे देश की भाषा और अक्षर देश के अग्रसर और समाचार पत्रों के सम्पादक, पुरानों का तिरस्कार और नई का सत्कार और भारतीय नागरिक भाषा इसके उदाहरण हैं।

२—प्रेमधन सर्वस्व दूसरा भाग पृष्ठ ४६२

संस्कृत प्रभाव—

इन्होंने भवभूति, कालिदास और श्रीहर्ष आदि के ग्रन्थों का परिचय देते हुए उनकी जीवनियों पर प्रकाश डाला है। अतएव विषय की दृष्टि से ये संस्कृत से सम्बद्ध रहे हैं। भवभूति और कालिदास की तो इन्होंने तुलना भी की। भट्टजी ने अपनी आलोचनाओं में शास्त्रीय तत्वों को भी ध्यान में रखा है। वह हमारे शास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुकूल है। वे लिखते हैं—लालाजी यदि बुरा न मानिये तो एक बात आपसे धीरे से पूछें कि आप परिहासिक नाटक कहते किसे हैं आदि। इस प्रकार के कथन इन पर अंग्रेजी प्रभाव के भी परिचायक हैं।

अंग्रेजी प्रभाव—

इन्होंने अंग्रेजी शब्दों को स्थान दिया है। विशेष प्रकार की कविता के लिये छन्द-बन्ध भी अनुपयुक्त मानते थे। उन्होंने संस्कृत से परिपूर्ण शास्त्रीय कविता को कृत्रिम और हेय सिद्ध किया है। वे लिखते थे— हिन्दी कवि भी उन्हीं पुराने कवियों की शैली का अनुकरण कर आज तक चले आये हैं और उसी ढंग को छोड़ कर दूसरे प्रकार की भी कविता हो सकती है। यह बात उनके मन में धसती ही नहीं है। जिसकी उपमा हम देंगे। छोटे से तालाब की देंगे जिसमें न कहीं से पानी का निकास है न ताजा पानी उसमें आने की कोई आशा है। तब इसके अतिरिक्त और क्या हो सकता है कि पानी दिन व दिन बिगडता जाय।[1] इसी भांति आलोचना में व्यंग्य प्रहार करते हैं और अंग्रेजी शब्दों को अपनाते हैं।—'पात्र के भाव (स्प्रीट औफ दी टाइम्स) क्या थे? इन सब बातों को ऐतिहासिक रीति से पहले समझ लीजिये तब उनके दर्शाने का भी यत्न नाटकों द्वारा कीजिये।'[2]

ये प्रदीप में आलोचना करने से पूर्व जिन सिद्धान्तों के आधार पर आलोचना करते थे उनका उल्लेख भी कर देते थे। इस प्रणाली पर ऐडीसन के स्पेक्टेटर में की गई आलोचना की—प्रमुख रूप से मिल्टन की पेरेडाईज लोस्ट की आलोचना की छाया का अनुमान लगा सकते हैं।

१—हिंदी प्रदीप मार्च, सन् १८८०

२—हिंदी प्रदीप-मार्च, १८८०

निष्कर्ष—

भट्टजी ने हिन्दी भाषा की उन्नति के लिये अथक परिश्रम किया। हिन्दी प्रदीप में व स्थान-स्थान पर लिखते थे—विचार कर देखिये तो भी जो हिन्दी हम आजकल बोलते हैं वह पहले क्या थी और अब क्या है। जब फारसी, उर्दू शब्द इसमें मिलते जाते हैं अपनी निज की भाषा के काम काजी शब्दों को मर जाने या मृतक प्राय हो जाने से बचाना अच्छे लेखकों का काम है।[1] इसी भांति आप लिखते थे —आप जो भाषा बोलेंगे वह किसी सांचे में ढली होगी। इत्यादि।[2] इन्होंने अत्यन्त सामान्य परिस्थिति के होते हुए भी हिन्दी प्रदीप का ३३ वर्ष तक सम्पादन किया।[3] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि इनका उद्देश्य अपनी भाषा को समृद्ध बनाना था जिसमें इन्होंने सुविधानुसार संस्कृत के काव्यशास्त्र के साथ अंग्रेजी की आलोचना को भी अपनाया।

पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री—

अग्निहोत्री जी ने समालोचना के मुख पृष्ठ पर भामिनी विलास का श्लोक उद्धृत किया जो इनकी संस्कृत आदर्श निबाह की आकांक्षा को प्रकट करता है। इन्होंने जहनसन व मोकोले के अध्ययन की महत्ता को प्रतिपादित किया। जिससे अंग्रेजी प्रभाव प्रत्यक्ष हो जाता है। यहाँ एक प्राचीन संस्कृत आलोचना के लिये लिखा कि वह वैसी नहीं थी जैसी होनी चाहिए।[4] अतएव ये अंग्रेजी आलोचना को ये लोहा मानते थे। वे अंग्रेजी अध्ययन को आलोचना—गुण दोष विवेचन का, आलोचना का मूल मानते थे। उन्हें हिन्दी में इसके अभाव का खेद भी था। उनकी धारणा थी कि—

साराश जो दोष हो उनका निर्भयता एवम् स्पष्टता पूर्वक कथन हो और वैसे ही हो जैसे गुण हो तो उनके लिये रचयिता की उचित प्रशंसा की जाय। जिस प्रकार एक सत्य निष्ठ न्यायाधिकारी शत्रु मित्र भाव को बिल्कुल भुलाकर

१—हिन्दी प्रदीप—१८८५ जिल्द ८, संख्या १७

२—वही—

३—वृजमोहन व्यास—बालकृष्ण भट्ट पृष्ठ १६६–१८१

४—पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री—समालोचना पृष्ठ २५

सबल उदासीनता पूर्वक न्याय करता है यह सच्चा चित्रकार पुत्र सच्चा नाम म अपने ग्राहकों को सच्चा तोल देता है, सच्चा एवम् उत्तम चित्रकार ज्यों का त्यों चित्र उतार देता है उसी प्रकार समालोचक को भी होना चाहिए।[1] इससे हम ज्ञात होता है कि य जहां संस्कृत आलोचना के अनुसार कार्य करने के इच्छुक थे इसी भांति अंग्रेजी आलोचना को इन्होंने अपनाया था।

बाबू बालमुकन्द गुप्त—

बाबू बालमुकुन्द गुप्त हरबर्ट स्पेंसर मैक्समूलर आदि पाश्चात्य विद्वानों के जीवन चरित्र के रचयिता हैं जिससे उनका अंग्रेजी का ज्ञान प्रकट होता है।[2] उन्होंने चन्द अमीर खुसरो कबीर नानक और जायसी द्वारा हिन्दी को दिये गये योगदान को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया। हिन्दी भाषा और लिपि को सुधारने का भी इन्होंने प्रयास किया। द्विवेदी जी ने जब भाषा और व्याकरण निबन्ध प्रकाशित करवाया तो बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने उसकी भारत मित्र म प्रत्यालोचना की। और फिर तो अग्नि भड़की।

इस प्रकार की आलोचना प्रत्यालोचना की शैली पकेन्सियस की याद दिलाती है। इनकी पुस्तक समालोचनाओं म शास्त्रीय निर्वाह नहीं के बराबर दिखाई देता है।[3] ये बड़े तीव्र आलोचक माने जाते हैं।[4] इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन्होंने अंग्रेजी के ज्ञान से हिन्दी भाषा को सुधारने का परिश्रम किया। इसम इनके संस्कृत व्याकरण और शास्त्रीय ज्ञान ने भी सहयोग दिया।

अन्य—

पण्डित मोहनलाल विष्णुलाल पण्ड्या ने पृथ्वीराज रासो की प्रामाणिक ठहराने का यथाशक्ति प्रयत्न किया। जब कविराज श्यामलदास ने रासो को और

१—पण्डित गंगाप्रसाद अग्निहोत्री–समालोचना सन् १८९६ पृष्ठ ३७

२—भारत मित्र सन् १९०४ एवम् १९००

३—डॉ० वैकुण्ठ शर्मा–आधुनिक हिन्दी साहित्य में समालोचना का विकास पृष्ठ १८०–८१

४—डा भगीरथ मिश्र और डा० राम बिहारी शुक्ल हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास पृष्ठ १६७

पृथ्वीराज के सम्बन्धित घटनाओं को पृथ्वीराज चरित्र म जाली ठहराया तो इन्होंन रासो संरक्षण म उसकी प्रामाणिकता पर विश्लेषित प्रकाश डाला।

ये आलोचक संस्कृत का आधार लेते हुए भी अंग्रेजी आलोचना के प्रति जागरूक थे। इन्होंन अंग्रेजी आलोचना के प्रयोगात्मक रूप को अपनाया और पत्र पत्रिकाओं म गद्यात्मक लेखों द्वारा अपन विचार अभिव्यक्त करते थे। इन आलोचकों के साथ ही आलोच्य काल म संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल काव्यशास्त्र रचना करन वाले भावक भी प्राप्त होते हैं। रामदास कृत कवि कल्पद्रुम इसका उदाहरण है। इसम ध्वनि सम्प्रदाय को प्रमुखता देते हुए संस्कृत के शास्त्रों के अध्ययन की ओर संकेत किया गया है। प्रारम्भ म ही लिखा गया है—

देखे भाषा संस्कृत ग्रन्थ अनेक विचारि।
तिनके वरनन नाम है जथा सुक्रम अनुसार।
× ×
देखि कुवलियानन्द, सुनि वाग्भटालंकार।

इसम नाट्यशास्त्र के समान नाटक म संस्कृत और नाटक दोनों ही भाषा के प्रयोग की व्यवस्था की है। इस प्रकार यह ग्रन्थ संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल है। फिर भी इस युग म अंग्रेजी साहित्य के सम्पर्क से गद्य का विकास हो चुका था। इस प्रकार ये भी अपन ग्रन्थ म गद्य की व्याख्या अवश्य ही देते हैं।—जैसे— शब्दार्थ सम्बन्ध से कवित्त होता है तातें प्रथम आखर अर्थ कहे इत्यादि जात्यादिक भेद करके वाचक लाक्षणिक विंजक तीन प्रकार के शब्द —

यहां हम कह सकते हैं कि गद्य तो ब्रज भाषा वाला ही है परन्तु इस प्रकार की व्याख्या प्रदान करने की भावना पर अंग्रेजी से विकसित हिन्दी गद्य को अपनाना कहा जा सकता है।

चन्द्रशेखर वाजपेयी—

वाजपेयी जी ने रसिक विनोद की रचना रसमंजरी के अनुकूल की है। इसम नायक नायिका के भेद को स्थान दिया गया है। रस निरूपण भरत के अनुसार है किन्तु इसम नव रसों का उल्लेख मिलता है।

ग्वाल कवि न कवित्त और दरव क समान रस रग म रस के दो भेद किय है। उन्होने उन्हे प्रकाश और प्रच्छन न कह कर लौकिक और अलौकिक कहा है। नायिका भेद म भी नवीनता दिखाई गई है। यथा मुग्ध मान्या दुःख साध्या और बहुकुटुम्बिका आदि भेद किये गय हैं। इसस ज्ञात होता है कि काव्यशास्त्रो पर लिखने वाले विवेचक भी अंग्रेजी प्रभाव क कारण नवीनता को अपनाने लग थ।

नन्दकिशोर उपनाम लेखराज कृत गगा भरण तीनो भागो म विभक्त हैं। इसम अर्थालकारो शब्दालकारो और चित्रालकारो को विवेचन की सामग्री बनाया गया है। वहाँ सस्कृत परिपाटी का परिपालन भूषण के माध्यम स हुआ प्रतीत होता है। लेखक न गगा का महिमा गान करते हुए अलकारो का विवेचन परम्परा क अनुकूल किया है।

लच्छीराम—

लच्छीराम कृत रामचन्द्र भूषण म भी अलकार वर्णन प्राप्त होता है। य रीति काल क समान कह देते हैं—

सुकवि रीझि हैं करि कृपा तो कविता लछिराम।
नतरु ब्याज सों मैं रच्यो श्री सियवर को नाम ॥६०८

लच्छीराम कृत कई ग्रन्थ माने जाते हैं जिनमे रावणेश्वर कल्पतरु और महेश्वर विलास प्रसिद्ध हैं।[1] इनकी रचनाओ म लक्षण देकर उदाहरण देने की प्राचीन परम्परा का निर्वाह हुआ है।[2] इसका क्रम भाषा भूषण के अनुकूल ही रक्खा गया है। इसके ही समान रामचन्द्र भूषण म गुम्फ अलकार को स्थान दिया गया है। इसम इनकी मान्यता यह थी कि जो भिन्न प्रभाव काव्य का होता है उसे ही काती कहत हैं जो अलकार है। पोप ने भी ऐसा ही कहा था कि हम शारीरिक अव्ययो को अलग-अलग रूप से देख कर उन्हे सुन्दर नही कहते। सुन्दरता तो प्रभावान्विति की सज्ञा है। यहा हम कह सकते हैं कि लच्छीराम क उक्त कथन पर

१—डा० भागीरथ मिश्र-हिन्दी काव्यशास्त्र का उद्भव और विकास पृष्ठ १८६-८७

२—डा० ओमप्रकाश-हिन्दी अलकार साहित्य पृष्ठ १६८

पोप का प्रभाव न होकर ध्वनि सम्प्रदाय की छाया है। इन्होने रावणेश्वर कल्पतरु मे काव्य के उत्तम मध्यम और अधम भेद चन्द्रलोक के आधार पर किए हैं। इसका तृतीय कुसुम शब्द शक्ति का विवेचन करता है जिस पर काव्य प्रकाश की छाया परिलक्षित होती है। इस संस्कृत प्रभाव के साथ इन पर अंग्रेजी का प्रभाव भी दिखाई देता है।

इनकी यह विशेषता है कि इन्होने गद्य मे अलकारो के साथ तिलक जोड दिया है।[1] यह अंग्रेजी के परिपार्श्व मे विकसित गद्य के प्रचलन के गुलाबसिंह कृत वनिता भूषण मे भी गद्य का स्थान दिया गया है। इसमे नायिका भेद और अलकारो का वर्णन केशव की रसिक प्रिया के समान एक साथ किया गया है। इसके प्रणयन मे संस्कृत ग्रथो और हिन्दी पुस्तको की सहायता ली गई है जिसका उल्लेख लेखक ने स्वयम् कर दिया है। अलकारो का विवेचन कुवलियानन्द की छाया प्रकट करता है क्योकि उसके ही समान मालोपमा आदि अलकारो को इसमे छोड दिया है।

गगाधर का महेश्वर भूषण भी एक काव्य शास्त्रीय ग्रथ है। इसमे उन्होने बाबू भारतेन्दु हरीश्चन्द्र का आदर सहित नामोल्लेख किया है। वे कहते हैं कि—

> पढि विद्या वाराणसी लिया प्रशसा पत्र।
> हरिश्चन्द्र आदिक सुकवि किय दस्ताक्षर तत्र।
> भयउ जब इगलण्ड में जुबली को दरबार।
> चित्र काव्य वर विरचि के पठेयो तित सुखसार।

इस प्रकार जुबली के दरबार के अवसर पर कवि का ग्रथ पढा गया था। इन्होने इसके चतुर्थ उल्लास मे राधिका का नख शिख वर्णन किया है। पाचवे उल्लास मे दान वर्णन और तदनन्तर चित्र काव्य का वर्णन किया गया है। यथा इन्होने स्थान-स्थान पर तिलक दिया है।

१—यह जो समस्त वृतान्त वर्णन कियो सो कारण प्रस्तुत है अरु सेना के प्रभाव से जो दूत के हृदय में भयानक भयो ताको नक हू ना कह्यो सो अप्रस्तुत है।

अभदनीय आदि कुछ अलकार अपनी ओर से भी बनाये है। इससे इनका नवीनता का आग्रह दिखाई देता है। इनके जसवन्त जसो भूषण म महाराजा जसवन्तसिंह प्रेरक के रूप म गया था। इसकी विशेषता यह है कि इससे सस्कृत म भी अनुवाद किये गये। इसे राज कृपा परिणाम कहा जा सकता है परन्तु यह भी सत्य है कि इनका ग्र थ भाषा विद्वानो मे ही नही सस्कृत क कवियो म भी समादृत था। मुरारीदान जी ने कहा है कि—

भाषा भूषण ग्र थ को, इक दिन चल्यौ प्रसग।
मोसो नप पूछ्यौ कह्यो, याकौ कैसौ ढग॥
भाषा में मत भरत के, है प्रथमहि यह ग्र थ।
× × ×
प साक्षात् न होत है अलकार को ज्ञान।
इस उत्तर पर हँसि कह्यौ, रचौ ग्रथ कोउ आनु॥

लक्षण नाम प्रकाश में लेखक न बताया है कि जयदेव ने स्मृति भ्रान्ती और सन्देह इन तीन अलकारो के नामो को लक्षण समझा है। इन्होने जसवन्त जसो भूषण म तो सभी अलकारो को नाम से ही समझाने का प्रयत्न किया है। इसका आधार जयदव माने जा सकते हैं। साथ ही इन्होने यह भी कहा है कि एसा ग्र थ बनाना चाहिये जिसम सस्कृत और भाषा के ग्रन्थो को पिष्ट पेषण न हो। कोई नवीन युक्ति निकाली जाय। इस नवीन युक्ति को निकालने की भावना पर अ ग्रेजी का प्रभाव दिखाई देता है। इन्होने गद्य म व्याख्याएँ भी की है।[1] इस प्रकार निष्कष निकाला जा सकता है कि इनके लक्षण ग्र थ का आधार काव्यशास्त्र थ। महाराजा से इन्हें प्रेरणा मिली और आदेश मिला। अ ग्रेजी के प्रभाव से उत्पन्न नवीनता का आग्रह इन्हे मान्य था। अबतक गद्य का प्रचलन हो चुका था और उसके प्रौढ रूप के दशन इनके ग्रथों में होते हैं।

निष्कर्ष—

उपयु क्त विवचन से ज्ञात होता है कि आलोच्य काल में एक धारा सस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल प्रवाहित हो रही थी। इसके रचयिताओ ने भाषा कवियो के माध्यम स भी सस्कृत प्रभाव को ग्रहण किया था। साथ ही युग प्रभाव के रूप मे

१—जसवत जसो भूषण-११४

इनके गद्य को भी अपनाया था। कालान्तर में इसका निखरा रूप भी सामने आया। ये आचार्य भी नवीनता और मौलिकता की आकांक्षा रखने लगे। फिर भी अधिकांश में प्रतिमानों को इसी की दृष्टि में और विषय सामग्री के विचार से संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल थे। दूसरी ओर कुछ समालोचक भी थे जो अंग्रेजी ग्रन्थों और अंग्रेजी आलोचकों के तत्वों को अपनाने का प्रयत्न कर रहे थे। तत्कालीन परिस्थितियाँ और अंग्रेजी राज्य सामान्य रूप से दोनों ही शक्तियों को प्रेरणा प्रदान कर रहे थे। संस्कृत साहित्य जिस पर अंग्रेजी प्रभाव पड़ रहा था उसके माध्यम से भी हिन्दी के आलोचक अंग्रेजी आलोचना के तत्व ग्रहण कर रहे थे। उदाहरण के लिए अब वियोगान्त नाटक,[1] विषयात्मक कवितायें आदि हिन्दी में प्रतिष्ठित हुए। अंग्रेजी की भिन्न तुकान्त शैली के अनुकूल हिन्दी में भी गद्य गीतों की रचनाएँ हुईं। भारतेन्दु की चन्द्रावली का समर्पण इसका साक्षी है। यहाँ भी यह कथनीय है कि संस्कृत की विधाओं और संस्कृत के शास्त्रीय तत्वों की ओर आलोचकों का ध्यान अवश्य ही था। लक्ष्य ग्रन्थों में जैसे संस्कृत की पृष्ठ भूमि विद्यमान थी वैसे ही लक्षण ग्रन्थ उसे अपनाये हुए थे। अंग्रेजी के समान बुकरिव्यु, पत्र-पत्रिकाओं और व्यंग्यात्मक प्रहारों का प्रचलन बढ़ गया था।

नवीन नामों को संस्कृत के आधार पर ग्रहण किया जा रहा था। उदाहरण के लिए अंग्रेजी के सीन को संस्कृत के गर्भांग के रूप में हिन्दी आलोचकों ने स्वीकार किया। आलोचकों और समालोचकों में देश प्रेम था और अपनी भाषा की उन्नति का वे भरसक प्रयत्न भी कर रहे थे। उनमें नवीनता का आग्रह बढ़ रहा था। कहीं-कहीं पुस्तकों को छात्रोपयोगी बनाने के प्रयत्न भी चल रहे थे। तथ्य यह है कि संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुरूप शास्त्रीय रचनायें करने वाले भी अंग्रेजी आलोचना के कतिपय तत्वों और नवीनता के आग्रह को अपना रहे थे। नवीन शैली का आग्रह बढ़ रहा था। पुरातन से भी कम प्रेम नहीं था। अभी तक सभी नूतन और पुरातन शास्त्रीय तत्वों से पूर्ण परिचय नहीं हो सका था—परीक्षण काल चल रहा था। कोई आलोचक कहीं भारतीय पद्धति का अनुसरण करता तो अन्य समालोचक अंग्रेजी का। इन विधाओं का सुखद सामंजस्य आगामी युगों में देशकालानुसार होने लगा।

१—विस्तृत विवेचन के लिये देखिये हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन भारतेन्दु कालीन नाटकों का विवेचन।

तृतीय प्रकरण

द्विवेदी युग 'क' भाग

(सवत् १६५७ से १६८५ तक)

सामान्य परिचय—

आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी ने गद्य को प्रौढता प्रदान की और रीति कालीन शृंगारिता जो भारतेन्दु युग को भी पार करके साहित्य में आई थी उसे निष्कासित किया। काव्य का शुद्ध और सस्कृत रूप प्रदान करने वालो मे आचार्य का प्रमुख स्थान है। इनकी मान्यता थी कि कविता का विषय मनोरंजन और उपदेश जनक होना चाहिये। "लेकिन कौतूहल या अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका है। न परकीया पर प्रबन्ध लिखने की आवश्यकता है और न स्वकीया की गतागत की पहली बुझाने की।"[1] इसमे इनके सस्कृत और अंग्रेजी के ज्ञान ने सहयोग दिया। पत्र पत्रिकाओ की आलोचना पद्धति पर बुकरिव्यु की छाया दिखाई देती है किन्तु साथ ही उन्होने हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुकूल देशकालानुसार आलोचना को सफल बनाने का सुष्ठु प्रयास किया। इसमे एक ओर जहाँ भारतीयता की पुकार थी वहा दूसरी ओर अंग्रेजी आलोचको की व्यग्य प्रहार की प्रवृत्ति भी थी। इतना होते हुए भी आलोचना को प्रौढता प्राप्त करनी थी। द्विवेदीजी और श्यामसुन्दर दासजी का पत्र व्यवहार इस पर प्रकाश डालता है।—

'लोगो को प्रसन्न रखना बडा कठिन है अप्रसन्न करने मे विलम्ब नहीं लगता। समालोचनाओ को यथार्थ रूप मे ग्रहण करने से हम किसी को सतुष्ट नहीं कर सकेंगे, यद्यपि इसमे कोई सन्देह नहीं कि ऐसा करने से लाभ होगा। फिर भी यह मेरा विश्वास है कि हमारे समाज मे गिनती के दो एक लोग हैं। जो निष्पक्षता

१—रस रजन पृष्ठ १५

पूर्ण आलोचना कर सकें। इन सब बातों का विचार करते हम लोगों ने अभी आरम्भ नहीं किया—परन्तु इसकी आवश्यकता जरूर स्वीकार करते हैं और एक स्वतन्त्र पत्र निकाल कर इस अभाव की पूर्ति का विचार रखते हैं। [1]

इससे स्पष्ट हो जाता है कि द्विवेदी जी आलोचना को प्रौढ़ स्वरूप प्रदान करने की आकांक्षा रखते थे। वे पत्रकार के रूप में भी आलोचना की सेवा करने को इच्छुक थे। उन्होंने यह कार्य किया भी। इनकी विचार धारा का प्रभाव इनके सरस्वती सम्पादन के अन्त हो जाने पर भी चलता रहा।

द्विवेदी युग काल विभाजन—

द्विवेदी युग का आरम्भ सन् १६०१ से १६३० तक माना जाना चाहिये। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी ने इस प्रकार की मान्यता की पुष्टि कर साहित्यिक काल विभाजन की प्रणाली को पुष्टता प्रदान की है। द्विवेदी जी ने सन् १६०१ [2] के आसपास साहित्य जगत में पदार्पण किया था और सरस्वती का कुशल सम्पादन सन् १६०३ में प्रारम्भ किया। वे इस काम को सन् १६२० तक करते रहे। उनके उक्त सम्पादन के (दस वर्ष) बाद तक उनकी ही धारणाएँ साहित्य जगत में विकीर्ण होती रहीं। अतएव सन् १६३० तक द्विवेदी युग माना जाना चाहिये। अंग्रेजी मे एलिजाबेथ युग ऐलिजाबेथ के जीवन काल तक ही सीमित नहीं रहा है। चासर, ड्राईडन और पोप के कालों के बारे में ऐसी ही धारणाएँ हैं। साहित्य में कोई भी वाद, विचार धारा अथवा युगान्तर न तो व्यक्ति के उत्पन्न होते ही उत्पन्न होता है और न उसके अन्त के साथ ही समाप्त होता है। अतएव द्विवेदी जी के सरस्वती के सम्पादन के समाप्त होते ही साहित्य में एकाएक एक युग का अन्त और दूसरे का समारम्भ नहीं माना जा सकता है। जो उनके युग को सन् १६३० तक नहीं मानते हैं उन्होंने भी उक्त काल तक उनकी समीक्षा शैली और समीक्षा

१—डा० भगवत स्वरूप मिश्र–हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास–

२—डॉ० दीनदयाल गुप्त ने डॉ० उदयभानु सिंह की रचित आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग के उपोद्घात में द्विवेदी युग का प्रारम्भ सन् १६०१ से माना है।

प्रणाली का चलते रहना स्वीकार किया है।[1] फिर भी यह तो मानना ही होगा कि हिंदी आलोचना इतनी तीव्र गति से आगे बढ़ रही थी कि काल विभाजन अधिक स्पष्टता से नहीं हो सकता। इसी युग में नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा शोधकार्य किया जा रहा था। मिश्र बंधुओं की तुलनात्मक पद्धति प्रौढ़ता प्राप्त कर रही थी और सूर्य नारायण दीक्षित जैसे आलोचक शेक्सपियर पर लिख रहे थे। द्विवेदी जी स्वयम् संस्कृत कवियों को प्रकाश में लाने का प्रयत्न कर रहे थे। अंग्रेजों की एमी ही संस्थाओं अंग्रेजी के एस ही तुलनात्मक विवेचनों और विलियम जोन्स जैसे व्यक्तियों के प्रयास इन कार्यों के प्रेरणा स्रोत कहे जा सकते हैं। द्विवेदी जी का शास्त्रीय पक्ष संस्कृत काव्यशास्त्र के सन्निकट होते हुए भी अंग्रेजी आलोचना से प्रभावित अवश्य ही था। अतएव वे अंग्रेजी आलोचना और पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित प्रान्तीय भाषा के गौरव को भी दृष्टि से ओझल नहीं कर सके। फलत उन्होंने बंगला और मराठी को भी महत्व प्रदान किया। उनका भारतीय सिद्धान्तों के प्रति श्रद्धालु होना उन्हें छाया वाद के प्रति उपेक्षा भाव वाला बनाने लगा। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी की प्रेरणा एवम् मार्ग निर्देशन में हिंदी कविता कामिनी ने पहली बार समर्थ भाव से अपने रूप और प्रयोगों का नवीन संस्कार किया।[2] अतएव इस काय पर संस्कृत के सैद्धांतिक पक्ष का प्रभाव माना जा सकता है। इस युग का सैद्धान्तिक पक्ष संस्कृत काव्यशास्त्र के रस अलंकार आदि सम्प्रदायों की छाया में बढ़ रहा था और साथ ही उस पर अंग्रेजी आलोचना की व्याख्यात्मक और व्यंग्यात्मक पद्धति का भी प्रभाव था।

द्विवेदी युग–संस्कृत काव्यशास्त्र के परिपार्श्व में—

द्विवेदी जी ने मानस में यद्यपि युग धर्म और सुधारवादी नैतिकता को स्थान दे रखा था किंतु इससे वे अतीत की अवस्थाओं और सांस्कृतिक आधार से विमुख नहीं हुए।[3] मुक्तक गीत काव्य से प्रबन्ध और महाकाव्य को श्रेष्ठतर मानना

१—डॉ० वेंकट शर्मा–आधुनिक हिंदी साहित्य में समालोचना का विकास पृष्ठ १८५–१८७

२—डा० रमाशंकर तिवारी–प्रयोगवादी काव्य धारा पृष्ठ ४

३—पण्डित नन्ददुलारे वाजपेयी–आधुनिक हिन्दी साहित्य द्वितीय संस्करण पृष्ठ १२

ास उदाहरण है। ये शुभता और शुचिता के पुजारी थे। 'कवि कर्त्तव्य निरूपण' नामक निबन्ध में इन्होंने क्षेमेन्द्र के विचारों का स्पष्टीकरण किया है।

अम्बिका दत्त व्यास ने गद्य काव्य मीमांसा में साहित्य दर्पण कार के आधार पर कथा और आख्यायिका का विशद विवेचन किया।[1] सेठ कन्हैयालाल पोद्दार ने कवि और काव्य[2] में संस्कृत शास्त्रीय सिद्धान्तों के अनुकूल कवि और काव्य की रूप रेखा प्रस्तुत की। द्विवेदी सुधाकर का हिन्दी साहित्य के आधार पर साहित्य को काव्य घोषित करता है। श्यामसुन्दर दास जी ने नाट्य शास्त्र निबन्ध दस रूपक की मान्यताओं को प्रतिपादित किया है। इस युग में प्राचीन पद्धति की टीकाएँ भी प्राप्त होती हैं।

टीकाएँ—

आलोच्यकाल में सूर, तुलसी केशव बिहारी भूषण और मतिराम के ग्रन्थों की टीकाओं का प्राधान्य रहा है लाला भगवान दीन और रत्नाकर जी इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। सूर पंच रत्न बिहारी बोधिनी केशव कौमुदी प्रिय प्रकाश प्रभृति ग्रन्थ इसके उदाहरण है। द्विवेदी जी ने सन् १८६१ में पण्डित राज जगन्नाथ की पुस्तक भामिनी विलास का अनुवाद प्रस्तुत किया। सालिग्राम शास्त्री ने भी साहित्य दर्पण की टीका प्रस्तुत की जगन्नाथ दास कृत बिहारी रत्नाकर इस पद्धति का सुन्दर चित्र प्रस्तुत करता है।

काव्य के विभिन्न अंगों के विवेचन के साथ काव्यशास्त्र का गहरा सम्बन्ध बना हुआ रहा। फिर भी आलोचना का माध्यम तक कभी-कभी अंग्रेजी बनी रही। द्विवेदी जी की कालिदास की निरंकुशता की आलोचना करते हुए लिखा गया, 'यू कन क्रीटीसाईज इट। योर क्रीटीसिज्मविल आफ्टर ओल बिकम द ग्रेट ओसटकल ।'[3]

१—सन् १८७७ की काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका पृष्ठ ५३

२—सरस्वती–सन् १९०१–पृष्ठ ३२८

३—डा० भगवत स्वरूप मिश्र हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास–पृष्ठ २४८

सम्कृत शास्त्रीय प्रणाली के अनुकूल भानु कवि का काव्य प्रभाकर प्रकाश म आया। इसी भाति मिश्र ब धुआ का–सुखदेव बिहारी और प्रताप नारायण मिश्र का लिखा हुआ ग्र थ भी गुण अलकार रीति विवेचन आदि की दृष्टि स उल्लेखनीय है। हरदेव प्रसाद ने भी इसम सहयोग दिया। उन्होंने पिगल व छन्दपयानिधि भाषा, कन्हैयालाल मिश्र न पिगल सार, बल्देव प्रसाद निगम न साभालकार और राम नरेश त्रिपाठी ने पद्य प्रबोध तथा हिन्दी पद्य रचना नामक पुस्तक लिखी। इन पुस्तका म छन्द शास्त्र को विवेचना का विषय बनाया। इसी भाति अलकार और रस के क्षेत्रों मे काव्य प्रकाश अलकार प्रबोध हि दी का यालकार भाषा भूषण और नव रस आदि उल्लेखनीय हैं।[1]

आलोचना शैली—

कवियो की भाषा शैली पर सस्कृत काव्य शास्त्रीय पदावली का प्रभाव परिलक्षित होता है। यथा व रस, अन्त करण, भाव, प्रभृति शब्दो का प्रयोग करत रहत हैं। जसे कवियो का यह काम है कि वे जिस पात्र अथवा जिस वस्तु का वर्णन करते है उसका रस अपने अन्त करण म लेकर उसे ऐसा शब्द रूप देते हैं कि [2] एवम् [3] अन्त करण की वृतियो के चित्र का नाम कविता है। नाना प्रकार क विकारो के योग स उत्पन्न हुए मनोभाव जब मन म नहीं समाते तब वे आप ही मुख क माग से बाहर निकलने लगते है।[3]

इसी युग से भारतीय दृष्टिकोण स की गई आलोचना की आलोचना को आलोचका न मुक्त कण्ठ स सराहा है।—

"शुद्ध भारतीय रूप म समालोचक ने किसी पद या प्रबन्ध के अन्तगत रस, अलकार आदि सस्कृत क समालोचका की भाति विवेचना की है। यथा उपमानों की आन द देना का वर्णन करके कवि ने अप्रस्तुत प्रशसा द्वारा राधा क श्रृगारिक चेष्टाओं का विरह म द्युतिहीन और मद होना व्यजित किया है।"[4]

१—डा० उदयभानु सिंह–महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग।
२—रसज्ञ रजन पृष्ठ ५३
४—वही–पृष्ठ ५३ से ६७
३—डा० उदयभानु सिंह–महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग–पृष्ठ २५६

द्विवेदी जी के काव्य म चमत्कार का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। यह धारणा आचार्य कुन्तक के अनुकूल है। उन्होंने चमत्कार को आवश्यक माना है। और उसके अभाव म आनन्द का निषेध घोषित किया है।[१]

पण्डित पद्मसिंह शर्मा ने भी वक्रोक्ति के महत्व को नाम्नाक्त रूप म स्वीकार किया है। इन्होंने वक्रता को रस की जान और रस की खान कहा है।[२]

जगन्नाथ प्रसाद ने काव्य का प्राण परम्परागत सभी काव्य तत्वों के सम्मिलित स्वरूप को घोषित किया है। इन तथ्यों के होते हुए भी यह युग अंग्रेजी प्रभाव से अछूता नहीं रह सका है।

द्विवेदी युग-अंग्रेजी प्रभाव—

अब तक अंग्रेजी शासन और शिक्षा के कारण प्राचीन के प्रति प्रतिक्रिया होने लगी थी और सामाजिक बुद्धिवाद की ओर बढ रहा था। उपयोगिता वाद महत्ता प्राप्त कर रहा था। अतएव दृष्टिकोण म परिवर्तन आना आलोचना का प्रौढ़तर होना स्वाभाविक और आवश्यक था। काव्य धाराओं का मार्ग स्वयं भी आलोचना करने लगी। अंग्रेजी के यथार्थ चित्रण ने रीतिकालीन प्रवृत्ति की हीनता को प्रकट कर दिया।[3] अंग्रेजी के समान इस युग म भी पफलेटियस जैसा संघर्ष चलता रहा। द्विवेदी जी और अयोध्या प्रसाद खत्री की आलोचनाएं इसका उदाहरण है। सन् १९०१ म बाबू श्यामसुन्दर दास ने हिन्दी भाषा के संक्षिप्त इतिहास म बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री के कार्यों का उल्लेख नहीं किया था। यह खत्रीजी को बुरा लगा। आचार्य द्विवेदी जी ने भी अपनी हिन्दी भाषा और उसका साहित्य शीर्षक लेख जब लिखा तो खत्री जी का नाम नहीं लिया। परिणाम यह हुआ कि आपस म छोटी-छोटी बातों पर नुक्ता-चीनी होने लगी। अनस्थिर शब्द को लेकर भी बहुत वाग्विवाद चला। अन्त म बाबू बालमुकुन्द गुप्त ने द्विवेदी जी से क्षमा चाही और द्विवेदीजी ने उन्हें गले से लगा लिया। ऐसा ही वाद विवाद विभक्तियों को लेकर भी चला। पण्डित जगन्नाथ प्रसाद पण्डित अम्बिका प्रसाद

१—सचयन-पृष्ठ ६६-६७

२—बिहारी की सतसई-पृष्ठ २१७

३—डा० श्यामसुन्दर दास-हिन्दी साहित्य (१९४४) पृष्ठ १६१-६२

और गोविंद नारायण आदि विभक्तियों को शब्दों के साथ जोड कर लिखना चाहते थे। आचार्य शुक्लजी लाला भगवान दीन और बाबू भगवान दास इसके विरोधी थे। आचार्य द्विवेदी यथा इच्छा और आवश्यकतानुसार कार्य करने के पक्षपाती थे। इन्होंने आलोचना में तुलनाओं द्वारा और भी प्रौढता लाने का प्रयत्न किया।

तुलनात्मक पद्धति—

इसी युग में तुलनात्मक आलोचना और एक कवि को दूसरे से छोटा बडा सिद्ध करने की प्रवृत्ति पाई जाने लगी। अब आलोचना में तुलना को उल्लेखनीय स्थान दिया जाने लगा। भानु कवि ने काव्य प्रभाकर में अंग्रेजी के अलंकारों को भी स्थान दिया। साहित्यिक विधाओं की भी तुलनायें की जाने लगी। गोपाल राम गहमरी का नाटक और उपन्यास इसका साक्षी है। कालीदास और शेक्सपीयर (मनोहरलाल श्रीवास्तव-विरचित) भी इसका उदाहरण है। उस काल के आलोचकों ने गवेषणात्मक समालोचना को भी स्थान दिया। आलोचक यथा सम्भव कवियों की आलोचना करते और ऐतिहासिक आलोचना को भी दृष्टि पथ पर रखते थे। छन्नु लाल द्विवेदी ने कालिदास और शेक्सपीयर नामक पुस्तक लिखी। शुक्लजी की आलोचनाओं में तुलनात्मक स्वरूप के सुंदर रूप का चित्र पाया जाता है। यहाँ यह कहना अनुपयुक्त न होगा कि सूर और तुलसी आदि की तुलनायें ग्रियसन ने ही अपने इतिहास में कर दी थी।[१]

टीकाओं में भी अंग्रेजों के द्वारा बताये गये पाठालोचनों को महत्व मिला। अब अंग्रेजी पुस्तकों के सम्मान भूमिकाओं को स्थान दिया जाने लगा। शुक्लजी के जायसी ग्रंथावली, तुलसी ग्रंथावली और भ्रमर गीत सार, प्रभृति ग्रंथ प्रमाण स्वरूप देखे जा सकते हैं। अंग्रेजों ने संस्कृत के प्रति आकर्षण उत्पन्न किया था। और हिंदी वालों ने उसे अपना लिया। अंग्रेज कवियों से भी भारतीय कवियों की तुलनाएँ की गई।

काव्य के विभिन्न अंगों—नाटक उपन्यास और कविता आदि की आलोचनाएँ की गई। काव्यशास्त्र के विवेचन में भी पाश्चात्य समीक्षा की व्याख्यात्मक

१—किशोरीलाल गोस्वामी कृत-ग्रियसन के इतिहास का अनुवाद तुलसी का विवेचन।

प्रणाली ने प्रभूत्व जमा लिया अंग्रेजी आलोचना के प्रभाव स्वरूप हिन्दी आलोचना में गाम्भीर्यता प्रादुर्भाव हुआ। श्री सूर्य नारायण दीक्षित लिखित सरस्वती में प्रकाशित शेक्सपीयर की आलोचना उदाहरण स्वरूप पढ़ी जा सकती है। द्विवेदी जी ने स्वयम् बेकन के ३६ निबन्धों का बेकन विचार रत्नावली नाम से अनुवाद किया। इन्होंने नायिका भेद[1] और कवि कर्तव्य[2] में नवीन युग की ओर संकेत करते हुए नायक–नायिका विवेचन की भर्त्सना सी की। उन्होंने कहा—

इन पुस्तकों के बिना साहित्य की कोई हानि न होगी। उल्टा लाभ ही होगा। इनके न होने ही से समाज का कल्याण है। इनके न होने ही से नववयस्क युवाजनों का कल्याण है। इनके न होने ही से इनके बनाने और बेचने वालों का कल्याण है।'[3]

हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रंथ—

अंग्रेज आलोचकों और भावक सज्जनों ने हिन्दी साहित्य के इतिहास लिखने की पद्धति को भी प्रभावित किया। मिश्र बन्धुओं ने इसमें सहयोग दिया।[4] प्रेम चन्द जी ने उपन्यास रचना में अंग्रेजी आलोचना सिद्धान्तों के अनुकूल उपन्यास के तत्वों की विवेचना की। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने विश्व साहित्य में साहित्य को अंग्रेजी के लिटरेचर का पर्याय माना।

हिन्दी जैन साहित्य का इतिहास[5] व अकबर के राजत्व काल के कवि[6] में ऐतिहासिक दृष्टिकोण को अपनाया गया।

अंग्रेजी शिक्षा पद्धति में उत्पन्न और विकसित शोधकार्य ने भी इस युग में महत्वपूर्ण कार्य किया। डॉ० पिताम्बर दत्त बड़थ्वाल डा० हीरालाल, डा० श्याम

१—सरस्वती–सन् १९०१ पृष्ठ १५
२—वही–पृष्ठ २३३
३—रसज्ञ रजन पृष्ठ १६
४—माधुरी भाग १ खण्ड १ पृष्ठ ३५४
५—नाथुराम प्रेमी सवत् १९७३
६—मन्नन द्विवेदी–सवत् १९६० विक्रम।

सुन्दर दास, मिश्र बन्धु भगवान दीन जी और शुक्ल जी आदि की समीक्षाएँ इसके उदाहरण हैं। इस समय तक मूल्यांकन की अपेक्षा जानकारी शोध ग्रंथों में अधिक रही। कारण भी स्पष्ट ही है। आज तो सामग्री के उपलब्ध हो जाने से मूल्यांकन सम्भव है किन्तु उस काल तक आधार भूत सामग्री ही अधिकांशत अनुपलब्ध थी। अतएव उपरिलिखित विद्वानों ने सामग्री प्रदान कर हिन्दी साहित्य की प्रशंसनीय सेवा की है। तत्कालीन पत्र पत्रिकाओं ने भी इसमें सहयोग दिया।

पत्र-पत्रिकाएँ और अंग्रेजी प्रभाव—

इस युग की पत्रिकाओं पर अंग्रेजी प्रभाव परिलक्षित होता है। पत्रिकाओं के उद्भव और उनकी भाषा और विवाद पर पहले लिखा जा चुका है। अब तो यह स्पष्ट प्रतीत होने लगा है कि इस समय के कई विषय और उनकी भावनाएँ भी अंग्रेजी से प्रभावित थी।[१] सौन्दर्य विवेचना और विश्लेषणात्मक तथा तथ्य निरूपणात्मक शैली भी अंग्रेजी के अनुकूल है।

इस युग तक हिन्दी आलोचना का अंग्रेजी से इतना निकट सम्पर्क हो गया था कि मिश्र बन्धुओं के हिन्दी नव रत्न की आलोचना मोडर्न रिव्यु में छपी, और उसे युगान्तर कारी बताया गया। आज का आलोचक द्विवेदी जी की सरस्वती की पत्रिकाओं को अंग्रेजी के समकक्ष रखने की आकांक्षा प्रगट करता है[२]। उसकी धारणा है कि द्विवेदी जी अंग्रेजी आलोचकों के समान एवं श्रेष्ठ आलोचक थे।

अलंकार विवेचन और अंग्रेजी प्रभाव—

आचार्य द्विवेदी जी ने नूतन अलंकार सृष्टि का आदेश दिया। उनका मत था कि भारती को नवीन आभूषणों से अलंकृत करने में हमें संकोच नहीं करना चाहिये। फिर क्या कारण कि बेचारी भारती के जेवर वही भरत, कालीदास, भोज इत्यादि के जमाने के ज्यों के त्यों रहे। इस नवीन सुझाव पर अंग्रेजी का प्रभाव दिखाई देता है।

१—समालोचक सितम्बर, १९०२

२—डा० रविन्द्र सहाय वर्मा—पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव।

'ख' भाग

द्विवेदीजी संस्कृत प्रभाव—

सन् १८९६ में नागरी प्रचारिणी पत्रिका में द्विवेदी जी ने कुमार सम्भव की भाषा विषयक लेख प्रस्तुत किया। जिसका अंतिम भाग उत्तराध हिन्दोस्तान में प्रकाशित हुआ। इससे इनकी संस्कृत साहित्य की ओर रुचि का परिचय प्राप्त होता है। यही क्या इन्होंने १८९७ से १८९८ तक कालीदास के ऋतु संहार की भाषा पर कई लेख लिखे। इससे ज्ञात होता है कि वे आलोचना क्षेत्र में संस्कृत के उपजीव्य ग्रन्थों के साथ आये। साथ ही वे हिन्दी भाषा का उत्थान चाहते थे और सम्भवतः इस कारण से उन्होंने संस्कृत कवियों की भी भाषा की ओर अधिक ध्यान दिया। सन् १९०१ में उन्होंने हिन्दी कालिदास की आलोचना प्रकाशित करवाई। इस प्रकार उन्होंने हिन्दी में कालिदास की आलोचनाएँ प्रकाशित कीं। कालिदास के रघुवंश और मेघदूत भी उनकी दृष्टि से बच नहीं सके। इसका उद्देश्य संस्कृत कवियों को प्रकाश में लाने का था। उन्होंने संस्कृत की आलोचना शास्त्रीय माप दण्डों के आधार पर की। उन दण्डों के आधार पर नैषिध चरित् के सर्गों की लम्बाई को हेय बताया। इसी भाँति वे लिखते हैं कि बिल्हण ने विक्रमांक देव चरित्र को भी वैदर्भी रीति में लिखा।[1] उन्होंने १९०३ में नाट्य शास्त्र का प्रणयन किया जो संस्कृत का यशास्त्र के अनुकूल है। रसज्ञरंजन में वे छंद मात्र को ही काव्य नहीं मानते। उन्होंने उसमें अर्थ सौरस्य को प्राण माना है। उनके मत से रस ही काव्य का प्रभाव अङ्ग है। नाट्य शास्त्र और रसज्ञरंजन की रचनाएँ संस्कृत आलोचना पद्धति पर आश्रित हैं।[2]

उनके आलोचनात्मक माप दण्ड पर काव्य प्रकाश साहित्य दर्पण और ध्वनि आलोक की छाया है। वे औचित्य को बहुत महत्व देते थे और सामाजिक

१—विक्रमांक देव चरित चर्चा–पृष्ठ ७४

२—डा० उदयभानु–आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग पृष्ठ ११९।

म भी सहृदयता को आवश्यक मानते थे। उनके कवि बनने के मार्ग में साधन, कवि और कविता और अन्य साहित्य सम्बन्धी निबन्ध संस्कृत के काव्य विमर्श नामक ग्रन्थ से प्रभावित दिखाई देते हैं। उनके सिद्धान्त संस्कृत काव्यशास्त्र से अनुप्राणित थे। उन्होंने संस्कृत काव्य शास्त्र के अनुकूल हिन्दी में भी लक्षण ग्रन्थों के निर्माण का आदेश दिया है। उन्होंने रसज्ञ रंजन नामक संकलन में शास्त्रीय आधार का समर्थन किया है। भारतीय चित्रकला नामक निबन्ध में इन्होंने आनन्द को कला का चर्मोद्देश्य माना है।[1] वे कवियों को आदेश देते हैं कि उनके काव्य में स्वभाविकता का समावेश होना चाहिये। बहुधा वे स्थान-स्थान पर संस्कृत की उक्तियों से अपना समर्थन करते चलते हैं।[2] वे अलंकारों में श्रद्धा अलंकारों को शास्त्रानुकूल निम्न स्थान ही देते हैं।[3] उन्होंने टीका पद्धति के अनुकूल श्लोक लिख कर उनके अर्थ भी दिये हैं। कविता की परिभाषा में यह प्रभाव और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है।

कविता की परिभाषा—

द्विवेदी जी की कविता की परिभाषा में भ्रान्ति और विस्मृति शब्दों के प्रयोग पर पण्डित राज जगन्नाथ के विचारों की गन्ध आती है।[4] इन्होंने संस्कृत के चमत्कारवादी सम्प्रदायों के अनुकूल कहा है—शिक्षित कवि की उक्तियों में चमत्कार का होना परमावश्यक है। चमत्कार अलंकार मूलक हो सकता है—वह अभिव्यक्ति मूलक एवम् औचित्य मूलक भी हो सकता है। इसकी पुष्टि उन्होंने क्षेमेन्द्र के उदाहरण प्रस्तुत करके की है।[5]

साथ ही उनकी मान्यता है कि अंग्रेजों का अन्धानुकरण हेय है। अंग्रेजी के कला-कला के लिये वाले सिद्धान्त की प्रतिक्रिया भी दिखाई देती है। केवल कविता-कविता के लिये करना वे एक तमाशा मानते हैं।[6]

१—विक्रम चरित्र चर्चा-पृष्ठ ५६ और आलोचनाजली प्रथम निबन्ध
२—डॉ भगवत स्वरूप मिश्र—हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास पृष्ठ २५१
३—वही पृष्ठ २५२
४—रसज्ञ रंजन पृष्ठ ५८
५—संचय-पृष्ठ १०० १०१ ९६ और ९७
६—रसज्ञ रंजन-पृष्ठ १२

काव्य की परिभाषाए—

उन्होने काव्य को मगलकारी माना है।[1] साथ ही व त्यागभक्ति पर भी बल देते रहे हैं।[2] और उसे आनन्द का कारण मानते हैं।[3] वे आलोचना करते समय संस्कृत ग्रथो के उद्धरण भी देते चलते हैं। हिन्दी कालिदास की आलोचना में उन्होंने वामन दत्ता का श्लोक उद्धृत किया है। इसी भाति कुमार सम्भव के प्रारम्भ में वामन दत्ता, ऋतु सहार के मुख पर श्री कण्ठ चरित एवम् मेघदूत और रघुवंश के प्रारम्भ में शृगार तिलक के श्लोक प्राप्त होते हैं। हिन्दी शिक्षावली तृतीय भाग की समालोचना का प्रभाव भर्तृहरी के कथन से किया गया है। टीकाएँ लिखते समय उनका उद्देश्य संस्कृत महत्ता का प्रतिपादित करना था। उनकी मान्यता थी कि संस्कृत ग्रथो की समालोचना हिन्दी में होने से ही लाभ है कि समालोचित ग्रथो का साराश और उनके गुण दोष पढ़ने वालो को विदित हो जाते हैं। ऐसा हो जाने से सम्भव है कि संस्कृत में मूल ग्रथो को देखने की इच्छा से कोई उस भाषा का अध्ययन करने लगे। अथवा उनके अनुवाद को देखने की अभिलाषा प्रकट करे अथवा यदि कुछ भी न हो तो संस्कृत का प्रेम मात्र उनके हृदय में अकुरित हो उठे। इसमें भी थोड़ा बहुत लाभ अवश्य ही है।[4]

लोचन शैली—

द्विवेदीजी का लोचन शैली का अनुसरण करना तो अग्रेजी प्रणाली के अनुकूल ही माना जायगा। इस पद्धति में अन्त साक्ष्य और तुलना का भी स्थान दिया गया है। यहा यही कहना उपयुक्त है कि इस शैली में भी वे विषय की दृष्टि से संस्कृत ग्रथो पर आधारित रहे हैं। यथा—भारवी को लिखना था महाकाव्य। पर कथानक इन्होने ऐसा चुना जिसके लिये विषय विस्तार के लिये यथेष्ट सुभिता न था।[5]

१—समालोचना समुच्चय-हिन्दी नवरत्न पृष्ठ २२८
२—रसज्ञ रजन-पृष्ठ ५०
३—वही-पृष्ठ २६
४—विक्रमाक देव चरित चर्चा-पृष्ठ १
किरातार्जुनीय की भूमिका पृष्ठ २७ और ३०

पारिभाषिक शब्दावली—

द्विवेदीजी का आलोचना के क्षेत्र में आगमन संस्कृत के अनुदित ग्रंथों के द्वारा ही हुआ। द्विवेदी जी ने पारिभाषिक शब्दावली का समुचित उपयोग किया है। जैसे जगद्धर भट्ट की स्तुति कुसुमांजलि में लिखा है कि जिनके हृदय कोमर हो चुके है अर्थात् अलंकार शास्त्र की भाषा में जो सहृदय हैं उन्हीं को सरस काव्य के आकलन से आनन्द की यथेष्ट प्राप्ति हो सकती है।[1] उन्होंने शास्त्र विषयक निबंधों के अतिरिक्त अपने को कहीं निबंध का कर्ता नहीं माना है।[2] उन्होंने अपने को बचा कर विषय का प्रतिपादन किया है। छन्द भी उनकी दृष्टि से ओझल नहीं पाये हैं।

छन्द—

द्विवेदी जी ने द्रुत विलम्बित मन्दाक्रान्ता और उपेन्द्रवज्रा प्रभृति वृत्तों को अपनाया। और घोषणा भी की कि दोहा, चौपाई सोरठा घनाक्षरी, छप्पय और सवैया आदि का प्रयोग हिन्दी में बहुत हो चुका। कवियों को चाहिये कि यदि वे लिख सकते हैं तो इनके अतिरिक्त और भी छन्द लिखें।[3] इस परिवर्तन की प्रेरणा अंग्रेजी के ब्लैक वर्स से मिली होगी और जब संस्कृत में भिन्न तुकान्त छन्द विद्यमान थे ही तब इस नवीन शैली को अपनाने में संस्कृत के आधार ने भी सहयोग दिया होगा।

इस प्रकार जहाँ द्विवेदी जी संस्कृत काव्य शास्त्र से प्रभावित थे वहाँ वे अंग्रेजी की नवीनता को भी स्वीकार करते थे। आगामी विवेचन इसे स्पष्ट कर देगा।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है द्विवेदीजी ने कालिदास की आलोचनाएँ प्रारम्भ की। इस मनोवृत्ति पर विलियम जोन्स द्वारा कालीदास को दी गई महत्ता का प्रभाव परिलक्षित होता है। उनका भाषा विषयक विवेचन भी अंग्रेजी प्रभाव से

१—सरस्वती अगस्त १९२२

२—डॉ० उदयभानुसिंह—आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग पृष्ठ १५८

३—रसज्ञ रंजन—पृष्ठ ३

अछूता नहीं रह सका है। भाषा के सुधार की ओर भी ध्यान अंग्रेजी के प्रेरणा से लाभान्वित हो रहा था। भाषा शुद्धि के आन्दोलन में द्विवेजी ने प्रमुख हाथ बढाया।

कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता में पुरातन सामग्री को आधुनिक रीति से देखने का प्रयत्न किया गया है। अबतक अंग्रेज साहित्य बन्धुओं ने संस्कृत की महत्ता को प्रतिपादित करने का स्तुत्य प्रयास कर ही लिया था, अतएव हिन्दी वाले भी इस ओर आकृष्ट हुए और द्विवेदी जी ने संस्कृत के ग्रंथों के उद्धार और विश्लेषण की महान सेवा की।

वे छन्दों, अलकारों और व्याकरण निबन्धों को आलोचना के विषय बनाते थे किन्तु वे शास्त्रीय नियम पालन मात्र का ही कविता नहीं मानते थे। इस दृष्टि से उन्होंने रीतिकालीन काव्य की बहुत आलोचना की।[१]

उनकी हिन्दी शिक्षावली भाग तीन की समालोचना उन्हें अंग्रेजों के प्रति दृष्टिकोण को बताती है।[२] उन्होंने सिद्ध कवियों के लिये छन्द नियम अनिवार्य नहीं माने हैं। किन्तु साधारण कवियों के लिये उसे आवश्यक समझा है। इससे ज्ञात होता है कि उन्होंने संस्कृत और अंग्रेजी कवियों के सिद्धान्तों का सामंजस्य करने का प्रयत्न किया। उन्होंने पदान्त में तुक के अभावों को भी स्वीकार किया। यह स्वीकारोक्ति इस बात की परिचायक है अंग्रेजी की ब्लेंकवर्स ने सम्भवत उन्हें संस्कृत वर्णवृत्तों की ओर आकृष्ट होने में सहायता प्रदान की। अंग्रेजी आलोचना के समान उन्होंने मनोरंजन और उपदेश दोनों को ही काव्य में आवश्यक माना।[3] उन्होंने कविता के विषय का भी विस्तार किया। उनकी मान्यता थी कि कुछ भी विषय व्यक्ति या स्थान कविता में स्थान प्राप्त कर सकते हैं। वे यह चाहते थे कि संस्कृत शास्त्रकारों का अध्ययन कर नवीन और देश कालानुसार काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों का निर्माण हो। द्विवेजी ने गद्य और पद्य की भाषा को मिटा कर आतुकान्त

१—रसज्ञ रंजन-पृष्ठ ११ एव साहित्य सन्देश पृष्ठ ३०१ सन् १६३६

१—डा० भगवत स्वरूप मिश्र-हिन्दी आलोचना उद्‌भव और विकास पृष्ठ २६८ एव सरस्वती सन् १६०१ पृष्ठ १६५।

3—Horace-"The aim of poetry is to instruct and delight"-

कविता को मन्त्र देने की या कही। इस म य अग्रेजी प्रभाव स अछूत नहीं रह सके हैं। भाषा भेद का मिटाने की धारणा पर वर्डसवर्थ की मान्यताओं का प्रभाव प्रतीत होता है।[1] रसग्रजन म उ होंने इसका प्रतिपादन किया है। डा० माचवे वाजपेयी का कथन है कि यह भाषा जीवन म ओतप्रोत थी जिसके कारण यह अग्रेजी भावो और शैली के प्रभाव स अवश्य ही प्रभावित हुई। अग्रेजी आलोचकों के समान उन्होंने पुस्तकाकार आलोचना की शैली का सरल बनाया। काव्य क विभिन्न अगो का अ ग्रेजी के समान विवेचन करना प्रारम्भ किया। उन्होंने मिल्टन के समान सादगी गाम्भीर्य और जोश को कविता म अनिवार्य माना। उन्होंने कविता के लिए पोयट्री शब्द का और पद्य के लिए वर्स का प्रयोग किया। यह शब्द निसन्देह इस बात के द्योतक हैं कि उन्होंने अ ग्रेजी मान्यताओं के आधार पर हिन्दी की आलोचना को समृद्ध बनाने का प्रयत्न किया। अन्त साक्ष्य के आधार पर कवियों का जीवन लिखने का प्रयत्न भी विदेशी देन ही था। पुस्तकों की प्रामाणिकता प्रतिपादित करने म और शोध कार्य को महत्ता देने म भी अग्रेजी काव्यशास्त्र की प्रेरणा स्वरूप स्वीकार किया जा सकता है।

यह तो पहले कहा जा चुका है कि नाट्य शास्त्र और रसज्ञ रजन के रचनाएँ आचार्य पद्धति पर आधृत है। किन्तु उनम भी अग्रेजी आलोचना के समान व्यावहारिक पक्ष को महत्ता दी गई है। उनकी मान्यता थी कि छन्द अलकार, व्याकरणादि की गौण बातें हुई उन्हीं पर जोर देना अविवेकता का प्रदर्शन के सिवाय और कुछ नहीं।[2] उन्होंने तो *नाट्यकला के उद्देश्य, 'मनोरंजन और उपदेश* दोनो ही माने हैं।[3] इस पर होरेस का प्रभाव परिलक्षित होता है साथ ही सस्कृत साहित्य की शुद्धता और रस को ब्रह्मानन्द सहोदर कहने की धारणा की भी पुष्टि होती है। इस प्रकार हम कह सकते है कि अ ग्रेजी नियमों ने उन्हें भारतीय शास्त्रीय स्वरूप को अपनाने म बहुत कुछ सहयोग दिया।

जसा कि उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाते हैं द्विवेदी जी ने कविता को नायक नायिका रस और अलकार एव प्राचीन विषयो तक ही सीमित नहीं रखा।

१—नाट्तिलोपालसवडसवर्थ के काव्य सिद्धान्त
२—विचार विमर्श—पृष्ठ ४८
३—नाट्यशास्त्र—पृष्ठ ५७

उनकी मान्यता थी कि यमुना के किनारे कलीकौतूहल वर्णन हो चुका है।[1] अतएव यथार्थ और पवित्र जीवन का चित्रण होना चाहिए। उन्होंने तो कहा व्यंग्य चित्र भी प्रकाशित किये जिससे काव्य विषय का विस्तार हुआ और उन पर अंग्रेजी की व्यंग प्रणाली का प्रभाव दिखाई देने लगा।

कविता कर्तव्य नामक शीर्षक के अंत में उन्होंने निम्नांकित निष्कर्ष प्रदान किये।–' यदि आजकल की कविता में नीचे लिखे गुण हों तो संभवत वह लोकप्रिय होगी।

(क) कविता में साधारण लोगों की अवस्था, विचार और मनोवृत्तियों का वर्णन हो।

(ख) उसमें धीरज, साहस, प्रेम और दया आदि गुणों के उदाहरण हों।

(ग) कल्पना सूक्ष्म और उपमाधिक अलंकारों से गूढ न हो।

(घ) भाषा सहज स्वाभाविक और मनोहर हो।

(च) छन्द सीधा, परिचित सुहावना और वर्णन के अनुकूल हो।[2]"

वर्डसवर्थ ने छन्द रूढि का बहिष्कार किया। वे भाषा की तड़क–भड़क के विरोधी थे। और उन्होंने ग्रामीण जीवन की सादगी को महत्ता दी थी। वे भावसंवलना सर्वजनीनता, भाव प्रकटीकरण, पटुता और स्वाभाविक भाषा शैली के समर्थक थे।[3,4] अतएव द्विवेदी जी के कथन पर अंग्रेजी का वर्ड्सवर्थ का प्रभाव दिखाई देता है। उपरिकथित विषय विस्तार की भावना और संस्कृत के नियम में पर जाने की भावना पर वर्डसवर्थ के प्रभाव के साथ एक और अन्य तत्व उल्लेखनीय है। द्विवेदी जी को इन बातों को अपनाने में सामयिक परिस्थितियों और रीतिकालीन अति शृंगारिता तथा जीवन के विलासमय चित्रण की निकटता ने भी सहयोग दिया।

१—रसज्ञरंजन पृष्ठ ११

२—डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा–पाश्चात्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव पृष्ठ ९३–१०० एवं महावीर प्रसाद द्विवेदी रसज्ञरंजन–पृष्ठ १९

३—वर्डसवर्थ थियोरी आफ डिक्शन–पृष्ठ २५,९ और ३४

४—शान्तिगोपाल–वर्डसवर्थ के काव्यसिद्धान्त–पृष्ठ १,३,४

अंग्रेजी आलोचना के प्रभाव स्वरूप हिन्दी में भी ऐतिहासिक विवरणात्मक ग्रंथों का निर्माण प्रारम्भ हुआ था। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की सेवाएँ इस दृष्टि से सराहनीय हैं। इसी में साहित्यिक और ऐतिहासिक सामग्री के समन्वय का प्रयास किया गया था।

द्विवेदी जी ने अंग्रेज महानुभावों को हिन्दी समृद्ध बनाने की बातें भी लिखीं। उन्होंने आर० पी० ड्यूहर्स्ट को एक पत्र में लिखा कि—

'हमारे देशबन्धु अंग्रेज लोग विविध भाषा सीख कर साहित्य की सेवा करते हैं पर अपनी मातृ भाषा के लिखने की चेष्टा नहीं करते। यह दुर्भाग्य की बात है। क्या ही अच्छा हो जो यदि आप मातृ भाषा विषयक मनुष्य का कर्तव्य या इसी तरह के किसी और विषय पर हिन्दी में एक लेख लिख कर इन लोगों को लज्जित करें। डॉ० ग्रीयर्सन से हमने प्रार्थना की थी उन्होंने शालीनता पूर्वक उत्तर दिया कि हिन्दी में उनकी यथेष्ठ गति नहीं है।[1] इससे ज्ञात होता है कि अंग्रेजों ने हिन्दी भाषा की उन्नति में भी सहयोग दिया।[2]

यह द्विवेदी जी के हिन्दी प्रेम का परिचय है कि वे हिन्दी की सेवा तो अंग्रेजों से चाहते थे किन्तु स्वयं कई बार अंग्रेजी में आये हुए पत्रों पर नोट लिख देते थे। कालान्तर में उन्होंने अपनी इस धारणा में परिवर्तन भी किया। फिर भी उनकी मान्यता थी कि अपनी भाषा की उन्नति से हम परमानन्द होता है। एक ही प्रान्त के रहने वाले लोगों का अंग्रेजी में बातचीत करना भी उन्हें अखरता था। वे तो स्पष्ट लिख देते हैं कि अपनी माँ को निस्सहाय निरुपाय और निर्धन दशा में छोड़ कर जो दूसरे मनुष्य की माँ की सेवा करता है उसे प्रायश्चित करना चाहिये।[3]

१—६ ३ १९०७ को लिखित द्विवेदीजी के पत्र संख्या ६४७ काशीनागरी प्रचारणी सभा कार्यालय।

२—आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग पृष्ठ ५९

३—हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आनतुर अधिवेशन में स्वागताध्यक्ष पद से द्विवेदी जी का भाषण—पृष्ठ २३

उनकी व्यावहारिक आलोचना मे वे किसी भी शास्त्रीय सम्प्रदाय को स्थान नही देते हैं। इस प्रकार का प्रतिपादन अंग्रेजी साहित्य के अनुकूल है।

निबन्ध—

द्विवदी जी के कई निबन्ध अंग्रेजी निबन्धो के समान पत्र पत्रिकाओ म प्रकाशित हुए। यही क्या निबन्धो क रूप मे लिखी गई भूमिकाय निश्चित रूपेण अग्रेजी की भूमिका पद्धति से प्रभावित है। रघुवंश, किरातार्जुनीय और स्वाधीनता आदि की भूमिकाये इसकी पुष्टि करती है। इसी भाति पुस्तकाकार निबन्धो का सकलन और उनका तन्त्र अंग्रेजी के निबन्धो के सकलनो स प्रभावित दिखाई देत हैं। इसके साथ ही अंग्रेजी का प्रभाव इनकी पत्रिका म अंग्रेजी से अनूदित किय गय अंशो के द्वारा प्रत्यक्ष प्रकट हो जाता है।

पत्रिका मे अनूदित अंश—

सरस्वती क प्रथम अंक मे ही सिंबलीन-शेक्सपीयर का नाटक का अनुवाद किया गया था। यही क्या प्रति मास यथा सम्भव अंग्रेजी पत्रो स सकलित सामग्री भी इसम प्रकाशित होती थी।[1] इसके साथ ही केरल कोकिल (मराठी), प्रवासी (बङ्गला) और मोडर्न रिव्यु का प्रभाव सरस्वति पर बहुत रहा है।[2] मोडर्न रेव्यू की चित्र प्रकाशन शैली न इन्हें बहुत प्रभावित किया। उपरिवर्णित व्यंग चित्र की प्रेरणा भी इन्ह उससे प्राप्त हुई। चित्रो की कल्पना तो युग सापेक्ष्य है किन्तु व्यंग प्रहार की प्रवृति अंग्रेजी साहित्य की देन है।[3] यहाँ यह भी कहना उपयुक्त होगा कि सरस्वति क कई व्यंग चित्र तो मोडर्न रेयु स ही ले लिय गय प्रतीत होते है। उदाहरण के लिय सरस्वती के शिवाजी—सितम्बर १९०७ और रतिविलाप १९११ क्रमश मोडन रेव्यू के मई और जून १९०७ स लिये गय हैं। द्विवदी जी स्वय प्रसिद्ध पत्रो क अध्ययन करते थे और उनकी अच्छाईयो को अपनाने का भी प्रयत्न करते थे। सावत्सरिक सिंहावलोकन इसका ज्वलत उदाहरण है।[4]

१—रसज्ञ रंजन-२७ से ४०

२—उदयभानुसिंह—आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग पृष्ठ १८३

३—वही-पृष्ठ १८०

४—सरस्वती सख्या १२ भाग ५

निष्कर्ष—

इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि द्विवेदी जी ने संस्कृत और अंग्रेजी दोनों ही काव्यशास्त्रों से ज्ञानराशि प्राप्त की। उन्होंने संस्कृत के अनुकूल जहाँ काव्य का उद्देश्य आनन्द माना वहाँ कविता में सादगी, असलियत और दाप को भी मिल्टन के अनुसार स्वीकार किया।

उनके निम्नांकित कथन इसकी पुष्टि करते हैं—

जो सिद्ध कवि हैं वे चाहे जिस छन्द का प्रयोग करें, उनका पद्य अच्छा ही होता है परन्तु सामान्य कवियों को विषय के अनुकूल छन्द योजना करनी चाहिये।[1]

इस सम्बन्ध में डा० नन्द दुलारे वाजपेयी की धारणा महत्त्वपूर्ण है—द्विवेदी जी और उनके अनुयायियों का आदर्श यदि संक्षेप में कहा जाय तो समाज में एक साहित्यिक माप की ज्योति जगाना था। दीनता और दरिद्रता के प्रति सहानुभूति, समय की प्रगति का साथ देना, शृंगार के लिये विलास वैभव का निषेध ये सब द्विवेदी युग के आदर्श थे।[2] नागरी प्रचारिणी पत्रिका के कई निबन्ध विषय की दृष्टि से संस्कृत ग्रन्थों पर आधारित थे। इसी भाँति सरस्वती के निबन्ध भी प्राचीन भारतीय ग्रन्थों पर आवृत थे। द्विवेदी जी काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों के प्रणयन की आकांक्षा रखते थे। वे चमत्कार और औचित्य के साथ अलंकारों के सदुपयोग के समर्थक थे। काव्य की परिभाषा में उन्होंने भारतीय और मिल्टन की मान्यताओं का समावेश किया। उनकी काव्य की परिभाषा—

'कविता करने में अलंकारों को बलात् लाने का प्रयत्न न करना चाहिये। विषय कथन के झोंक में जो कुछ मुख से निकले उसे ही रहने देना चाहिये।'[3] पर वर्ड्सवर्थ की निम्नांकित परिभाषा का प्रभाव है—

१—रसज्ञ रंजन पृष्ठ २

२—डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र-हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास-

३—रसज्ञ रंजन पृष्ठ ६

"पोइट्री इज दी स्पोण्टेनियस ओवर फ्लो आफ पोवरफुल फीलिंग'[1] इन्होंने अपने कवियों की जीवनियों में डॉ० जोहसन की "लाइब्ज ओफ पोइट्स" से प्रेरणा प्राप्त की होगी।

वे हिन्दी को समुचित आदर प्राप्त करते न देख कर खिन्न भी होते थे। उन्होंने व्यवहारिक आलोचना और व्यंग चित्रों से हिन्दी की उन्नति का प्रयत्न किया। संस्कृत काव्य शास्त्रों के अनुकूल द्विवेदी जी की लेखनी ने महेश शतक जैसे सूक्ति पद्धति के समान लेख प्रदान किये। उन्होंने संस्कृत की खण्डन पद्धति और लोचन पद्धति का भी स्वीकार किया[2],[3] बेकन के निबन्धों के अनुवाद से आपने हिन्दी साहित्य को समृद्ध बनाने का प्रयत्न किया।

अंग्रेजी आलोचना के समान तुलनात्मक और एतिहासिक आलोचनाओं में इन्होंने हिन्दी साहित्य की श्री वृद्धि की। सम्पादक के रूप में उनके द्वारा प्रकाशित व्यंग 'मोडन रिव्यु' का स्मरण दिलाते हैं। द्विवेदी जी ने अंग्रेजी की ब्लैंक वर्स के समान संस्कृत के आधार पर भिन्न तुकान्त छन्दों को अपनाने की आकांक्षा प्रकट की। प्राचीन कृतियों को नवीन दृष्टि से देखने का प्रयत्न किया। भाषा के सुधार की ओर भी इन्होंने ध्यान दिया। 'वर्डसवर्थ के समान गद्य और पद्य के भेद को मिटाने की अभिलाषा भी इनमें थी। काव्य विषय विस्तार का आपने आन्दोलन दिया और अंग्रेजी पढ़े लिखे लोगों में हिन्दी के प्रचार का कार्य किया। इस सम्बन्ध में अंग्रेजों को पत्र लिखे और उन्होंने स्वयं यथा सम्भव अंग्रेजी भाषा में पत्र व्यवहार नहीं किया। ज्ञान वृद्धि की दृष्टि से अंग्रेजी आलोचना के अनुदित अंशों तक को अपनी पत्रिका में स्थान दिया। एतिहासिक और गवेषणात्मक आलोचना को भी इन्होंने समुचित आदर दिया।

उस समय तक हिन्दी का सैद्धान्तिक निरूपण कवि शिक्षा से आगे तथ्य निरूपण की ओर बढ़ रहा था।[4] उसमें अंग्रेजी आलोचना के चरम विकास तक

१—इंगलिश क्रीटिकल एसेज–१६ वीं शदी, पृष्ठ ५

२—कवियों की उर्मिला विषयक उदासीनता में प्रथम प्रकार की और नगद चरित्र की

३—आलोचना में द्वितीय शैली प्राप्त होता।

४—डा० भगवत स्वरूप मिश्र–हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास–पृष्ठ २७३

पहुंचने की आकांक्षा थी। वह चरम विकास तक पहुंचने का राही था, जिसमें लक्ष्य ग्रंथों को विकसित करने और संस्कृत की आधार भित्ति को ग्रहण करने की कामना थी। तत्कालीन आलोचक एक और सुरुचि रस, अलंकार और शास्त्रीय नियमों को महत्त्व देते थे वहीं दूसरी ओर वे यथार्थ जीवन की गहराई तुलना तत्कालीन परिस्थितियों का दिग्दर्शन और साहित्यिक सौन्दर्य आदि को भी महत्व देते थे। वे अपने को तटस्थ रखने का भी प्रयत्न करते थे—विभक्तियों के संघर्ष में द्विवेदी जी का भाग न लेना इसका उदाहरण है। वे तो अपनी भाषा को समृद्ध बनाना चाहते थे और सहयोग उसमें संस्कृत तथा अंग्रेजी दोनों का ही लेते थे। इस लिए कभी किसी साहित्य की विशेषता ग्रहण करते तो कभी किसी की। ध्यान देने योग्य तथ्य यह है कि वे पद्धतियाँ जो दोनों में उभयनिष्ठ थीं अपनी जड़ें गहरी करने लगीं। द्विवेदी जी तो सत्यनिष्ठ और, निर्भीक आलोचक थे। अतएव कई व्यक्ति उनके शत्रु तक बन गये।[1] वे परम्परागत भारतीय समालोचना को श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे और नवीन आलोचना प्रणाली को भी उचित आदर देते थे। जहाँ वे अंग्रेजी पद्धति को अपनाते वहाँ वे पौर्वात्य अध्ययन का भी महत्ता देते थे। उदाहरण के लिये द्विवेदी जी ने दोषों का विवेचन तो परम्परानुकूल किया उसमें तत्कालीन आवश्यकता के अनुसार भाषा दोष परिष्कार पर विशेष बल दिया।[2] इससे यह प्रतीत होता है कि द्विवेदी जी जागरूकता पूर्वक एक ओर जहाँ परम्परा नुयायी हैं वहाँ दूसरी ओर वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति का ध्यान रखते हैं। वे अन्धानुकरण को हेय समझते हैं बजास्तुत्य है।

सर्व श्री मिश्र बन्धु (गणेश श्याम और शुकदेव विहारी)—

मिश्र बन्धुओं का प्रारम्भ काल द्विवेदी जी के समवृत्त काल १९०१ से माना जाना चाहिए। इन्हें अंग्रेजी और संस्कृत का सम्यक ज्ञान था और इन्होंने हिन्दी में अंग्रेजी के अनुकूल शोधपरक ग्रंथों का निर्माण करना चाहा। वे ऐतिहासिक समालोचना पद्धति के मूलाधार थे। जिसके उद्भव का श्रेय अंग्रेजी

१—डा० उदयभानु सिंह-आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी और उनका युग पृष्ठ ४७

२—डा० मनोहर काले-आधुनिक हिंदी मराठी काव्य शास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ १६२।

समीक्षा सिद्धान्त को हैं। इन्होंने हिन्दी साहित्य का विभाजन पूर्वारम्भिक उत्तरारम्भिक, पूर्व माध्यमिक, प्रौढ़ माध्यमिक पूर्व आलङ्कृत परिवर्तन काल तथा वर्तमान काल नामों से किया। इसमें भी इन्होंने सेनापति काल, भूषण काल, बिहारी काल, देव काल और रामचन्द्र काल आदि भेद किये। ये भेद अंग्रेजी के इतिहास ग्रन्थों के समान है। उदाहरण के लिये अंग्रेजी में ओल्ड एज मिडिवियल एज और मोडन एज आदि प्राप्त होते हैं। साथ ही इनके अन्तर्गत ऐज ऑफ चौसर ऐज ऑफ शेक्सपियर और एज ऑफ ड्रईडन मिलते हैं। अतएव यह स्पष्ट रूप से इनके काल विभाजन पर अंग्रेजी साहित्य का प्रभाव है। साथ ही उनके सिद्धान्त संस्कृत के लक्ष्य लक्षण ग्रन्थों पर भी आधारित दिखाई देते हैं। उन्होंने संस्कृत काव्य शास्त्रकारों के अनुकूल माना कि समालोचना में मुख्य वर्णन कवि का होना चाहिये और उसी की रचना के साथ जहां कहीं अच्छे सिद्धान्त निकलें उनका सूक्ष्मता पूर्वक विवरण लिख देना चाहिये। तर्क के अभाव में दी गई आलोचना की सम्मति का भी ये विरोध करते हैं।[1] इन्होंने अपने तर्क अनुभव और अध्ययन के आधार पर आलोचना के मान दण्ड स्थापित किये जिनकी आलोचना शुक्लजी और द्विवेदी जी ने की।[2] मिश्र बन्धुओं ने दोषों की अपेक्षा गुणों को अधिक महत्व दिया फिर भी इनकी रचनाओं में द्विवेदी जी की परिचयात्मक और निर्णयात्मक पद्धति के दर्शन होते हैं। साथ ही नागरिक प्रचारिणी सभा की ऐतिहासिक और विश्लेषणात्मक पद्धति भी इनकी आलोचना में पाई जाती है।[3] इससे हम कह सकते हैं कि इनकी आलोचना में संस्कृत के शास्त्रीय तत्व भी दिखाई देते हैं। इन्होंने रस अलंकार छन्द और शब्द शक्ति के आधार पर संस्कृत काव्य शास्त्र के उदाहरण देकर अपनी आलोचना को पुष्ट बनाया। उदाहरण के लिये निम्नांकित कथन देखिये—देव की आलोचना करते समय इन्होंने कहा है कि यह रूप घनाक्षरी छन्द है। जिसमें ३२ वर्ण होते हैं और प्रथम यति सोलहवें वर्ण पर होती है। इसमें मृग लोचनी में धर्मोपमा, लुप्तोपमा

१—मिश्र बन्धु विनोद चतुर्थ भाग-प्रथमावृत्ति-संवत् १९९१ पृष्ठ १६५

२—डा० वेंकट शर्मा—आधुनिक हिन्दी साहित्य में समालोचना का विकास पृष्ठ २१५

३—डॉ० भगवत स्वरूप मिश्र हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास—पृष्ठ २७७

ये दुसाध्य मानते हैं। इन्होने कहा है—"अलकारो के वर्गीकरण का भी प्रयास किया गया है। और हमने भी इस पर श्रम किया किन्तु यह ठीक बैठता नही क्योकि एक अलकार के विविध भेद हैं और कही-कही वही अलकार पृथक वर्गो म पडने लगता है।[१]

इनकी आलोचना म निम्नाकित अग्रेजी प्रभाव भी प्राप्त होता है। कृष्ण बिहारी मिश्र का चन्द्रावली चमत्कार अग्रेजी के भूमिका का सा प्रतीत होता है।

मिश्र बन्धुओं ने उत्तर नूतन काल म छाया वाद को भी विवेचन की सामग्री बनाया है। इन्होन अग्रेजी साहित्य क आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि हमारा साहित्य पिछडा हुआ है और उसकी समृद्धि आलोचना को प्रौढ बनाकर करनी चाहिये। इनकी मान्यताएँ तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर स्थित प्रतीत होती है।[२] इनका नव रत्न अग्रेजी पुस्तको के समान भूमिका स विभूषित है। प्रत्येक कवि का जीवन परिचय भी दिया है जो अग्रेजी के जीवनी साहित्य क अनुकूल दिखाई देता है। ऐसा जीवनी पर विवेचन सस्कृत साहित्य म नही किया जाता था। हिन्दी म भी इतनी सागो-पागो विवेचना और इतनी सम्यक व्याख्या पहले नही हुई थी।

मिश्र बन्धुओ ने जो कवियो का श्रेणी विभाजन किया उसका भी कारण सम्भवत यह हो सकता है कि अग्रेजी म शेक्सपियर को प्रथम श्रेणी का कवि कहा जाता है। अग्रेज आलोचको न सस्कृत क कवियो म भी कालीदास का पट्ट रेट पोयट कहा है। ग्रियसन ने तुलसी की महत्ता वैसी ही शैली म प्रतिपादित की। इसस मिश्र बन्धुओं न हिन्दी कवियो को वैसे ही क्रम म रखने का प्रयत्न किया। कवियो की सख्या मे जो सख्या वृद्धि हुई उस पर भी अनुमानत सलक्टेड वक्स आफ १६ वी शताब्दी जसी रचनाओ ने प्रभाव डाला होगा। इन्होने आलोचना म समन्वित प्रभाव को—जिसे टोटेलिटी आफ इफेक्ट का अनुवाद कहा जा सकता है को स्थान दिया। आलोच्य वस्तु के सन्देश और अभिव्यक्ति सौष्ठव को इन्होन समीक्षा का आधार माना। इन्होने हिन्दी कवियो और कालो की अग्रेजी के

१—साहित्य पारिजात-पृष्ठ ६६।

२—मिश्र बन्धु-हिन्दी नव रत्न की भूमिका-पृष्ठ ३२।

कवियों और कालों से तुलना की है। उदाहरण के लिये भक्ति काल की तुलना अंग्रेजी के रिनेसांस और रिफोरमेशन से की। रीति काल को आगस्टन ऐज कहा। चंद और चौसर की तथा शेक्सपीयर और तुलसी की भी आलोचना की। सरस्वती में इनकी आलोचना को अंग्रेजी आलोचना से प्रभावित बताया गया।

नव रत्न में की गई आलोचना ठीक वैसी ही समालोचना है।[1] जैसी अंग्रेजी समालोचकों द्वारा की गई शेक्सपियर मिल्टन और इतर कवियों के काव्य की समालोचनाएँ हैं। आज भी यह कहा जाता है कि मिश्र बंधुओं का हिंदी आलोचना के क्षेत्र में अंग्रेजी प्रभाव को लेकर यह पहला प्रयास था।[2] उनका कथन यह था कि गद्य मे विचारों को भावों की अपेक्षा अधिक महत्ता दी जाती है। इस कथन पर भी अंग्रेजी का प्रभाव परिलक्षित होता है।[3] इतिहास लेखन की परम्परा में इन्होंने पूरा सहयोग दिया। मिश्र बंधु विनोद के प्रारम्भ में संक्षिप्त इतिहास प्रकरण को स्थान दिया गया है। हिन्दी नवरत्न का सम्बन्ध भी ऐतिहासिक अध्ययन से है। मिश्र बंधु विनोद को प्रथम ऐतिहासिक अनुशीलन कहा गया है।[4]

निष्कर्ष—

इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इन्होंने संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल गुण अलंकार रस भाव छन्द नायक नायिका आदि की दृष्टि से कवियों का विवेचन किया। साथ ही संस्कृत की शैली के अनुकूल इन्होंने रस को महत्ता दी। अंग्रेजी आलोचना के समान इन्होंने काल विभाजन किया पुस्तकों के प्रारम्भ में भूमिकायें लिखीं और तुलनात्मक प्रणाली को अपनाया। इस प्रकार इन्होंने हिंदी की अपूर्व सेवा की। हिंदी की ऐसी ही सेवा करने वाले अन्य विद्वान आलोचक थे। डॉ० श्याम सुन्दरदास।

१—सरस्वती–पृष्ठ १३०–सन् १९१२

२—डा० विश्वनाथ मिश्र–हिंदी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव पृष्ठ ३५०

३—डा० भगवत स्वरूप–हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास–पृष्ठ २८६

४—डा० विश्वनाथ मिश्र–हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी का प्रभाव–पृष्ठ ३५०।

डॉ० श्याम सुन्दर दास—

सन् १९२१ से काशी विश्वविद्यालय में हिन्दी का अध्यापन करते रहे। वहां इन्होंने एम० ए० कक्षाओं के छात्रों के लिये नोटस बनाये जो मुद्रित रूप में साहित्यालोचन बने। इसमें इन्होंने संस्कृत और अंग्रेजी ग्रन्थों की पूरी-पूरी सहायता ली।[1] इन्होंने अंग्रेजी आलोचना के अनुकूल मौलिकता को विचार और शैली दोनों में पाया है।[2] वे ज्ञान के विस्तार में योगदान को मौलिकता मानते हैं। इस पर जहां पाश्चात्य प्रभाव है वहां संस्कृत का भी आधार है। माधुरी पत्रिका में एक सज्जन ने तो साहित्यालोचन को साहित्य दर्पण का सारांश तक कह डाला है।[3] डा० नगेन्द्र का यह कथन सत्य है कि तत्कालीन आलोचना की साहित्यालोचन की चरम परिणति कहा जा सकता है।[4] आज भी साहित्यालोचन द्वारा आलोचना के विद्यार्थियों की ज्ञान पिपासा शान्त होती है। इन्होंने अपना उद्देश्य भूमिका में व्यक्त करते हुए लिखा—

'मेरा उद्देश्य इस ग्रन्थ को लिखने का यह रहा है कि भारतीय तथा यूरोपीय विद्वानों ने आलोचना के सम्बन्ध में जो कुछ कहा उसके तत्वों को लेकर इस रूप में सजा दूं कि जिसमें हिन्दी के विद्यार्थियों को किसी ग्रन्थ के गुण दोष की परख करने और साथ ही ग्रन्थ निर्माण या काव्य रचना में कौशल प्राप्त करने अथवा दोषों से बचने में सहायता मिल जाय। इस दृष्टि से मैं कह सकता हूं कि इस ग्रन्थ की समस्त सामग्री मैंने दूसरों से प्राप्त की है। परन्तु सामग्री को सजाने, विषय को प्रतिपादित करने तथा उसे हिन्दी भाषा में योजित करने में मैंने अपनी बुद्धि से काम लिया है। अतएव मैं कह सकता हूं कि एक दृष्टि से दूसरे ग्रन्थों का निचोड़ है।

इन्होंने तुलना करते समय संस्कृत और अंग्रेजी के ज्ञान का प्रदर्शित किया है।

१—साहित्यालोचन-प्रथम संस्करण की भूमिका पृष्ठ २ १२।
२—वही-पृष्ठ ३।
३—वही-संशोधित संस्करण की भूमिका सन् १९३७-पृष्ठ ७
४—डॉ० नगेन्द्र-विचार और विवेचन प्रथम संस्करण पृष्ठ ७८

संस्कृत प्रभाव—

साहित्यालोचन में संस्कृत का विवेचन काव्य शास्त्र और साहित्य शास्त्र से प्रभावित होता है यहाँ भाव रसात्मक प्रेरणा पद और अभिनय का विवेचन किया गया है। साहित्यालोचन का काव्य सम्बन्ध विवेचन भी संस्कृत से प्रभावित है क्योंकि काव्य कृतियों के समग्र स्वरूप को वे साहित्य की संज्ञा देते हैं और कला मूलक साहित्य का व्यञ्जन काव्य घोषित करते हैं। उन्होंने काव्य को कविता का ही पर्याय न मान कर उसमें गद्य का भी समावेश किया है। काव्य में रस सौन्दर्य, रमणीयता और अलंकारों का अस्तित्व उन्होंने आवश्यक माना है। काव्यकार की साधना में उन्होंने अपने मौलिक भावों को अभिव्यक्त किया है। वे कला पक्ष के और भाव पक्ष के समन्वय पर बल देते हैं। संस्कृत काव्यशास्त्र के विभिन्न मतों का उल्लेख भी साहित्यालोचन में किया गया है। जहाँ रस की विवेचना करते हुए उन्होंने भरत और उसके व्याख्याताओं भट्ट लोल्लट शंकुक भट्ट नायक और अभिनव गुप्त के सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण किया है। इन्होंने मधुमति भूमिका की भी व्याख्या की है। यह रस को परप्रत्यक्ष, गम्य मानते हैं। शैली के विवेचन में रीति गुण और वृत्त को स्थान दिया गया है। कला को इन्होंने नैतिक दृष्टि से भी देखा है। उन्होंने कल्पना की भावना को मैथ्यु आरनोल्ड के अनुकूल पाया है।[1] उन्होंने यह भी कहा कि कल्पना को भी महत्व देना चाहिए और नैतिकता की दृष्टि से कला का गला नहीं घोंट देना चाहिए। काव्य प्रसाद मिश्र के समान वे साधारणीकरण का सम्बन्ध मधुमति भूमिका से मानते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि इन्होंने अंग्रेजी आलोचकों और आलोचना शैली को भी अपनाया था।

अंग्रेजी के परिपार्श्व में—

डॉ० श्याम सुन्दर दास की रुचि अंग्रेजी की ओर पूरी-पूरी रही है। उन्होंने अपने पाठ्य क्रम की पुस्तक एड्स ओफ कन्टेटपट नामक निबंध के आधार पर संताप नामक निबंध लिखा था। इनका अलंकारों का वर्गीकरण प्रोफेसर ब्रेन के अनुसार है। शैली के विवेचन में ये लिखते हैं— किसी कवि या लेखक की शब्द योजना, वाक्यांशों का प्रयोग वाक्यों की बनावट और उसकी ध्वनि आदि

१—साहित्यालोचन-पृष्ठ ७० ७४, ११२।

का नाम शैली है। शैली को विचारों का परिधान न कह कर उनका बाह्य और प्रत्यक्ष रूप कहना बहुत कुछ संगत होगा। अथवा इसे भाषा का व्यक्तिगत प्रयोग कहना भी ठीक होगा।[1] साहित्यालोचन में किया गया कला का वर्गीकरण और उसके आधार पर अमूर्ता आधार पर काव्य को श्रेष्ठ मानना ही गन के प्रभाव का परिचायक है। अंग्रेजी सम्पर्क से उत्पन्न व्याख्यात्मक शैली को इन्होंने भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास में अपनाया।[3] इन्होंने प्रयोगात्मक एवम् विश्लेषणात्मक दोनों ही शैलियों का समुचित उपयोग किया। काव्य में कल्पना तत्व को ऐडिसन और मनोवैज्ञानिकों के समान महत्ता प्रदान की। परिज्ञान, स्मरण, कल्पना विचार और सहज ज्ञान नामक ज्ञान की दशायें मानी हैं। परिज्ञान (परसेप्शन) और स्मरण (मैमारी) के संयोग से कल्पना (इमजीनेशन) का उदय पाश्चात्य मानस शास्त्रियों के अनुकूल है।

अंग्रेजी के परिपार्श्व में—

साहित्यालोचन की प्रतिपादन की शैली पर हडसन के इन्ट्रोडक्शन टू दी स्टडी ओफ लिट्रेचर का प्रभाव दिखाई देता है। यहाँ उल्लेखनीय यह है कि साहित्यालोचना की आत्मा भारतीय है। हडसन ने जहाँ केवल अंग्रेजी अथवा यों कहिये पाश्चात्य साहित्य पर ही दृष्टि रखी है वहाँ बाबू साहब ने पाश्चात्य और पौरवत्य दोनों ही साहित्य विधाओं को आँखों से ओझल नहीं होने दिया। यहाँ यह भी कहा जा सकता है कि श्याम सुन्दरदास जी ने छात्रों के उपयोग के लिये दोनों ही समीक्षा सिद्धान्तों से बहुत कुछ ग्रहण किया है। उदाहरण के लिये वर्ष फार्ड के जजमेंट इन लिट्रेचर की शैली के अनुकूल कला का विवेचन किया। फ्रायड के सिद्धान्त और कला-कला के लिये वाले सिद्धान्त को भी व्याख्या का विषय बनाया। फिर भी उन्होंने अपनी मान्यताएँ स्पष्टतः अंकित कर दी हैं। इनका अभिमत है "फ्रायड के स्वप्न सिद्धान्त को कलाभिव्यक्ति के मूल में स्वीकार करने पर तथा यथार्थ वाद के नाम पर समस्त साहित्य विधाओं को ग्रहण करने पर

१—साहित्यालोचन पृष्ठ २४६।

२—डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा-पाश्चात्य काव्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव-पृष्ठ १६०।

परिगणित होता है।[१ २] इन्होने काव्य मे बुद्धि कल्पना, भाव और शैली तत्वो का समिवश किया है जो अंग्रेजी के आलोचना सिद्धातो से अनुकूल है।

निष्कर्ष—

अतएव निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि डॉ० साहब ने भारतीयो को पाश्चात्य साहित्यालोचन म परिचित कराया और साथ ही हम संस्कृत ज्ञान से भी लाभान्वित किया है। इनकी साहित्यालोचन एक महत्व पूर्ण कृति है जिसके द्वारा पाठक उपमण्डूकता से निकल कर आधुनिक ज्ञान राशि से परिचित हो जाता है।

प० पद्मसिंह शर्मा—

बिहारी सतसई के भाष्य मे शर्माजी ने तुलनात्मक आलोचना का स्थान दिया है। उस समीक्षा क्षेत्र मे सब प्रथम शृंखलाबद्ध, तुलनात्मक, समालोचना कहा जा सकता है।[१] तुलना के सम्बन्ध म इनका मत पठनीय है "तुलनात्मक समालोचना का उद्देश्य भारतीय साहित्य के विधाता संस्कृत कवियो का अपमान करना नही है उन पर लेखक की बिहारी से भी अधिक पूज्य बुद्धि है, संस्कृत कवियो के भाव के साम्य को ही वह बिहारी के काव्योत्कर्ष का कारण समझता है। संस्कृत कवि उपमान है। बिहारी उपमेय'[२]।

सतसई के उद्भव और विकास के बारे मे लिखा गया इनका निबन्ध ओज पूर्ण है। इन्होने ध्वन्यालोक और काव्य मीमासा से भी पूर्व परिचलित बात की छाया बता कर सतसई के सौन्दर्य को अकलंकित प्रतिपादित किया है। इस विवेचन म उन्हाने काव्य शास्त्रीय शास्त्र का भी उपयोग किया है। उनका कथन है कि जिन कवियो म सरस और प्रतिमान अथ पूर्ण कविता करने की क्षमता हो वही महा कवि है। इस मत पर ध्वन्यालोक की छाया दिखाई देती है।[३] इन्होने खण्डन मण्डन की प्राचीन प्रणाली को प्रमुख स्थान दिया है। पद्म पराग

१—पण्डित कृष्ण बिहारी मिश्र-देव और बिहारी-पृष्ठ १२।
२—पण्डित पद्मसिंह शर्मा-बिहारी की सतसई-पृष्ठ २८३।
३—ध्वन्यालोक की प्रथम कारिका की लोचन टीका-पृष्ठ २१।

इनके निबंधों का संग्रह है। इनमें इनके मौलिकता सम्बन्धी विचारों पर संस्कृत के सिद्धान्तों और ग्रन्थों का प्रभाव दिखाई देता है। कालीदास और राजशेखर व आनन्दवर्धनाचार्य की मान्यताओं का भी उल्लेख किया गया है।[1] इन्होंने संस्कृत के श्लोक उद्धरित करके उनकी व्याख्या भी की है।[2] इनकी आलोचना से इनका संस्कृत के गम्भीर ज्ञान का प्रत्यक्ष परिचय हो जाता है। इन्होंने रीतिकालीन शृंगारिकता का समर्थन करते हुए वेदों से और राजशेखर तथा रुद्रट के मतों से शृंगारिक चित्रण की पुष्टि की है।[3] शर्माजी ने वक्रोक्तिवादी आचार्यों—भामह आदि के समान अतिशयोक्ति और वक्रोक्ति को पर्याय मान कर उन्हें समस्त अलंकार प्रपंच का मूल माना है। इन्होंने रस ध्वनि वाली रचना को ही महाकवि पद का अधिकारी माना है।[4]

अंग्रेजी प्रभाव—

पण्डित पद्मसिंह शर्मा ने कई शास्त्रीय शब्दों के अर्थ में विस्तार किया है। इस अर्थ विस्तार का कारण अंग्रेजी प्रभाव है। इनकी मान्यता थी कि एक युग के कलाकारों को दूसरे युग के समकक्ष रख कर आंकना अनुपयुक्त है। इस धारणा पर अंग्रेजी की ऐतिहासिक आलोचना पद्धति का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। इनके साहित्यिक मूल्यांकन के बारे में कहा जाता है—हमारे कितने ही नये समीक्षक ज्ञात या अज्ञात रूप से शर्माजी के ही रास्ते पर चल रहे हैं। नये कवियों के उदाहरण देकर कुछ नये तुले वाक्यों में प्रशंसा कर देने पर ही उनकी समीक्षा सीमित है। शर्माजी से वे किसी भी अर्थ में आगे नहीं बढ़ सके हैं।[5]

निष्कर्ष—

अतएव निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि श्री शर्माजी ने दोनों ही शैलियों को अपनाते हुए हिन्दी साहित्य को प्रौढ़ तुलनात्मक शैली प्रदान की है।

१—बिहारी सतसई-पृष्ठ २६,२७,२६।
२—वही-पृष्ठ ८,६।
३—वही-पृष्ठ ७।
४—डा० नगेन्द्र-हिन्दी वक्रोक्ति जिवित।
५—डॉ० नन्द दुलारे वाजपेयी-आलोचक रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ ५३।

पंडित कृष्ण बिहारी मिश्र—

मिश्र जी ने देव को बिहारी की अपेक्षा अच्छा कवि सिद्ध किया। इसमें संस्कृत के और अंग्रेजी के उदाहरणों द्वारा उन्होंने अपनी मान्यताओं की पुष्टि की। निष्पक्ष भाव से किसी वस्तु के गुण दोषों की विवेचना को समालोचना नाम से अभिहित किया।[1] अंग्रेजी आलोचकों के समान उन्होंने कहा कि—

'हमारी समझ में किसी ग्रंथ की समालोचना करते समय तद्गत विषय का प्रत्येक ओर से निरीक्षण होना चाहिये। ग्रंथ का गौण विषय क्या है तथा प्रयोजनीय क्या है, चरित्रचित्र वर्णन क्या है तथा भराव क्या है आदि बातों का जिस समालोचना में विचार किया जाता है, उससे पुस्तक का हाल वैसे ही विदित हो जाता है जैसे किसी मकान के मान चित्र आदि में उस गृह का विवरण ज्ञात हो जाता है।[2] साथ ही उन्होंने काव्य का उद्देश्य आनन्द प्रदान करना माना है जो संस्कृत काव्य शास्त्र के अनुकूल है।[3] मतिराम ग्रंथावली की भूमिका में भी तुलना का स्थान दिया गया है। वहाँ संस्कृत और अंग्रेजी के ज्ञान का समुचित उपयोग किया गया है। निम्नांकित विवेचन इसे स्पष्ट कर देता है। मतिराम ग्रंथावली में बनी हुई रीति या प्रणाली के आधार पर आलोचना न करके आलोच्य कृति के ही गुण दोष बतलाने का प्रयत्न किया गया है।[4] इसमें इन्होंने ऐतिहासिक मनोवैज्ञानिक व्याख्यात्मक और निर्णयात्मक आलोचना पद्धतियों को अपनाया है।[5]

संस्कृत के परिपार्श्व में—

प्रारम्भ में ही इन्होंने व्यक्त किया है—' वह वाक्य जिसकी शब्दावली या अर्थ अथवा शब्द और अर्थ दोनों ही साथ साथ मिलकर रमणीय पाया जाय काव्य कहा जायगा।[6] इस पर रमणीयार्थी, प्रतिपादिक शब्दम् काव्य की छाया है।''

१—कृष्ण बिहारी मिश्र-देव और बिहारी—भूमिका।
२—वही-पृष्ठ ३४।
३—वही-पृष्ठ ६२-६३।
४—मतिराम ग्रंथावली-परिचय
५—वही-
६—मतिराम ग्रंथावली-प्राक्कथन पृष्ठ ६।

आगे यह कहते हैं कि रसात्मक वाक्य में कभी ही सुन्दर कविता का प्रादुर्भाव होता है। यह वाक्य रसात्मक काव्य के अनुकूल है। मम्मट के अनुसार ये कहते हैं—'कवि की वाणी जिस सृष्टि का सृजन करती है एक मात्र आनन्द है नव रस मई होने के कारण यह परम रुचिरा है।'[१] ये कविता की कसौटी रस अलंकार भाषा गुण दोष लक्षण और व्यंजना को मानते हैं। इस प्रकार ये सिद्धान्त प्रतिपादित करते रहते हैं और उनके अनुकूल आलोचना करते चलते हैं।[२] इन्होंने शृंगार रस की महत्ता रसोद्रेक और स्थायीभावों का विवेचन आदि करते हुए मतिराम के काव्य की श्रेष्ठता प्रतिपादित की है।[३] साहित्य दर्पणकार के अनुसार इन्होंने हास्य की व्याख्या की और उसके छः भेदों का विवेचन किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि उक्तियों को ग्रहण करने में सिद्धान्त प्रतिपादन में और निर्णयात्मक शैली में इन पर काव्यशास्त्र का प्रभाव दिखाई देता है। साथ ही ये अंग्रेजी प्रभाव से भी अछूते नहीं रह सके हैं।

३. अंग्रेजी के परिपार्श्व में—

इन्होंने सचारिया की तुलना हैनरी यूमैन के उद्धरण से की और शृंगार रस की श्रेष्ठता प्रतिपादित की।[१] टनिसन और लहट के उद्धरण भी ये देते हैं।[२] बाइरन का उदाहरण देकर मतिराम के काव्य मे प्राप्य अश्लीलता को ये क्षम्य सिद्ध करते हैं। इनकी व्याख्या भी बहुत सुन्दर है।[३]

मिश्र जी ने शेक्सपियर की नायिका से भी मतिराम की नायिका की तुलना की और दोनो म एक ही प्रकार के भावो का प्रदर्शन बताकर मतिराम को श्रेष्ठ कवि घोषित किया है। वास्तव म उनकी तुलना अत्यन्त उपयुक्त है। यथा शेक्सपीयर कहते हैं— 'आहा, प्रियतमा, कैसे अपने हाथो पर कपोल रखे हुए हैं। क्या ही अच्छा होता। मैं उन हाथो का दस्ताना ही होता जिससे मुझे कपोल स्पर्श सुख तो नसीब होता"।[४] और मतिराम लिखते हैं—

"होते रहे मन यों मतिराम, कहूँ बन जाय बडो तप कीजै,
ह्वै बन माल यै लागिये, अरु ह्वै मुरली अधरा रस लीजै।"[५]

इन्होंने ऐतिहासिक पद्धति को भी अपनाया है। ऐतिहासिक स्थानों और व्यक्तियो को, जो मतिराम के ग्रथो म प्राप्त होते हैं, उन्हे विस्तार पूर्वक समझाया है।[६]

निष्कर्ष—

अतएव यह सहज ही कहा जा सकता है कि इन पर अंग्रेज आलोचको और कवियो का प्रभाव दिखाई देता है। इन्होंने संस्कृत हिन्दी, अंग्रेजी और बगला प्रभृति भाषाओ के लेखको और कवियो के मत उद्धृत कर अपने कथन की पुष्टि की है। तदनन्तर इन्होंने अपना साराश प्रस्तुत किया है। इसमे इन्होंने प्राच्य और

१—मतिराम ग्रथावली-पृष्ठ २८ २६।
२—वही-पृष्ठ ६८ १४७।
३—वही-पृष्ठ ११०।
४—वही-पृष्ठ १६५।
५—वही।
६—वही-पृष्ठ २०५।

निष्कर्ष—

इस प्रकार प्रतीत होता है कि इन्होंने संस्कृत के आधार पर हिन्दी साहित्य को समृद्ध करने का प्रयत्न किया है, जिसमें अंग्रेजी का भी सहयोग लिया गया है। भारतीय अलंकारों की अंग्रेजी के अलंकारों से तुलना भी की गई है।[1]

रत्नाकर जी ने रमणीय काव्य को काव्य की सत्ता दी है। इनकी आधुनिक धारणा है कि रस, अलंकार, रीति ध्वनि, तथा वक्रोक्ति के समन्वय द्वारा रमणीयता का प्रतिपादन ही काव्य का प्राणतत्व है। इस प्रकार ये युग के अनुकूल संस्कृत आधार पर सामंजस्य की कामना प्रकट करते हैं। आलोच्य काल में तुलनात्मक पद्धति के भी दर्शन होते हैं।

तुलनात्मक पद्धति—

धन्नूलाल द्विवेदी कृत 'कालिदास और शेक्सपीयर' में निंदा, स्तुति और नम्बर देकर ऊपर नीचे बताने की प्रवृत्ति नहीं है। इन्होंने कालिदास के वाह्य वर्णन (external) को सुंदर घोषित किया है तथा शेक्सपीयर के आन्तरिक (internal) भाव सौन्दर्य को श्रेष्ठ प्रतिपादित किया है। तुलनात्मक पद्धति के कारण हिन्दी साहित्य की ग्राह्य शक्ति को बल मिला है। इस युग में बंगला से अनूदित ग्रंथों ने भी अंग्रेजी प्रभाव ग्रहण करने में सहायता दी। इसे अंग्रेजी का परोक्ष प्रभाव कहा जा सकता है।

बंगला से अनूदित ग्रंथ और अंग्रेजी का परोक्ष प्रभाव—

द्विजेन्द्रलाल राय कृत 'कालिदास और भवभूति' का रूपनारायण पण्डित कृत अनुवाद हमारे कथन के प्रमाण स्वरूप उल्लेखनीय है। यह एक अविकल अनुवाद है। इसमें संस्कृत व अंग्रेजी सिद्धान्तों का तुलनात्मक विवेचन किया गया है। इसी प्रकार पूर्णचन्द्र वसु लिखित 'साहित्य चिंता' का बंगला से रामदहिन कृत हिन्दी अनुवाद भी इसका एक ज्वलंत उदाहरण है जिसमें सैद्धान्तिक समालोचना को स्थान मिला है। इसमें पौर्वात्य तथा पाश्चात्य समीक्षा सिद्धान्तों का

१—अलंकार मंजूषा पृष्ठ २।

तुलना कर मौलिकता की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया गया है। इस प्रकार बंगला भाषा से अनूदित ग्रन्थों ने अंग्रेजी प्रभाव को ग्रहण करने में सहायता दी है।

यहाँ एक तथ्य उल्लेखनीय है कि इस युग में संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल शास्त्रीय धारा क्षीण और मन्द किन्तु अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती रही थी। श्री जगन्नाथ प्रसाद भानु के काव्य शास्त्रीय ग्रन्थ इसके उदाहरण हैं।

जगन्नाथ प्रसाद भानु—

इनके काव्य की परिभाषा साहित्य दर्पण के अनुकूल स्पष्ट और सरल शब्दों में है। जगन्नाथ प्रसाद भानु की निम्नांकित पुस्तकें काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों के उदाहरण स्वरूप देखी जा सकती है। जैसे—हिन्दी काव्यालंकार सूत्र। अलंकार प्रश्नोत्तरी, रस रत्नाकर, नायिका भेद शब्दावली और छन्द प्रभाकर आदि। उपरोक्त पुस्तकों में काव्य प्रभाकर नामक ग्रन्थ साहित्य जगत को एक महत्वपूर्ण देन है। इसमें इन्होंने वैज्ञानिक प्रणाली को अपनाया है। आलोचकों ने इसे काव्य शास्त्र का कोश सा कहा है।[1] इसमें इन्होंने उपलब्ध शास्त्रीय सामग्री का समुचित उपयोग किया है। इनकी परिभाषायें रोचक हैं यथा—

"मत्तवरण मतिगति नियम अंतहिं समताबन्द, जो पद रचना में मिले, भानु भनत सुइ छन्द"।

इन्होंने अपने ग्रन्थ में नायिका वर्णन के साथ ही साथ गद्य की व्याख्या भी दी है। इसी भाँति इन्होंने विभाव, अनुभाव तथा दोषादि (वर्णन) की सामग्री के साथ पूर्ण विवेचन किया है। इन्होंने कुवलयानन्द के समान १०० अलंकारों का भी विवेचन किया है।

अंग्रेजी प्रभाव—

इन्होंने एकादश मयूख में काव्य निर्णय ग्रन्थ के अन्तर्गत अपनी मौलिकता का पूर्ण परिचय दिया है। इनके साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव भी रहा है। इन्होंने ग्रन्थ में अंग्रेजी के अनुकूल भूमिका प्रदान की है। इसी भाँति स्पष्टीकरण में

१—डा० भागीरथ मिश्र-हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ १६६।

अनभूमिका, सूचना, प्रश्नोत्तर तथा फुटनोट को भी स्थान दिया है। इन्होंने अपने साहित्य म अग्रेजी शैली की उक्त विशेषता का अनुसरण करते हुए गद्यात्मक विशेषताओं को भी अपनाया है।

निष्कर्ष—

इस प्रकार इन्होंने काव्य शास्त्रीय धारा को अक्षय बनाये रखने का प्रयास किया है। इन्होंने अपने साहित्य म वज्ञानिकता और अग्रेजी शैली अपने आधुनिक साहित्य सृजन मे महत्वपूर्ण काय किया है। इन्होंने तो कई बार आधुनिक गद्य म उदाहरण भी प्रस्तुत किये हैं—यथा—उल्लेखालकार—

'हमारे तो डिपुटी कमिश्नर, कमिश्नर, चीफ कमिश्नर और लाट साहब आप ही हैं।

सीताराम शास्त्री साहित्य सिद्धान्त

सस्कृत परिपार्श्व—

शास्त्री जी ने एक ग्रथ साहित्योपदेश की रचना सस्कृत म की। इसके ही आधार पर इन्होंने हिन्दी मे साहित्य सिद्धान्त की रचना की। अतएव यह सस्कृत का ही रूपान्तिरित रूप है। इसम भागवत अग्निपुराण, भरत, और विश्वनाथ प्रभृति सस्कृत के विद्वानो के ज्ञान का समुचित उपयोग किया गया है। ग्रथ म सस्कृत के अनुसार काव्य, शब्द अर्थ, वृत्ति, गुण दोष अलकार रस, भाव, विभाव अनुभाव और सचारियो का सम्यक शास्त्रीय विवेचन किया गया है।

अग्रजी परिपार्श्व—

इसमे अग्रेजी के प्रभाव के दर्शन गद्य के अनुसरण म दिखाई देते हैं। इसम गद्य को समुचित स्थान दिया गया हैं। अतएव निष्कपतत्र कहा जा सकता है कि यह ग्रथ सस्कृत काव्य शास्त्र के हिन्दी मे प्रचलन का प्रौढ़ प्रतीक है। इसी भांति केडियाजी ने भी हिन्दी की सेवा की है।

अर्जुनदास केडिया

भारती भूषण इनकी अलकारो की सुन्दर पुस्तक है। इसम इन्होंने अपनी मौलिकता और अपने खोज पूर्ण तथ्यो को पाद टिप्पणिओ म व्यक्त किया है। अतएव यह ग्रथ शास्त्रीय आधार को ग्रहण करता हुआ अग्रेजी की तक प्रणाली

और खोज प्रवृति से परिपूर्ण है। इसमें अलंकारों के लक्षण गद्य में दिये गये हैं। इस युग के प्रौढ़ लेखक हैं श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय हरिऔध।

हरिऔधजी रसकलश

रस कलश के सम्बन्ध में यह सहज ही कहा जा सकता है कि,—

"रस को कलश है कलश रस को।"

इसमें साहित्यिक अंगों पर शास्त्रीय दृष्टि से समयानुकूल प्रकाश डाला गया है। यथा इन्होंने विपरीत अलंकार का देश कालानुसार सुन्दर उदाहरण दिया है —

'स्वतन्त्रते मैं तुझे खोजता था जब सौख्य सदन में।
तब तू मेरे लिये छिपी था कारागार गहन में॥
सोचा था मैंने तू होगी सच-मुच सम्राट शरण में।
पर तू तो निरास करता थी विद्रोहीगण में॥"

रस कलश में शास्त्रीय लक्षणों पर तर्कपूर्ण और सरस ढंग से प्रकाश डाला गया है। इसमें अंग्रेजी के अनुकूल भूमिका दी गई है जिसमें खड़ी बोली के माधुर्य को प्रतिपादित किया गया है। वहां अग्निपुराण और अन्य शास्त्रीय ग्रंथों के आधार पर शृंगार रस को रसराज बताया है। इस ग्रंथ के आधार संस्कृत के काव्य शास्त्रीय ग्रंथ हैं और साथ ही अंग्रेजी के ग्रंथ और अंग्रेजी का विवेचना शैली भी। इन्होंने अंग्रेजी ग्रंथों से अभिसारिका और अन्य नायिकाओं के उदाहरण दिये हैं। हरिऔधजी ने प्रगतिवादी कवियों की अश्लीलता का दिग्दर्शन कराकर संस्कृत के साहित्य का समर्थन किया है।

इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि रस कलश काव्य शास्त्र का प्रौढ़ और पुष्ट ग्रंथ है जिसमें आधुनिक विशेषताओं का भी सुन्दर समावेश किया गया है।

बिहारीलाल भट्ट

हरिऔधजी के समान बिहारीलाल भट्ट ने हमें साहित्य सागर प्रदान किया है। इसमें इन्होंने साहित्य का विवेचन शास्त्रीय आधार पर करते हुए आधुनिक प्रश्न उसका मर्म क्या है साहित्य क्या है आदि पर प्रकाश डाला है। इनकी व्याख्याएँ करते समय इन्होंने संस्कृत की दृष्टि से व्युत्पत्ति मूलक अर्थ भी प्रदान किये हैं। इनकी परिभाषाओं पर भी संपूर्ण का प्रभाव परिलक्षित होता है। यथा—

"वाक्य रसात्मक काव्य है सरस अलकृत जोय ।
वृत्ति रीति लक्षण सहित, काव्य कहावत सोय ॥"
एवम्
'देय अथ रमणीय अति, जाको शब्द स्वरूप ।
ऐसीं रचना को कहत, कविजन काव्य अनूप ॥"

इन पर साहित्य दपण और रस गगाधर के लक्षणो का प्रभाव स्पष्ट है । इन्होने रसो मे नवीन रसो की सख्य दास्य और वात्सल्य की भी स्वीकृति दी है । इसी भांति इन्होने नायिकादि क विवेचन म देश कालानुसार नवीनता का समावेश किया है । इनकी एक विशेषता यह भी है कि इन्होने परिभाषायें पद्य म ही हैं ।

ब्रजेश ने शास्त्रीय धारा म रस रमाग निर्णय द्वारा सहयोग दिया है । इसम रस पर पडितराज जगन्नाथ का अनुसरण किया गया है ।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि काव्य शास्त्रीय ग्र थो की परम्परा द्विवेदी काल तक अक्षण्ण रही हैं । डॉ० रामशकरजी शुक्ल रसाल' ने अलकार पीयूष द्वारा इसे बल प्रदान किया हैं । इनमे मौलिकता के अश मुखद और स्तुत्य हैं । आधुनिक आलोचक और शास्त्रीय विचारक इनकी मान्यताओ से आगे नही वढ सके है । अतएव इन्हे आधुनिक युग के विवेचन में विवेचन की सामग्री बनाया जायेगा । इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस काल म अग्रेजी के आलोचना सिद्धान्तो तथा सस्कृत क काव्य शास्त्रीय तत्वो का प्रभावित किया है । काव्यशास्त्र के स्थान पर आलोचना और समालोचना नाम ही अ ग्रेजी प्रभाव का परिचायक है । साथ ही उक्त युग की आलोचना का आधार सस्कृत के शास्त्रीय तत्व रस अलकार और वक्रोक्ति आदि रहे हैं ।

चतुर्थ प्रकरण

आधुनिक युग

(संवत् १९८७ से २०२० तक)

सामान्य परिचय—

द्विवेदी युग के आलोचना सिद्धान्तों म परीक्षण प्रणाली का आभास प्राप्त होता है । कभी आलोचक संस्कृत नियमो को अपनाते थे तो कभी अंग्रेजी नियमों को, सम्भवत वे अंग्रेजी के आलोचना सिद्धांतों का परीक्षण कर रहे थे । संस्कृत काव्य शास्त्र जिसे वे आधार स्वरूप ग्रहण किये हुए थे उसका भी उन पर गहरा प्रभाव था । आलोच्य काल मे आचार्य रामचन्द्र शुक्ल डॉ० हरबनलाल जी हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ० नगेन्द्र, डॉ० रामचन्द्र जी आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी डॉ० रामशंकर जी शुक्ल रसाल, डॉ० भागीरथ मिश्र डॉ० सत्येन्द्र, डॉ० रामकुमार वर्मा डॉ० सरनामसिंह जी, एवं भावक आलोचकों ने एक सुनिश्चित राह का निर्माण किया । आज का आलोचक समन्वय की जागरूक आकांक्षा रखता है । वह न तो पुरातन सभी नियमों को ही अपना लेने की इच्छा प्रकट करता है और न नवीन नियमों के अंधानुकरण की आकांक्षा रखता है । वह हिन्दी म अपनी निजी आलोचना शैली को देखने की कामना करता है । फिर भी कतिपय आलोचक संस्कृत नियमों के समर्थक मिल जायेंगे, तो कुछ अंग्रेजी के भक्त भी । डॉ० धीरेन्द्र वर्मा ने अंधानुकरण को हेय घोषित किया है ।[1] यहां डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी के निम्नांकित अभिमत को ध्यान म रखना उचित है—

'अंग्रेजी संस्कृति के सम्पर्क से आज हिन्दी साहित्य प्रगति कर रहा है किन्तु जन साधारण ने प्राचीन परम्पराओं को छोड़ दिया है इसलिए यह गतिमानता मन रंजित करने का आधार ही नहीं है ।[2]

१—विचार धारा पृष्ठ २०६ ।

२—हिन्दी साहित्य की भूमिका पृष्ठ १३५ ।

अधिकांशतः यही माना जाता है कि आलोचक का कार्य किसी रचना में निहित सम्पूर्ण मूल्यों के प्रति पाठक को सचेत और सम्वेदनशील बनाना है और एक ही आलोचक अथवा एक आलोचना पद्धति इसके लिये पर्याप्त नहीं है, इसलिये विभिन्न युगों में विभिन्न दृष्टियों और पद्धतियों से एक ही महान रचना के मूल्यों का उद्घाटन करते हैं। साहित्य के मूल्यांकन का प्रयत्न और उसका निर्णय व्यापक जीवन सापेक्ष होना चाहिये।[1] एक ओर आज संस्कृत के काव्य शास्त्र से ज्ञान प्राप्त कर उसकी विशेषताओं को स्पष्टतः अंकित करने का प्रयत्न किया जाता है तो दूसरी ओर अंग्रेजी के नियमों का समझने-समझाने की चेष्टायें की जाती हैं।[2] डॉ० रविन्द्र सहाय वर्मा और डॉ० एस पी खत्री आदि के विवेचन हमारे कथन की पुष्टि करते हैं। आज संस्कृत के उदाहरण देकर भी अपने मंतव्य को स्पष्ट किया जाता है।[3] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि आज की आलोचना संस्कृत काव्य शास्त्र से प्रभावित है और अंग्रेजी आलोचना सिद्धान्तों से भी। आगामी विवेचन इसे स्पष्ट कर देगा। युग के लेखकों की कृतियां और उनके सिद्धान्त हमारे कथन की प्रामाणिकता प्रकट करते हैं।

संस्कृति प्रभाव—

आज भी कतिपय शास्त्रवेत्ता साहित्य की व्याख्या पुरातन अर्थात संस्कृत काव्य शास्त्रीय, शब्दावली में प्रस्तुत करते हैं यथा डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत की मान्यता है कि— आज का लेखक मनुष्य साहित्य सजना प्रायः अयत्नते ही करता है।[4] डा० दशरथ ओझा ने नाह्य समीक्षा में संस्कृत के नाट्य सिद्धांतों का विस्तृत विवेचन किया है। डा० गोविन्द त्रिगुणायत ने संस्कृत के आचार्यों के मत स्थान-स्थान पर उधृत किए हैं—

१—श्री शिवदानसिंह चौहान—आलोचना के सिद्धान्त पृष्ठ १८५।

२—डॉ० रविन्द्र सहाय वर्मा—पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव पृष्ठ १५, २५ ३५।

३—बृज मोहन शर्मा—बालकृष्ण भट्ट पृष्ठ ७७।

४—डा० गोविन्द त्रिगुणायत—साहित्य समीक्षा के सिद्धान्त—प्राक्कथन पृष्ठ ख।

'संस्कृत के प्रसिद्ध ग्रंथों में दी गई साहित्य की परिभाषायें श्राद्धविवेक इस ग्रन्थ के रचयिता रुद्रधर ने साहित्य के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है

शब्द शक्ति प्रकाशिका इस ग्रन्थ में तुल्य त्व क्रियान्वयित्वम् बुद्धि विषयित्वम् साहित्यम् '[1] आदि।

विभिन्न विधायें—

हिन्दी की परिभाषाओं और शाखाओं पर संस्कृत की परिभाषाओं का प्रभाव दिखाई देता है। उदाहरण के लिए साहित्य को ही लीजिए। साहित्य की परिभाषा देते हुए संस्कृत से उसकी पुष्टि की जाती है। कभी उसे राजशेखर, मुकुल भट्ट और प्रति हारेन्दु राज[2] के समान काव्य के अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है तो कभी उसे शाब्दिक अर्थ में। उसके शाब्दिक अर्थ को संस्कृत की व्युत्पत्ति के आधार पर समझाने का प्रयत्न किया जाता है। डा० गुलाबराय साहित्य को इसी भांति-'हितेन सह सहितं तस्य भावः साहित्यम्' बताते हैं। हिन्दी साहित्य कोष्ठक में भी इसी प्रकार का प्रयत्न किया गया है। प्रो० भारत भूषण सरोज ने अपने "साहित्यिक निबन्ध" है इसी शैली का अनुकरण किया है। साहित्य की व्याख्या के समान उसकी प्रेरक शक्तियां भी संस्कृत से ही ग्रहण की जाती है।

साहित्य की प्रेरक शक्तियाँ—

साहित्य की प्रेरक शक्तियों का उल्लेख करते समय भी पुरातन संस्कृत ग्रन्थों और शास्त्रों के मत उद्धृत किये जाते हैं। उदाहरणार्थ— बृहदारण्यकोपनिषद् में उन प्रेरणाओं का विस्तार से उल्लेख किया गया है पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणा।[3] डा० गुलाब राय ने भी इन एषणाओं को साहित्य की मूल प्रेरक

१—डा० गोविन्द त्रिगुणायत-साहित्य समीक्षा के सिद्धांत-प्राक्कथन पृष्ठ २।
२—वही पृष्ठ ६।
३—डा० गोविन्द त्रिगुणायत-समीक्षा शास्त्र के सिद्धान्त पृष्ठ ८।

शक्तिया कहा है ।[१] और इस सम्बन्ध में भामह का मत उधृत कर, मम्मटकी निम्नांकित धारणा अधिकांशत प्रस्तुत की जाती है—

'काव्य यशसेथ कृते व्यवहार विदे शिवेत रक्षसये ।
सद्य परनिवु त्तये कान्ता सम्मति तयोपदेश युजे ।।"[२]

डा० हजारी प्रसाद द्विवदी ने अपने मौलिक ढग से काव्य के प्रयोजन पर प्रकाश डाला है। वे साहित्य को मनुष्य की ही दृष्टि से देखना चाहते है। उन्होने जीवन म आदर्श को महानता दी है और वे साहित्य को भी केवल मनोरजन का साधन नही मानते हैं। काव्य के प्रयोजन के समान साहित्य का विवेचन करते समय संस्कृत वागमय के आधार पर उसकी कला से भिन्नता प्रतिपादित करने का प्रयत्न किया जाता है।

साहित्य और कला—

साहित्य और कला के सम्बन्ध मे भी भारतीय मत उधृत किए जाते हैं और भर्तृहरी का श्लोक—साहित्य सगीत कला विहिन साक्षात् पशु पुच्छ विषाण हीन ।' को प्रस्तुत किया जाता है। यहा वागमय क भेद भी बताये जाते हैं।[३] संस्कृत काव्य शास्त्र क उदाहरण देकर दण्डी के मत क आधार पर कहा जाता है कि साहित्य और काव्य को कला से उच्च स्तरीय माना जाना चाहिये। मम्मट के अनुसार काव्य को ब्रह्मानन्द सहोदर भी माना जाता है। काव्य सम्बन्धी धारणाओ न काव्य के विवेचन को भी प्रभावित किया है। काव्य का विवेचन करत समय संस्कृत क विभिन्न आचार्यों —भोज, भट्ट तात राज शेखर, भट्ट गोपाल, वैदिक साहित्य अभिनव गुप्ताचार्य और वक्रोक्तिकार तक के मत प्रस्तुत किये जाते हैं। काव्य की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे राज शेखर की कथा को प्रस्तुत किया जाता है।[४] अन्य कई ग्रन्थो म ऐसा ही विवेचन

१—डा० गोविन्द त्रिगुणायत-समीक्षा शास्त्र के सिद्धान्त पृष्ठ ८ ।

२—वही एव काव्य प्रकाश १।२

३—वही पृष्ठ ३२ एव वांगमय विमर्श—प्राक्कथन एव पृष्ठ ३०-३५ ।

४—डा० एस० के० डे०, हिस्ट्री ओफ संस्कृत पोलिटिक्स –१ ।

प्राप्त होता है जिसमें डा० गोविन्द त्रिगुणायत के शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत उल्लेखनीय है वहाँ शैली पर भी संस्कृत की दृष्टि से विचार किया गया है।

शैली—

शैली का विवेचन करते समय संस्कृत शास्त्रकारों की उक्तियों और धारणाओं को स्थान दिया जाता है। राज शेखर ने साहित्य वधु की वेष भूषा से प्रवृति की, उसके विलास से वृत्ति की और वाणी विन्यास से रीति की उत्पत्ति हुई।"[1] कुन्तक के मार्ग से भी इसकी तुलना की जाती है। काव्यालंकार सूत्र में विशिष्ट पद रचना रीति कहा गया है।[2] हिन्दी में रीति और शैली की तुलना आपस में भेद प्रभेद बताये जाते हैं। डा० गोविन्द त्रिगुणायत का मत है कि— "अतः संस्कृत का रीति शब्द पारिभाषिक होते हुए भी किसी भी रचना के तमाम तत्वों के विवेचन को समेट सकता है जो शैली के अन्तर्गत आते हैं।[3] रीति के विवेचन में अलंकार महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं और शब्द शक्तियाँ उनसे सम्बन्धित है। अतः शब्द शक्तियों को भी यत्र तत्र विवेचन का विषय बनाया जाता है। फिर भी यह उल्लेखनीय है कि अंग्रेजी के प्रभाव के कारण अधिकांशतः शब्द शक्तियों का विवेचन शास्त्रीय ग्रंथों या पाठ्यक्रम के लिए लिखी गई छात्रोपयोगी पुस्तकों में ही स्थान प्राप्त करते है। सामान्यतः साधारण आलोचक अपनी आलोचना में उन्हें कम ही स्थान देते है। आज तो सौन्दर्य निर्देशन में पाठक अपने दृष्टिकोण से काव्य का विवेचन करता हैं और उसमें बंधी बंधाई परिपाटी को कम ही स्थान दिया जाता है। संस्कृत के प्रभाव के कारण काव्य शास्त्री ग्रंथों का प्रणयन भी होता रहता है।

काव्य-शास्त्र—

अधिकांशतः पाठ्यक्रम के लिए अलंकारों और काव्य शास्त्र पर पुस्तकों का

१—वेष विन्यास क्रम प्रवृत्ति विलास विन्यास क्रमोवृत्ति वचन विन्यास क्रमोरीति।

२—१।२।७–८।

३—डा० मनोहर काले रीति सम्प्रदाय का विवेचन। आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्य शास्त्रीय अध्ययन तथा डा० नगेन्द्र–हिन्दी काव्यालंकार सूत्र वृत्ति भूमिका पृष्ठ ५६।

प्रणयन किया जाता है। इनमे सरल रूप से शास्त्रीय बातो, सम्प्रदायो और अलकारो को समझाने के प्रयत्न किए जाते हैं। अलकारों की ऐसी पुस्तको मे बहुधा उन अलकारों को उपयोग म लिया जाता है जो पाठयक्रम म निर्धारित होते हैं। डा० शभूनाथ पांडेय कृत रस अलकार विधान इसका ज्वलन्त उदाहरण है उन्होने भूमिका म कहा है कि पुस्तक विद्यार्थियो के लिए बनाई गई। उसके संशोधित संस्करणो म भी इसी बात का ध्यान रखा गया है। भारतीय सिद्धान्तो को समझाने का प्रयत्न सुधांशुजी ने भी किया है। इस सम्बन्ध म मौलिकता और प्रगाढ पूर्ण ग्रन्थ हैं डा० रामशकरजी शुक्ल रसाल के। आपने मौलिकता और गवेषणा पूर्ण विधि स अलकारो पर अलकार पियुष-पूर्वार्ध और उत्तरार्ध म, प्रकाश डाला है, वहाँ पर शास्त्रीय दृष्टि म भारतीय अलकारों पर विद्वता पूर्ण दृष्टि से काम लिया गया है। डाक्टर साहब ने विषय पर अत्यन्त गहराई स स्लाघनीय विचार किया है जिसस य ग्रन्थ साहित्य की अमूल्य निधि बन गए हैं। डा० भागीरथ मिश्र ने काव्य शास्त्र के विकास पर मौलिकता पूर्ण विचार प्रकट किए हैं।

कई विद्वानो ने पारिभाषिक शब्दो को सरल और सुबोध शब्दो म समझाने का प्रयत्न किया है। राजेन्द्र द्विवेदी कृत साहित्य शास्त्र का पारिभाषिक शब्द कोश इसका प्रमाण है। इसम लेखक ने शास्त्रीय शब्दो के अर्थ देकर उदाहरण प्रस्तुत करने का सुन्दर प्रयास किया है। इसकी एक विशेषता यह भी है कि इसम यथा सम्भव हिन्दी के-अधिकांशत जहाँ तक बन पडा आधुनिक हिन्दी के उदाहरण दिए गए हैं। इसके साथ ही सस्कृत अंग्रेजी और अन्य भाषाओ का भी इसमे समुचित उपयोग किया है।

सस्कृत का प्रभाव कभी कभी तो नाम लिखने की शैली पर तक दिखाई देता है। उदाहरण के लिए लिखा जाता है—श्री युत आर० ए० रिचर्डस श्री युत् कौन वृक आदि इसके उदाहरण हैं। जब नाम भी इस प्रणाली म ढाले जाते हैं तो छन्द पर इस शैली का प्रभाव अवश्यभावी है।

छन्द विवेचन—

हिन्दी म काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों में सस्कृत के मात्रिक और वर्णिक छन्दो

गा व्याख्या२ भी की जाती है।[1] इस ओर डा० राम शंकरजी शुक्ल ने सराहनीय कार्य किया है। इन्होंने अपने छन्द विवेचन में शास्त्रीय पक्ष का सुन्दर और मौलिक विवेचन किया है। डा० पुत्तूलाल का शोध प्रबंध भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय है। ('प्रिय प्रवास' में संस्कृत के अनुकूल वर्णित छन्दों का अपनाया गया और 'भूमिका' में उनका सांगोपांग समर्थन भी किया गया।) यहाँ भी यह उल्लेखनीय है कि इस विवेचन का समर्थन अंग्रेजी में प्राप्य भिन्नतुकान्त छन्द (ब्लैंक वर्स) से किया गया। अतएव संस्कृत के नियमों को हिन्दी में अपनाया जाता है तो उनका समर्थन पाश्चात्य साहित्य द्वारा करवाया जाता है।

संस्कृत प्रभाव—

हिन्दी आलोचना में संस्कृत के तत्वों का सन्निवेश करने की आकांक्षा प्रकट की जाती है। आज भी भारतीय शास्त्रीय तत्वों और पद्धतियों का सम्मान किया जाता है।[2] इसी भाँति यह भी कहा जाता है कि पश्चिम की चिन्तन प्रणाली स्वभावतः ही कुछ उच्छिन्न है, भारतीय चिन्तन अपेक्षाकृत अधिक सश्लिष्ट और तर्कसंगत है।[3] ग्रन्थों के प्रारम्भ में भी संस्कृत के श्लोकादि उद्धृत किए जाते हैं।[4] यह भी कहा जाता है—'इस भाग में लेखक ने साहित्य की लगभग सभी प्रमुख विधाओं के शास्त्रीय स्वरूप का निरूपण किया है।[5]' प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन आलोचकों के शास्त्रीय विधान और आकृष्ट होने का प्रत्यक्ष प्रमाण है।[6]

१—डा० गोविन्द त्रिगुणायत—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त पृष्ठ १२।

२—डा० भगवत स्वरूप—हिन्दी आलोचना का उद्भव और विकास पृष्ठ ३३२।

३—वही पृष्ठ ३७५।

४—क—डा० गोविन्द त्रिगुणायत—शास्त्रीय समीक्षा का सिद्धान्त।
ख—डा० भागीरथ मिश्र—हिन्दी काव्यशास्त्र का विकास।

५—डा० गोविन्द त्रिगुणायत—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त I। II

६—डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा—विरचित शोध प्रबन्ध।

साहित्यिक विधाएँ

आलोचनाएँ—

साहित्य की और साहित्य की विभिन्न विधाओं की आलोचना करते समय संस्कृत वाङमय का सहारा लिया जाता है। विभिन्न साहित्यिक विधाओं और प्रयोगों को रस, गुण, दोष, रीति ध्वनि और वक्रोक्ति आदि की दृष्टि से देखा जाता है। साथ ही इन सब से प्रबल रूप से रहता है भारतीय आदर्श और नैतिकता का। जो वस्तु व्यापार और तथ्य हमारी संस्कृति और साहित्य के प्रतिकूल होते हैं उन्हें हेय और अनुपयुक्त माना जाता है। उदाहरण के लिए मंच पर नायिका का चुम्बन या संस्कृति के प्रतिकूल हो भाव प्रदर्शन आदि।

कविता—

कविता की आलोचनाओं में भी रस आदि का उल्लेख किया जाता है कहीं-कहीं तो रस अलंकार आदि के उदाहरण विस्तार पूर्वक दिए जाते हैं।[1] पण्डित धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी ने महाकवि हरिऔध और प्रिय प्रवास में संस्कृताचार्यों के शास्त्रीय लक्षणों का विवेचन कर उन तत्वों पर कवि और काव्य का परीक्षण किया है। शास्त्रीय दृष्टि से शब्द की व्याख्या भी की जाती है— "कविता रमणीयार्थ प्रतिपादक"[2] काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों का प्रभाव इस रूप में भी देखा जाता है कि अलंकार सम्बन्धी ग्रन्थों में सभी के मत उद्धृत करने का प्रयास किया जाता है।

भाव—

जिस प्रकार डाक्टर श्यामसुन्दर दास ने साहित्यालोचन में संस्कृत आचार्यों द्वारा दी गई भाव की परिभाषा को प्रस्तुत किया, उसी प्रकार सेठ कन्हैया लाल पोद्दार ने भाव के सम्बन्ध में साहित्य दर्पण के आधार पर अपने विचार व्यक्त किए।[3] डा० गुलाबराय ने भी साहित्यिक भाव को "इमोशन" से भिन्न माना है।

१—पण्डित रामनरेश त्रिपाठी—अलंकार निरूपण।
२—राजेन्द्र द्विवेदी—साहित्य शास्त्र कोश पृष्ठ ६५।
३—डा० गोविन्द त्रिगुणायत—शास्त्रीय आलोचना सिद्धान्त, भाग १ पृष्ठ ८०।

जो संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल है।[१] वे कहते हैं—

"साहित्य के भाव मनोविज्ञान के भावों से भिन्न होते हैं। ये भाव मन के उन विकार को कहते हैं जिनमें सुख-दुःखात्मक अनुभव के साथ क्रियात्मक प्रवृत्ति भी रहती है।"

जिस प्रकार से भावों का विवेचन किया जाता है, उसी प्रकार से स्थाई भाव भी आलोचना की सामग्री रहे हैं।[२]

स्थाई भाव—

इस युग में भी स्थाई भावों, आलंबन और उद्दीपन विभावों, सात्विक आदि अनुभावों और संचारियों का विवेचन मिलता है। आधुनिक भाषाओं में इनका तुलनात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया जाता है। ये अंग्रेजी प्रभाव के कारण दब अवश्य गए हैं किन्तु पूर्ण रूपेण मिट नहीं गए हैं।

अनुभाव—

संस्कृत साहित्य में अनुभाव को कायिक, मानसिक आहार्य और सात्विक भेदों में विभाजित किया गया है। रामदहिन मिश्र और अन्य कई परीक्षोपयोगी पुस्तकें लिखने वालों ने इन्हें ज्यों का त्यों स्वीकार किया है।

संचारी—

डॉ० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने संचारियों को संस्कृत के अनुकूल व्यापक अर्थ में ग्रहण किया है। उन्होंने परम्परागत संचारियों को मनोविकार नहीं माना है। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक शब्दावली से शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों की भिन्नता परम्परा पालन की प्रतीक है। इनका विवेचन करते हुए संस्कृत के उदाहरण बहुतायत से दिए जाते हैं।

१—डॉ० गुलाबराय—सिद्धान्त और अध्ययन पृष्ठ २१५।
२—डॉ० मनोहर काले—आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्य शास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ ८५।

रस --

कन्हैयालाल पोद्दार तथा रामदहीन मिश्र ने मम्मट, विश्वनाथ और अभिनव गुप्त के अनुसार रस को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा है । पण्डित केशव प्रसाद मिश्र ने मधुमति भूमिका और साधारणीकरण का स्पष्टीकरण करते हुए रस को परप्रत्यक्ष की स्थिति के कारण आनन्द परक ही माना है । डॉ० श्यामसुन्दर दास ने भी रस को ब्रह्मानन्द सहोदर कहा है । डा० भगवान दास ने रस के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए संस्कृत काव्यशास्त्र का आधार लिया है । डॉ नगेन्द्र ने रस और भावों की भिन्नता प्रकट करते हुए रसास्वादन से उत्पन्न आनन्दानुभव को स्पष्ट किया है यहाँ यह उल्लेखनीय है कि डॉ० नगेन्द्र ने आनन्दानुभूति का जो विश्लेषण किया है वह तर्कसंगत और वैज्ञानिक है । डा० गुलाब राय भी आनन्द दायक रस के समर्थक हैं । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हृदय की मुक्त अवस्था को स्पष्ट करते हुए रस को ब्रह्मानन्द सहोदर सिद्ध किया है । इन आचार्यों में शुक्ल जी की विवेचन प्रणाली संस्कृत काव्यशास्त्र की भावमय परम्परा के अनुकूल है जो रस को भाव का पर्याय मानती है । इनके अतिरिक्त डॉ० भगवानदास, डॉ नगेन्द्र और डा० गुलाबराय प्रभृति आलोचक रस को भाव से भिन्न मानते हैं । यह परम्परा आनन्द वर्धन, अभिनव मम्मट तथा विश्वनाथ के अनुकूल है । इन आचार्यों ने संस्कृत की रस निष्पत्ति को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है जिसमें इनकी मौलिकता, स्पष्टीकरण और विषय विवेचन में दिखाई देती है ।

रस- "सुख दुखात्मक'—

डा० मनोहर काले ने संस्कृत के उद्धरण उद्धृत करते हुए यह बताया है कि संस्कृत शास्त्रों द्वारा रस का स्वरूप सुख दुखात्मक माना गया था और अभिनव गुप्त या आनन्द वर्धन से रस की आनन्द वादी परम्परा का उदय हुआ ।[1] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि नाटय शास्त्र के उद्धरणों[2] से यह तो सिद्ध होता है कि नाटक सुख-दुख समन्वित स्वरूप को प्रदर्शित करते हैं किन्तु यह सिद्ध नहीं होता कि फलागम होने पर, रस निष्पत्ति होने पर भी ब्रह्मानन्द सहोदर

१—डा० मनोहर काले—आधुनिक हिन्दी मराठी काव्य शास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ ९९–१०० ।
२—वही ।

रस प्राप्त नहीं होता था। इनका विवेचन संस्कृत उदाहरणों पर अवलंबित अवश्य ही है। इस प्रकार ये संस्कृत काव्यशास्त्र के प्रभाव से मुक्त नहीं है।

रस सिद्धान्त की व्यापकता और उसके महत्व को आज भी प्रतिपादित अवश्य ही किया जाता है। इसके साथ ही केवल बौद्धिक काव्य को कई आलोचकों ने काव्य की संख्या नहीं दी है।[१]

रस संख्या—

इस युग में जबकि रस संख्या में वृद्धि होने लगी श्री जगन्नाथ भानु ने तब भी परम्परागत रसों को ही मान्यता दी थी। बिहारीलाल भट्ट ने उनमें परम्परा से चल आने वाले भक्ति रस को ही जोड़ा है। ये कुछ उदार से बन गये हैं। कन्हैया लाल पोद्दार ने रस मंजरी में नौ रसों को ही मान्यता दी थी किन्तु समय के साथ वे भी परिवर्तित हुए और हिन्दी साहित्य कोश में उन्होंने भक्ति को पृथक रस माना। आचार्य श्यामसुन्दर दास ने परम्परा का ही निर्वाह किया—उन्होंने शान्त रस सहित नौ रस माने हैं। इन्होंने समयानुकूल आन्तरिक विकास किया है यथा—रती या राग में प्रकृति प्रेम अतीत का प्रेम आचार्य के प्रति श्रद्धा पिता के प्रति प्रेम, देश प्रेम और मित्र प्रेम को भी स्थान दिया है। डॉ० गुलाबराय भी परम्परा के अनुकूल रहने का प्रयत्न करते हैं किन्तु साथ ही ये वात्सल्य रस को भी स्वीकार कर लेते हैं। इन आचार्यों ने रसास्वाद पर भी अपने विचार व्यक्त किए हैं। रसास्वाद का विवेचन इन्हें परम्परानुकूल घोषित करता है।

रसास्वाद—

श्री कन्हैयालाल पोद्दार श्री रामदहिन मिश्र और पण्डित केशव प्रसाद मिश्र ने रस निष्पत्ति का विवेचन शास्त्रानुकूल किया है। श्री कन्हैया लाल

१—डा आनन्द प्रकाश दीक्षित — रस सिद्धान्त स्वरूप और विश्लेषण।

२—रस मीमांसा पृष्ठ २७१ २७२।

अभिनव गुप्त और मम्मट की मान्यताओं के समर्थक रहे हैं। इन्होंने रसानुभूति को आनन्दमय माना है।[1] रामदहिन मिश्र और केशव प्रसाद मिश्र ने रस को आनन्द स्वरूप कहा है। शुक्लजी ने परम्परागत भावों को ग्रहण करते हुए अपनी मौलिक मान्यताएं स्थापित की हैं। उन्होंने साधारणीकरण का अर्थ आलम्बन के प्रति सभी सामाजिकों में एक ही भाव की निष्पत्ति माना है।[2] आश्रय और सहृदय के भावों का पूर्ण तादात्म्य में साधारणीकरण की अवस्था में होता है।[3] आचार्य श्याम सुन्दर दास जी ने मधुमति भूमिका के सहारे साधारणीकरण का विवेचन किया है।[4] डॉ० नगेन्द्र ने रस स्वरूप आनन्दमय माना है। इनका रसास्वादन को भाव से भिन्न मानना इनकी अपनी मान्यता है।

रस सिद्धान्त के विभिन्न पक्षों का विवेचन भी आज किया जाता है। उदाहरणार्थ—रस सिद्धान्त का आरम्भ और विकास दिखा कर उसके अन्तर्गत उठने वाले प्रश्नों का समाधान किया जाता है।[5] अतएव यह शास्त्रीय समीक्षा के अनुकूल है। परम्परागत दृष्टि से हिन्दी साहित्य को ध्यान में रखते हुए कतिपय आलोचकों ने भक्ति को रस स्वीकार किया है। इसे भी उसी प्रकार आलम्बन उद्दीपन आदि भाव-अनुभावों की कसौटी पर कसा जाता है। डॉ० गुलाब राय ने भक्ति रस का समर्थन किया है।[6]

रसाभास संस्कृत के परिपार्श्व में—

संस्कृत शास्त्रों के अनुसार आज भी रस के गुण और दोषों की जहाँ

१—रस मञ्जरी—पृष्ठ १७४ १७६।
२—चिन्तामणि—पृष्ठ २४६।
३—वही—पृष्ठ २३०।
४—साहित्यालोचन—पृष्ठ २३८।
५—डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित—रस सिद्धान्त स्वरूप और विश्लेषण—प्राक्कथन।
६—सिद्धान्त और अध्ययन एवं डा० भागीरथ मिश्र, विरचित काव्यशास्त्र पृष्ठ २६१—२७०।

को भी अपनाया है।[१] डा० मनोहर काले ने अलकारो के विवेचन की चर्चा करते हुए सस्कृत आचार्यों के समान वक्रोक्ति और अतिशयोक्ति को प्राय सभी अलकारो के मूल म माना है।[२] हिन्दी म सस्कृत के अनुकूल सकर ससृष्टि और उभयालकारो का भी विवेचन किया गया है।

सस्कृत आचार्यों के समान हिन्दी म भी अलकारो के अर्न्तभाव का प्रयत्न किया गया है। ऐसा काय मुरारी दान ने भी किया था। इसी भाँति जगन्नाथ प्रसाद भानु म भी अ तर भाव की प्रवृत्ति दिखाई दी।[३] मिश्र ब धुओं न भी कई अलकारों की सख्या को कम करन का आदेश दिया। उ होन सस्कृत के साथ ही अ ग्रेजी के तक को भी अपनाया। य कहते है कि चमत्कारहीन और व्यग प्रधान अलकारा को हटा दना चाहिए।[४] अजु नदास केडिया और उत्तमच द भण्डारी ने भी अलकारा का कम करने का प्रयत्न किया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उत्तमच द भण्डारी ने अलकार आशय[५] में वैण सगाई को नवीन अलकार की सज्ञा दी, कि तु यह तो राजस्थानी का अत्यन्त प्रिय और प्राचीन अलकार रहा है। इसके सम्ब ध म कहा जाता है—

'वरण सगाई बालिवो पोखीजे रस पोख
हीम हुता सन बोल में दीसे हेक न दोष।'

हिन्दी मे अलकारा की वैज्ञानिक और ऐतिहासिक एव अधिकार पूण सस्कृत पृष्ठभूमि पर आधत विवेचना डॉ० रामचद्र जी शुक्ल रसाल ने अपन अलकार पीयूष म की है। उ होंने अलकारो के गाम्भीय विवचन को स्थान दिया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक युग म भारतीय विद्वानो ने अलकारो का सम्यक विवेचन किया है।

१—अलकार मजरी–पृष्ठ ४३७—४४२।
२—डा० मनोहर काले—आधुनिक हि दी मराठी में का य शास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ ३३४।
३—का य प्रभाकर–पृष्ठ ५२२ नवम् मयूख।
४—साहित्य पारिजात भूमिका—पृष्ठ ३३।
५—भारती भूषण–पृष्ठ १४।

रीति विवचन और शैली—

विहारी लाल [१], कन्हैयालाल [२], सीताराम [३], मिश्र बन्धुओ [४] और रामदहिन मिश्र [५] ने संस्कृत के परिपार्श्व में रीति विवेचन किया। डॉ० गुलाब राय आचार्य नन्ददुलारे बाजपेयी और नगेन्द्र तथा सुधांशुजी ने संस्कृत रीति सिद्धान्त की स्टाइल से तुलना भी की। विहारीलाल भट्ट ने साहित्य दर्पण की सी परिभाषा दी और कहा—

"कविता में पद अर्थ की सगटना अति होय
तो न सरस समुदाय का रीति कहत कविताय।[६]

कन्हैयालाल पोद्दार ने विशेष प्रकार की माधुर्यादिगुण युक्त पदों वाली रचना को रीति की संज्ञा देकर वामन के प्रभाव की सूचना दी।[७] रामदहिन मिश्र ने कहा है कि शब्दार्थ शरीर काव्य के आत्मभूत रसादि का उपकार करने वाली जो विशिष्ट रचना है उस रीति कहते हैं। इस पर 'शब्दार्थ और शरीरम्" और विशिष्ट पद रचना रीति" का प्रत्यक्ष प्रभाव है। आलोचकों ने इसे वामन और ध्वनि रस वादियों की परिभाषाओं का समन्वय कहा है।[८] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रीति का सम्बन्ध नाद से ठहराया है और रसों के अनुकूल वर्ण चयन की ओर भी सकेत किया है।[९]

१—साहित्य सागर।

२—रस मजरी एव संस्कृत साहित्य का इतिहास।

३—साहित्य सिद्धान्त।

४—साहित्य पारिजात।

५—काव्य दर्पण।

६—साहित्य सागर—पृष्ठ ३८३।

७—संस्कृत साहित्य का इतिहास—पृष्ठ १०७।

८—आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्य शास्त्रीय अध्ययन—पृष्ठ ४२१।

९—चिन्तामणि द्वितीय भाग—पृष्ठ ४२५।

इसमे भरत, वामन, रुद्रट आदि की प्रतिध्वनि सुनाई देती है। रस के अनुकूल रीति का वर्णन किया गया है।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि आज रामदहिन मिश्र और शुक्ल जी की इन विशेषताओ को विवेचन करते हुए यह कहा जाता है कि—

'परन्तु इन्होंने (मिश्रजी) इस तथ्य पर प्रकाश नही डाला कि 'रीति' रस की उपकारक किस प्रकार से बनती है।[1]

एव—

कोमल और कठोर वर्णों मे किस प्रकार कोमल, शृगार, करुण आदि तथा कठोर–रौद्र भयानक आदि रसो की परिपुष्टि होती है, इसका इन्होने अपनी परिभाषा मे स्पष्टीकरण नही किया है।[2]

तथ्य यह है कि रामदहिन और शुक्लजी प्रभृति आलोचक सस्कृत की जिन बातो को सर्व सम्मत या सुस्पष्ट मानते थे उनका उल्लेख वे नही करते थे। उपयुक्त तथ्यो पर मिश्रजी और शुक्ल जी का प्रकाश न डाला जाना इसी बात की पुष्टि करता है। उन्होने सस्कृत के आचार्यों द्वारा दिए गए तर्कों का पिष्ट पेषण नही किया है। श्री बलदेव उपाध्याय एव आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी तथा डा० सुशीलकुमार दे ने भी सस्कृत रीति का ऐतिहासिक विवेचन किया है।[3] अधिकाशत कई आलोचको ने रीति को ध्वनि रसवाद मे परिवर्तित दिखाया है। आज शास्त्रज्ञ ही नही, अन्य आलोचक भी सस्कृत के विस्तृत गुणो का विवेचन करते है। कही कही पाद टिप्पणियों मे भी इन पर प्रकाश डाला जाता है। रीति की भाँति गुण विवेचन भी आलोचना के विषय रहे हैं।

गुण विवेचन—

अधिकाशत गुण विवेचन मे भी विवेचको ने सस्कृत नियमों को

१—आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्य शास्त्रीय अध्ययन –पृष्ठ ४२१।
२—वही –पृष्ठ ४२२।
३—नया साहित्य नये प्रश्न–पृष्ठ १०६ ११२।

अपनाया है। वे उन्हें बहुधा ज्यों का त्यों ग्रहण कर लेते हैं जिस पर कई बार आपत्ति भी उठाई जाती है।[१] आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने गुण और रस का अन्वय व्यतिरेक सम्बन्ध स्थापित किया है।[२] डा० श्यामसुन्दर दास ने शास्त्रीय गुणों का विवेचन करते हुए उन्हें तर्क की दृष्टि से रीति और वृत्तियों के साथ सम्बन्धित बताया है।[३] डॉ० गुलाबराय ने गुण विवेचन में संस्कृत और अंग्रेजी दोनों ही काव्य शास्त्रों पर दृष्टि रखी है। बलदेव उपाध्याय ने संस्कृत के आचार्यों की धारणाओं का उल्लेख करते हुए अपना मत प्रदान करने का भी प्रयत्न किया है। हिन्दी में भामह आनन्द वर्धन अभिनव गुप्ताचार्य और मम्मट के अनुकूल ओज माधुर्य और प्रसाद को ही स्वीकार किया है। डा० नगेन्द्र ने उपर्युक्त तीनों गुणों को समझाने का प्रयत्न किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि आधुनिक काल में गुण विवेचन भी आलोचना की सामग्री रहे हैं जो हिन्दी आलोचना पर संस्कृत के प्रभाव के प्रतीक हैं। गुणों के समान दोषों की ओर भी आलोचकों ने दृष्टिपात किया है।

दोष विवेचन—

अधिकांशतः दोषों का विवेचन करते समय संस्कृत के दोषों का विवरण मात्र सा दिया जाता है। कन्हैयालाल पोद्दार अयोध्यासिंह उपाध्याय और रामदहिन मिश्र के ग्रंथ इसके साक्षी हैं। आचार्य श्री नन्द दुलारे वाजपेयी ने गुणमत व्याख्यान के साथ दोषों की विवेचना करते हुए संस्कृत आचार्यों की प्रवृत्तियों का सुन्दर और सुगम रूप से उल्लेख किया है।[४] श्री बलदेव उपाध्याय ने भी संस्कृत के दोष विवेचन पर दृष्टिपात किया है। डॉ नगेन्द्र ने काव्यशास्त्र के अन्य अंगों के समान दोषों की भी मनोवैज्ञानिक व्याख्या की है।[५] [६] इन्होंने मूल रूप में

१—आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्य शास्त्रीय अध्ययन—पृष्ठ ४३१।
२—वही—पृष्ठ ४३२।
३—साहित्यलोचन—पृष्ठ २५८ २५९।
४—नया साहित्य नये प्रश्न—पृष्ठ ११२।
५—हिन्दी काव्यालंकार सूत्र—पृष्ठ २४ से ८४।
६—भारतीय साहित्य - सूत्र—पृष्ठ ७१।

में रस और गौण रूप से गुण और रस के आवरक तत्वों का दोष मना से अभिहित किया है।

ध्वनि

संस्कृत के परिपार्श्व में—

कन्हैयालाल पोद्दार ने और रामदहिन मिश्र ने संस्कृत आचार्यों के अनुकूल ध्वनि विषयक विवेचन प्रदान किया है। रामदहिन मिश्र पाश्चात्य शास्त्रकारों के भी मत उद्धृत किए हैं। इन्होंने ध्वनिकार की धारणाओं को उपयुक्त सिद्ध किया है। शुक्लजी ने रस को व्यंजना का परिणाम माना है। डॉ० गुलाबराय ने ध्वनि का शास्त्रीय विवेचन किया है। इन्होंने ध्वनि की कल्पना का अन्तर भाव दिखाया है। ये अंग्रेजी से आये हुए सामंजस्य के परिपार्श्व में कल्पना का प्रभाव है। डॉ० नन्द दुलारे वाजपेयी ने ध्वनि विवेचन संस्कृत के अनुकूल किया है। डॉ० नगेन्द्र ने इस पर मनोविज्ञान की छाप बनाई और कल्पना तत्व को भी महत्व दिया। डॉ० भोला शंकर व्यास ने संस्कृत आचार्यों की मान्यताओं का स्पष्टीकरण किया। इन्होंने व्यंजना को काव्य की कसौटी माना और आचार्य जगन्नाथ के अनुकूल रस ध्वनि को ही उत्तमोत्तम घोषित किया है।[1]

जैसे कि पहले कहा जा चुका है कि रामचन्द्र शुक्ल ने वाक्यार्थ में काव्य की रमणीयता सिद्ध की है।[2] उन्होंने वाच्यार्थ के अनुपपन्न और अयोग्य होने की अवस्था को लक्षणा और व्यंजना की जननी माना है। अतएव शुक्लजी के मत में जहाँ अर्थ के अनुपपन्न और अयोग्य होने की वे बात कहते हैं वहाँ लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ की स्थिति स्वतः सिद्ध है। यह तो कथन का अन्तर मात्र है जैसा कि प्रसाद जी ने जनमेजय का नाग यज्ञ में दिन के अभाव को ही रात्रि कहा है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि शुक्लजी की यह धारणा परम्परागत व्यंग्यार्थ और लक्ष्यार्थ विरोधिनी न होकर उनके सत्य की खोज के प्रयास की द्योतक है। उन्होंने एक महामत्य के द्वारा कि अभिधा से वाच्यार्थ और उसके अभाव में लक्ष्यार्थ और

1—ध्वनि सम्प्रदाय और उसके सिद्धान्त—पृष्ठ ३५८।
2—चिंतामणि—द्वितीय भाग—पृष्ठ १८३।

व्यंगार्थ की स्थिति रहती है, इसकी जागरूकता पूर्वक अभिव्यक्ति की है।[१] डा० गुलाबराय ने अभिधा व्यंजना और लक्षणा में चमत्कार की सम्भावना प्रकट की है। डा० नगेन्द्र ने ध्वनि और रस के परस्पर सम्बंध को अविच्छिन्न सिद्ध किया है। इन्होंने मनोवैज्ञानिक और अंग्रेजी आलोचना के कल्पना तत्व का महत्व देकर ध्वनि को कल्पना से और रस को अनुभूति से सम्बन्ध सिद्ध किया है। ध्वनि की भाँति वक्रोक्ति सिद्धांत भी आलोचना का विषय रहा है।

वक्रोक्ति सिद्धांत

वक्रोक्तिवादी आचार्य भामह ने वक्रोक्ति को अलंकारों का मूल माना था। रीतिवादी वामन ने वक्रोक्ति को एक अलंकार मात्र कहा है। रुद्रट ने भी इसे एक अलंकार मात्र कहा है और काकु वक्रोक्ति और भंग वक्रोक्ति नामक भेदों में बाँटा है। आचार्य कुंतक ने भी इस व्यापक धरातल पर स्थापित किया और वक्रोक्ति काव्य जीवित की स्थापना की। इन्होंने रस का स्थान वक्रता का ही प्रकार माना। इनके पश्चात् मम्मट विश्वनाथ आदि ने इसे केवल अलङ्कार ही माना। मम्मट ने शब्दालंकार कहा तो रुय्यक और अप्पयदीक्षित ने अर्थालंकार। संस्कृत के रसवादी आचार्यों के समान हिन्दी में वक्रोक्ति को अलंकार माना जाता है। कविराज मुरारीदान जगन्नाथ प्रसाद भानु केडिया जी मिश्रबन्धु और रामदहिन मिश्र ने इसे एक अलंकार ही माना है। भूषण और जसवंतसिंहजी ने इसे अर्थालंकार माना है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रस को महत्ता दी है। साथ ही शुक्ल जी ने क्रोचे के अभिव्यंजनावाद के साथ इसका विवेचन भी किया है। डा० नगेन्द्र ने इसका विवेचन मनोविज्ञान के संदर्भ में किया है। सुधांशु जी ने अभिव्यंजनावाद और वक्रोक्तिवाद के भेद को स्पष्ट किया है।[२] डा० नगेन्द्र ने तो स्पष्ट रूप से कहा है कि रस में वक्रता और विशेष रूप से कुंतक प्रतिपादित वक्रोक्ति का अभाव हो ही नहीं सकता। इस प्रकार इन्होंने संस्कृत की धारणाओं को हिन्दी में उपयुक्त स्थान दिया

१—डा० रामलालसिंह—आचार्य शुक्ल की समीक्षा सिद्धान्त-पृष्ठ २३१।
२—आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्य शास्त्रीय अध्ययन-पृष्ठ ५४३ ५७४ ५७५।

है। अब तो यह भी कहा जाता है कि उपमा आदि अलंकार, माधुर्य आदि गुण गौडी पाँचाली आदि रीतियाँ, श्रृंगारादि रस और औचित्य वक्रता के सभी तत्व वक्रता के ही प्रकार हैं। इनके सब व्यापी सिद्धान्त की कुन्तक ने प्रतिष्ठापना की है।[१]

निष्कर्ष—

अतएव हिन्दी में अधिकांशतः वक्रोक्ति का विवेचन रसवादी आलोचकों के समान ही किया गया है फिर भी कभी कभी उसकी व्यापकता पर भी दृष्टिपात किया जाता है। साथ ही अंग्रेजी प्रभाव के कारण तुलना की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है और क्रोचे के अभिव्यंजनावाद से इसका साम्य, वैषम्य भी दिखाकर जाता है। इसके विवेचन में अंग्रेजी के काव्य व्यापार का भी उपयोग किया जाता है। डा० नगेन्द्र ने रस को काव्य की आत्मा मानते हुए कुन्तक की वक्रोक्ति के अभाव में रस निष्पत्ति सन्दिग्ध मानी जाती है।[२] इन्होंने पाश्चात्य काव्यालोचन में प्रचलित कल्पना तत्व को भी हिन्दी में स्थान दिया है। इसके समान ही औचित्य सिद्धान्त भी विवेचन की सामग्री रहा है।

औचित्य सिद्धान्त

औचित्य सिद्धान्त के प्रतिष्ठापक थे, आचार्य क्षेमेन्द्र। भरत मुनि ने भी लोक चरित के अनुकूल रहने का आदेश दिया।[३] आचार्य क्षेमेन्द्र ने वस्तु स्वरूप के तत्सदृश चित्र को ही उचित घोषित किया।[४] रस के लिए उन्होंने औचित्य को अनिवार्य घोषित किया। आनन्दवर्धन ने क्षेमेन्द्र से पूर्व ही यह घोषणा कर दी थी कि अनौचित्य से बढ़ कर कोई काव्य रस भंग नहीं है।[५] महिम भट्ट ने अनौचित्य दोष को दो भागों में बाँटा है।

१—काव्यालोचन—पृष्ठ १०१।

२—डा० नगेन्द्र—वक्रोक्ति विवेचन-पृष्ठ ५५६।

३—नाट्य शास्त्र अध्याय १४ श्लोक ७०।८२, अध्याय २६ श्लोक ११३-११६।

४—औचित्य विचार चर्चा—७

५—ध्वन्यालोक—३।७-६।

क—अन्तरंग —रस भावों से सम्बन्धित।
ख—बहिरंग —शब्दों से सम्बन्धित।

क्षमेन्द्र का कथन है कि रस से काव्य सिद्ध होता है और औचित्य उसमें चिर स्थाई जीवन प्रदान करता है शृंगार आदि रसों से भरपूर काव्य का औचित्य वस ही जीवन है ।[१]

हिन्दी में बलदेव उपाध्याय और डा० मनोहर लाल गौड़ ने इसका सर्वांगीण अध्ययन किया है। डा० नगेन्द्र ने भी औचित्य और वक्रोक्ति का तुलनात्मक अध्ययन किया है। बलदेव उपाध्याय ने पाश्चात्य आलोचना के साथ औचित्य का ऐतिहासिक विवेचन किया है। इन्होंने रस की आस्था का कारण औचित्य को माना है, जो संस्कृत की शास्त्रीय धारा के अनुकूल है।[२] औचित्य को जब हम अंतरंग और बहिरंग दोनों ही दृष्टियों से देखते हैं तब यह पाश्चात्य आलोचना से आये हुए रियलिज्म के अनुकूल ही नहीं अपितु उससे भी अधिक गहरा दिखाई देता है। पाश्चात्य जगत में तो वह केवल पुरातन को तोड़ मरोड़ कर अथवा निम्न वर्ग का अपना कर ही सामने आता है, परन्तु भारतवर्ष में शताब्दियों पूर्व औचित्य सिद्धान्त ने जीवन के अनुकूल रहने की शिक्षा दी। इसमें औचित्य का ध्यान कवि और सामाजिक दोनों की दृष्टियों से रखा जाता है। 'जोइन' ने सौन्दर्य को मथोडिकल, लौजिकल और एप्रोप्रियेट नामक भागों में विभाजित किया है। भारतीय औचित्य सिद्धान्त इन तीनों का समन्वित स्वरूप कहा जा सकता है। डॉ० उन्होंने गौड़ ने औचित्य की अन्य सम्प्रदायों से तुलना की है।[३]

अतएव निष्कर्ष कहा जा सकता है कि भारतवर्ष में आज भी औचित्य सिद्धान्त का अध्ययन किया जाता है और यदि उसका पालन किया जाय तो साहित्यिक दृष्टि से हमें लाभ होगा—साहित्य निम्न वर्ग का ही प्रतिनिधि मात्र बनने से बच जायेगा।

१—डा० मनोहर लाल गौड़—आचार्य क्षमेन्द्र औचित्य विचार चर्चा पृष्ठ ३।
२—डा० बलदेव उपाध्याय—भारतीय साहित्य शास्त्र, द्वितीय भाग पृष्ठ ३१ से ३८।
३—आचार्य क्षमेन्द्र—औचित्य विचार चर्चा—पृष्ठ २८, ३०, २८, ५६।

अंग्रेजी परिपार्श्व में—

जिस प्रकार से संस्कृत आलोचक वर्गीकरण की आकांक्षा रखता था और सूक्ष्म वर्गीकरण हमारी प्राचीन आलोचना पद्धति की मेरुदण्ड था उसी प्रकार से अंग्रेजी प्रभाव के कारण आज का आलोचक वर्गीकरण को हेय मानता है।[1, 2]

अंग्रेजी आलोचकों के समान हिन्दी आलोचक भी अदम्य मौलिक और पूर्ण रूपेण नवीन वस्तु या विद्या की आकांक्षा रखते हैं। नई आलोचना के समर्थक पाठकों पर यह आतंक जमाना चाहते हैं कि एक हम नई और अभूतपूर्व वस्तु प्रदान कर रहे हैं।[3] आधुनिक आलोचना में इस तथ्य की ओर संकेत भी किया जाता है। यह कहा जाता है कि साहित्य और कला की परख का दायित्व भी दिन दिन विशिष्ट होता जा रहा है, क्यों कि इन की बहुमुखी प्रगति हो रही है और ऐसे समय इस दायित्व को न समझना और उसको स्थगित कर देना एक प्रकार का विश्वासघात होगा।[4] अब तो यह स्वीकृत सा हो गया है कि स्थायित्व आये हुए दृष्टिकोण से साहित्य की न तो प्रगति हो सकेगी और न उसका मूल्यांकन ही किया जा सकेगा।[5]

अंग्रेजी भाषा के माध्यम से अन्य भाषाओं—रूसी, जर्मन फ्रैंच स्लावनी, यूनानी आदि के काव्य शास्त्र का ज्ञान प्राप्त हुआ। यथा आज सेंट ब्यूव टेन हिगेल, गोर्की टोल्सटाय, बेमव और अन्य आलोचकों का नाम अधिकाधिक लिया जाता है।[6]

अंग्रेजी आलोचना ग्रन्थों का प्रभाव कई आलोचना ग्रंथों पर स्पष्ट दिखाई देता है। साथ ही लेखकों की मौलिक मान्यताएं और अन्य ग्रन्थों से ली गई

१—डा० एस० पी० खत्री—आलोचना इतिहास और सिद्धान्त-पृष्ठ ८ एवं शिवदान सिंह चौहान—आलोचना के सिद्धान्त पृष्ठ १७०।
२—डॉ धरेन्द्र वर्मा—हिन्दी साहित्य कोष—डा० बच्चनसिंह कृत नाट्य वस्तु विवेचन।
३—शिवदान सिंह चौहान—आलोचना के सिद्धान्त-पृष्ठ १७६, १८०।
४—आलोचना इतिहास तथा सिद्धान्त—पृष्ठ ८।
५—वही पृष्ठ ३०३।
६—आलोचना के सिद्धान्त पृष्ठ १००, १६८।

सम्भावना भी वहाँ स्पष्ट हो जाती है। श्री शिवदान सिंह चौहान की पुस्तक आलोचना के सिद्धान्त इसका प्रमाण है। उसमें किया गया अंग्रेजी, फ्रेंच और जर्मनी आलोचकों का अध्ययन 'दा मेकिंग आफ लिटरेचर' पर आधारित है। साथ ही उनकी साम्यवादी लेखकों—चेनाडस्की आदि की विवेचना रूसी ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवाद पर आधारित हैं। किन्तु यहाँ यह मानना ही होगा कि यथा स्थान किया गया मत प्रतिपादन उनकी अपनी आलोचना का परिणाम है—पुस्तक में उनकी अपनी धारणाएँ भी विद्यमान है। उदाहरण के लिए नई आलोचना को हेय मानना देखा जा सकता है अंग्रेजी के प्रभाव के कारण व्याख्यात्मक पद्धति ऐतिहासिक पद्धति मनोवैज्ञानिक पद्धति, आगमन पद्धति और रचनात्मक पद्धति आदि साहित्य में काम में ली जाती हैं।

आधुनिक युग में अंग्रेजी प्रभाव के कारण सस्कृत काव्य शास्त्र को भी अंग्रेजी समीक्षा सिद्धान्तों के समकक्ष रखा गया और आलम्बन उद्दीपन स्थाई भाव और अनुभाव आदि का नवीन दृष्टि से परीक्षण किया गया। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल रामदहिन मिश्र और आधुनिक शोध कर्ताओं के ग्रन्थ उदाहरण स्वरूप पढ़े जा सकते है। यहाँ एक तथ्य और उल्लेखनीय है कि हिन्दी में अभी अंग्रेजी मनोवैज्ञानिक और अन्य शब्दों के स्थिर प्राप्य नही है। एतदर्थ एक ही भाव को भिन्न भिन्न रूपों में दिखा जाता है। यथा सेंटीमेंट का ही कही स्थिर वृत्त कही भाव कोष कही मनोवृत्ति कह दिया जाता है।[1] ऐसी ही अवस्था अन्य शब्दों की होती है।[2] अलंकारों की भी यही अवस्था है-'ओनोमोटोपिया' को कही ध्वन्यानुकारी कहा जाता है तो कही अनुनादन।[3] इससे अधिकांशत समझने में सुविधा नही होती है और एक ही पुस्तक में यह शब्दावली विचित्र भी है। कई बार सस्कृत के अनुवाद किए जाते हैं किन्तु उनकी भूमिकाएँ अंग्रेजो द्वारा लिखी जाती हैं। गुप्तजी कृत स्वप्न वासवदत्ता के अनुवाद की भूमिका जेमरीफ ने लिखी है। इसी भाँति कई पुस्तकों की आलोचनाएँ अंग्रेजी में अथवा अंग्रेजो द्वारा लिखी जाती हैं।

१—आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्य शास्त्रीय अध्ययन-पृष्ठ २८ व ३२।

२—वही-पृष्ठ २८ से ७१।

३—वही-पृष्ठ ३७१ से ३७४।

अंग्रेजी के प्रभाव के कारण कई नवीन आलोचना शलियाँ का प्रादुर्भाव हुआ। मार्क्सवादी मनोविश्लेषण वादी, अभिव्यंजना वादी प्रभाववादी और ऐतिहासिक तथा जीवनचरित मूलक समीक्षा पद्धतियाँ। प्रकृतिवादी समीक्षा शली के विवेचन म थीसिस, एन्टीथीसिस और सिन्थसिस का भी उल्लेख किया जाता है यथा अवस्थान प्रत्यावस्थान तथा साम्यावस्थान की कथा दुहराई जाने लगती हैं और इसी प्रकार थीसिस एन्टीथीसिस तथा सिन्थेसिस की क्रिया मे जगत का विकास होना रहता है। विकास के मूल म यह द्वन्द्व विद्यमान रहता है अतएव यह प्रणाली द्वन्द्वात्मक कही जाती है। इस प्रकार परिवर्तन ही विकास का चिन्ह है। विकास का चिन्ह मानो तो कहेंगे कि इसी प्रकार वस्तु सदव उन्नति की ओर धावित होती है। उसम क्रमश अधिकाधिक प्रौढ़ता और उत्तमता आती जाती है। यही कारण है कि इसे प्रगतिवाद का सज्ञा दी जाती है।[1]

सामूहिक भाव और साधारणीकरण की तुलना भी की जाती है। कोडवेल के कनवटीव इमेजिनेशन और अन्य आलोचकों की धारणाओं को भी व्यक्त की जाती है। उदाहरणार्थ निम्नांकित कथन देखिए—सामूहिक भाव से कोडवेल का अभिप्राय उस भाव कोष से है जो परिस्थितियों तथा सस्कारो के कारण किसी देश काल म विशाल जनसमाज के हृदय मे अपना स्थिति बना लेता है।[2]

फ्रायड के मनोविज्ञान एव अडलर और युग का विवेचन भी किया जाता है। डॉ० देवराज उपाध्याय कृत आधुनिक कथा साहित्य मे मनोविज्ञान और डा० राकेश गुप्त कृत साइकालजिकल स्टडीजऑफ रसास इसके उदाहरण हैं। अंग्रेजी के प्रभाव के कारण निम्नांकित आलोचनायें भी सामने आयीं। जसे पाठालोचन। प्रारम्भ म यह काय अग्रेज विद्वानो द्वारा किया गया जिसे कालान्तर म भारतीय विद्वानो ने स्म अपनाया। डॉ० मानाप्रसाद का रामचरित मानस और जायसी ग्रन्थावली का सम्पादन इसका उदाहरण है। तुलनात्मक अध्ययन को भी हिन्दी आलोचना से बल प्राप्त हुआ और शोध ग्रन्थों के अतिरिक्त भी इसे स्थान दिया गया। शची रानी गुर्टू का साहित्य दर्शन इसका उदाहरण है।

१—डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित——रस सिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण पृष्ठ ३६६–६७।

२—नयी समीक्षा—पृष्ठ २२।

आधुनिक आलोचक अंग्रेज आलोचकों के उद्धरण प्रस्तुत कर उनके द्वारा अपने मत की पुष्टि करते हैं। वे अंग्रेजी के माध्यम से अन्य भाषाओं के आलोचकों के मत भी प्रकट करते हैं। अरस्तु का कथारसिस[1] और लनजाइनस के औन दी सब्लैम आदि के विवेचन इसके उदाहरण हैं।

भरत ने पांचाली, अवन्ती उद्मागधी और दक्षिणावत प्रवृत्तियों का विवेचन किया। भामा के समय प्रादेशिक साहित्य की शैलियां निश्चित भी हो गई थी। *अतएव प्रादेशिक साहित्यिक कृतियां भारत के लिए नवीन नहीं थी। फिर भी* अंग्रेजी साहित्य मे प्रादेशिक उपन्यास पाये गये तब हिन्दी मे भी आंचलिक उपन्यासों की रचनायें की जाने लगी। हिन्दी आलोचकों ने उसे एक नवीन विधा के रूप मे स्वीकार किया। इस प्रकार प्राचीन भारतीय शैली ने पाश्चात्य मे स्वीकृति प्राप्त कर नवीन रूप धारण किया।

इस युग मे संस्कृत की शास्त्रीय विधाओं की अंग्रेजी से तुलना की जाने लगी और संस्कृत की शब्दावली के साथ अंग्रेजी की शब्दावली को भी स्थान दिया जाने लगा जैसे—अलंकार सिद्धान्त की कल्पना का आधार कालरिज की ललित कल्पना (फैन्सी) है और वक्रोक्ति सिद्धान्त की कल्पना का आधार कालरिज की मौलिक कल्पना (प्राइमरी इमेजिनेशन) है।[3] आजकल प्राचीन आलोचकों के मूल्यांकन की भी प्रवृत्ति बलवती होती जा रही है। संस्कृत और अंग्रेजी के शास्त्रीय सिद्धान्तों की तुलनायें भी की जाती हैं। वक्रोक्ति और अभिव्यञ्जनावाद की तुलना इसका उदाहरण है।[4]

आज आलोचना के जागरूक और देश काल सापेक्ष प्रयास किए जाते हैं। आलोचना करना दायित्व माना गया है—यहाँ पहले शास्त्रीय विवेचन साहित्य विपुल और सहृदय सामाजिकों के लिए होता था वहाँ आज आलोचनात्मक साहित्य सर्जन देश के विकास के लिए महत्त्वपूर्ण माना गया है।[5] देशप्रेम की इस धारणा पर पाश्चात्य प्रभाव सहज ही दिखाई देता है। एक तथ्य यह भी है कि आलोचना की महत्ता प्रतिपादित करते समय अंग्रेजी आलोचना के ग्रन्थों की ओर संकेत किया

१—आधुनिक हिन्दी मराठी काव्यशास्त्रीय अध्ययन-पृष्ठ १११।
२—आलोचना के सिद्धान्त-पृष्ठ ५ से २५।
३—हिन्दी वक्रोक्ति जीवित भूमिका।
४—डा० एस० पी० खत्री-आलोचना इतिहास तथा सिद्धान्त।
५—आलोचना सिद्धान्त और अध्ययन-पृष्ठ १८।

जाता है और लिख दिया जाता है कि अंग्रेजी साहित्य में तो आलोचना और आलोचका की महत्ता अन्य दोनों से कहीं अधिक महत्वपूर्ण दिखाई दे रही है और प्रायोगिक तथा ऐतिहासिक आलोचना का विस्तार अत्यधिक बढ़ गया है और आलोचना संसार में एक नवीन स्फुरण हो रहा है।[1] इतना ही नहीं अंग्रेजी, यूनानी और रोमन आलोचकों का हिन्दी में ऐसा वर्णन किया जाता है मानो कि वो ही हिन्दी आलोचना के आधार हों।[2] जैसाकि पहले कहा जा चुका है पाश्चात्य आलोचना में ही खोज साहित्य का उद्भव हुआ जिसके कारण आलोचकों और शोधार्थियों में मौलिकता का आग्रह बढ़ा। यथार्थ का आग्रह भी अंग्रेजी आलोचना शैली के कारण मान्य हुआ। जब यथार्थवादी साहित्यिक विधाओं का समर्थन किया जाने लगा, डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने अपनी रचनाओं द्वारा निम्न और विमत्सरसोद्रेक कार्य घटनाओं का दिग्दर्शन कराया और भूमिका में उनका समर्थन भी किया।

अब तो नायक के स्थान पर सभी पात्र महत्वपूर्ण होने लगे। यही अवस्था स्त्री पात्रों की भी हुई। नाटकों में—पुरातन नाटकों को तो एकपात्रीय दर्शन कहा जाने लगा। ऐसे भी नाटक हुए जिनमें कि सामाजिक संघर्ष ही नेता के रूप में सामने आया। यही अवस्था प्रादेशिक उपन्यासों में प्रादेशिक वातावरण की हुई। इस प्रकार साहित्य में व्यक्तियों के स्थान पर वातावरण ने प्रमुखता प्राप्त की। इसका समर्थन आलोचना द्वारा किया गया। कई आलोचक तो बर्नार्ड शा के समान अपने वाद का प्रचार करने लगे।

अंग्रेजों की प्रेरणा और उनके कार्य

संस्कृत ग्रन्थों के अंग्रेजी में अनुवाद किए गए जिनका उल्लेख यथा स्थान किया गया है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अंग्रेजों ने सहायता और प्रेरणा देकर भारतीय काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों के हिन्दी में अनुवाद कराये, यथा श्री सुशील कुमार डे का ध्यान वक्रोक्ति काव्य जीवितम् की ओर इंडिया आफिस लाईब्रेरी के पुस्तकालय के अध्यक्ष, प्रोफेसर एम० डब्ल्यू० टामस ने आकर्षित किया।[3] तदुपरान्त बन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर जकोबी ने डे महोदय को बुलाया और दोनों ने मिलकर इसके

१—आलोचना सिद्धान्त और अध्ययन-पृष्ठ १०।
२—वही-पृष्ठ १२।
३—हिन्दी वक्रोक्ति काव्य जीवित आमुख-पृष्ठ १२।

दो उन्मेषों का अनुवाद किया। इस प्रकार उक्त पाश्चात्य महानुभावों का इसके सम्पादन में विशेष हाथ रहा है।

दृष्टिकोण और भावना पर प्रभाव—

इस युग में अंग्रेज आलोचकों की आलोचनाओं को स्वीकार किया गया अथवा उनकी प्रतिक्रिया हुई किन्तु साहित्य पर अंग्रेज लेखकों और आलोचकों की कृतियों की मान्यताओं और उक्तियों का प्रभाव अवश्य दिखाई देता है। इन धारणाओं में हमारी देश कालीन परिस्थितियों और हमारे साहित्य ने भी सहयोग दिया। कई बार तो हमारी मान्यता भी परिवर्तित हो गई। यथा ग्राउस ने रामचरित मानस के अनुवाद में कहा—दरबार से लेकर झोपड़ी तक यह ग्रन्थ (रामचरित मानस जिसे ग्राउस ने रामायण कहा) सब के हाथों में है, और प्रत्येक वर्ग के हिन्दुओं द्वारा वे चाहे बड़े हों या छोटे धनी हों या निर्धन, बालक हों अथवा बूढ़े पढ़ा जाता है, सुना जाता है और भलीभाँति समझा जाता है।[1] डाक्टर ग्रियर्सन ने भी लिखा है कि —भारतीय लोग इनको (सूरदास को) कीर्ति के सर्वोच्च गवाक्ष में स्थान देते हैं, पर मेरा विश्वास है कि यूरोपीय पाठक आगरा के अंधे कवि की अत्यधिक माधुरी की अपेक्षा तुलसी दास के उद्भट चरित्रों को अधिक पसन्द करेगा।[2] इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दी में तुलसीदास का समर्थन किया गया और उसे अन्य कवियों से श्रेष्ठतर सिद्ध किया गया।[3] अब तो स्वीकार कर ही लिया गया कि हिन्दी में ग्रियर्सन ने सूर सूर तुलसी शशी की मान्य परम्परा को अपनी आलोचना से बदल दिया। उन्हें सूर की अपेक्षा तुलसी ईसाई मत के अधिक निकट जान पड़े।[4]

डॉक्टर ग्रियर्सन ने कहा कि जहाँ तक शैली का सम्बन्ध है वे (तुलसीदास)

१—श्री किशोरी लाल गुप्त कृत ग्रियर्सन के साहित्य का अनुवाद–पृष्ठ ६६
२—क–वही – पृष्ठ १०७ ख– भारत के इतिहास में तुलसी दास का महत्व जितना भी आँका जाता है वह अत्यधिक नहीं है
हिन्दुस्तान की अधिकांश जनता के लिये चरित्र का एकमात्र प्रतिमान तुलसी कृत रामायण है। वही–पृ० १३७
३—भुवन जी कृत तुलसी दास –पृ० १५ २२
४—श्री किशोरी लाल गुप्त कृत ग्रियर्सन के साहित्य का अनुवाद–पृ० २३

सरलतम प्रवाह पूर्ण वर्णनात्मक शैली से लेकर जटिलतम साकेतिक पद्य प्रणाली के आचार्य थे।[1] हिंदी मे अंग्रेजी की कई परिभाषाएं अपना ली गई —

हिन्दी मे अंग्रेजी की परिभाषायें—

अंग्रेजी के प्रसिद्ध विद्वानो की काव्य, साहित्य, नाटक, उपन्यास, गद्य पद्य, प्रभृति की परिभाषाएं हिन्दी मे बहुतायत से दी जाती हैं। अंग्रेजी मे जो परिभाषाएं है उनका विवेचन किया जाता है। उदाहरणार्थ साहित्य की व्याख्या करते हुए प्राप्त होता है—अंग्रेजी मे साहित्य का निरूपण इंसाईक्लोपीडिया ब्रिटानिका की परिभाषा हैनरी हडसन मथ्युआर्नल्ड एम० जी० माटे।[2] इसी भांति काव्य की परिभाषा मे भी पाश्चात्य विद्वानो के मत उद्धृत किये जाते हैं।[3] युरोपीय भाषाओ के साहित्य भी चर्चा, विवेचना और तुलना के विषय बनते है। कहानी की बात कहते समय जब तक एडगर एलन पो की परिभाषा नही दी जाती है तब तक विवेचन अधूरा ही समझा जाता है। नाटकों के सम्बन्ध मे एलार्डिस निकल और आलोचना मे आई० ए० रिचर्डस के नाम अवश्य ही लिए जाते हैं। इस प्रकार अंग्रेजी की परिभाषाएं और अंग्रेज आलोचकों के सिद्धान्तो ने हिंदी आलोचना को प्रभावित किया है।

साहित्य की विभिन्न विधाएं

अंग्रेजी प्रभाव—

हिंदी की विभिन्न विधाओ की आलोचना करते समय अंग्रेजी की विधाओ उनकी तुलना की जाती है और उनके स्वरूप निर्धारण पर भी अंग्रेजी का प्रभाव दिखाई देता है। उदाहरणार्थ साहित्य को ही लीजिए। डॉ० श्याम सुन्दर दास ने साहित्य शब्द का दो अर्थों मे प्रयुक्त किया है—(क) छपी हुई रचना के अर्थ मे। (ख) कलामय पुस्तकों के रूप मे।

१—किशोरी लाल गुप्त कृत ग्रियर्सन के साहित्य का अनुवाद पृष्ठ—१४२

२—डा० गोविन्द त्रिगुणायत-शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त पहला भाग-पृष्ठ ५

३—प्रोफेसर भारत भूषण सरोज-साहित्यिक निबन्ध-पृष्ठ १७-२५

यह अवश्य ही अंग्रेजी के लिट्रेचर से प्रभावित है। अंग्रेजी में साहित्य को इन्हीं दो अर्थों में विभक्त किया जाता है—(क) लिट्रेचर ओफ नोलेज (ख) लिट्रेचर ओफ पोवर। मुन्शी प्रेमचन्द ने साहित्य को जीवन की व्याख्या माना है। यह मथ्यु आरनल्ड की परिभाषा—लिट्रेचर इज ए क्रिटीसिज्म ओफ लाइफ का अनुवाद प्रतीत होता है। साहित्य शब्द के समान साहित्य की प्रेरक शक्तियाँ भी अंग्रेजी से प्रभावित दृष्टिगोचर होती हैं।

प्रेरक प्रवृत्तियाँ—

क—डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत ने साहित्य की प्रेरक प्रवृत्तियों का विवेचन करते हुए डिक्न्सी और हडसन के मत उद्धृत किए हैं।[२] साथ ही बहुधा लेखक क्रिस्टोफर काडवन और रल्फफाक्स आदि के नाम भी ले लेते हैं। फ्रायड एडलर और युग की परिभाषाएं भी इस सम्बन्ध में उद्धृत की जाती हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से आत्माभिव्यक्ति को प्रेरक तत्व माना जाता है। इस दृष्टि से डा० नन्द दुलारे वाजपेयी डॉ० नगेन्द्र डॉ० राम शंकरजी शुक्ल रसाल, डा० सरनामसिंह जी शर्मा और डॉ० राम कुमार वर्मा का नाम उल्लेखनीय है। साहित्य के समान काव्य सम्बन्धी धारणाओं पर भी अंग्रेजी प्रभाव दिखाई देता है।

काव्य—

प्रसाद जी काव्य के बारे में कहते हैं—आत्मा की मनन शक्ति की वह असाधारण अवस्था जो श्रेय सत्य को उसके मूल चारुत्व में ग्रहण कर लेती है काव्य में संकल्पात्मक अनुभूति कही जावेगी। यह भवभूति की निम्नांकित उक्ति अमृतात्मन कलाम।[३] एवम् वृहदारण्य कोप निषद के अयं आत्मा वाङ्मय कथन से तुलनीय है। महादेवी ने कहा है—कविता कवि विशेष की भावनाओं का चित्रण है

१—कुछ विचार—पृष्ठ ६
२—डा० गोविन्द त्रिगुणायत—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त—पृष्ठ ७ पृष्ठ ३४ पहला भाग।
३—उत्तरराम चरित्र। (क) आत्माभिव्यक्ति वह मूल तत्व है जिसके कारण कोई व्यक्ति साहित्यकार और उसकी कृति साहित्य बन पाती है। विचार और विवेचन।

और वह चित्रण इतना ठीक है कि उससे वैसी ही भावनायें किसी दूसरे के हृदय में आविर्भूत होता है। इस पर रस और साधारणीकरण से सम्बन्धी भावनाओं का प्रभाव दिखाई देता है। साथ ही यह कल्पना भी असंगत न होगा कि दूसरा के हृदय में वे ही भावनाएं उत्पन्न करने की कामना पर टाल्सटाय का प्रभाव है जो अंग्रेजी के माध्यम से प्राप्त हुआ है। डा० गोविन्द त्रिगुणायत ने विभिन्न अंग्रेजी और पाश्चात्य आलोचकों के मत इस सम्बन्ध में प्रस्तुत किए हैं।[1] ऐसी ही अवस्था काव्य के भेदों की है।

काव्य के भेद—

अंग्रेजी में जिन साहित्यिक विधाओं का समर्थन हुआ वे तो हिन्दी में स्थापित्व ग्रहण करने लगीं और अन्य काव्य भेद विस्मृत से कर दिए गए। यथा आचार्य भामह वस्तु को (क) देवादि चरित शंसी (ख) उत्पाद्य, (ग) कलाश्रित और (घ) शास्त्राश्रित भेद किए।[2] इन भेदों का हिन्दी में केवल उत्पाद्य मिश्रित और प्रख्यात नामक भेदों में ही स्वीकार किया गया क्योंकि अंग्रेजी में एडीसन ने इस ही भेदों को मान्यता दी है।[3] इसी भांति सगबद्ध, अभिनय, आख्यायिका कथा और अनिबद्ध में से प्रबन्ध काव्य, नाटक, उपन्यास, मुक्तक और निबन्ध प्रभृति अंग्रेजी के सम्पर्क से अधिकाधिक उसके रूप में अपनाये गए। प्रबन्ध में भी अनुमान लगाया जाता है कि प्रबन्ध काव्य के स्थान पर महाकाव्य और खण्ड काव्य नामों का विशेष प्रचलन अंग्रेजी के इपिक और एपीसोड के प्रभाव का परिणाम हो सकता है। अग्नि पुराण के प्रकीर्ण काव्य का तो विस्मरण ही हो गया। इस भांति वामन कृति गद्य पद्य और चम्पू तो अपना लिए गए परन्तु उनके द्वारा बताये गए गद्य के भेद—वृत्त गन्धी, चूर्ण और उत्कलिका[4] का ज्ञान आज शास्त्रवेत्ताओं तक ही सीमित हो गया है। यही अवस्था ध्वन्यालोक की लोचन टीका में दिए गए भेदों की है। ये तो किसी अन्य भाषा के काव्य भेदों के समान सुनाई देते हैं। समय के साथ मम्मटकृत चित्र काव्य

१—डा० गोविन्द त्रिगुणायत—समीक्षा शास्त्र के सिद्धान्त—पृष्ठ ७४—८६ भाग पहला।
२—काव्यालंकार—१।१६।
३—स्पैक्टेटर पेपर्स।
४—एक। २८, २९ ३०।

भी आज बीते युग की बात हो गए हैं। आचार्य विश्वनाथ द्वारा बताये गए भेद भी आज शास्त्रीय ग्रन्थों की ही शोभा बढ़ाते हैं।[1] साथ ही अंग्रेजी ने हमें नये काव्य भेद प्रदान किए हैं जिनमें से बहुत से तो बहुत ही प्रचलित हो गए हैं। जैसे गीत एकांकी, रेडियो रूपक और आलोचना के विभिन्न वाद हमारे मत की पुष्टि करते हैं। यही अवस्था काव्य के विषयों की हुई है।

काव्य के विषय—

वैसे तो संस्कृत में नाट्य शास्त्रकार[2] भामह[3] और धनञ्जय[4] प्रभृति का आदेश है कि हर वस्तु काव्य के रसोद्रेक का कारण बन सकती है। संस्कृत साहित्य में प्रबन्ध काव्य और नाटक[5] आदि रचनाओं के लिए सूक्ष्म भेद प्रभेद बताये गए थे। अंग्रेजी प्रभाव के कारण वे नियम लुप्त हो गए और काव्यकार स्वच्छन्दता चाहक बनने लगे। जहां रीतिकाल तक में आप्त वाक्य नियम से थे, अब नियमोल्लंघन ही एक विशिष्ट प्रवृत्ति बन गया।

अब काव्य पर अंग्रेजी प्रभाव बताया जाता है। डॉ० रवीन्द्र सहाय कृत अंग्रेजी काव्य पर अंग्रेजी प्रभाव और डॉ० विश्वनाथ कृत्य हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव हमारे कथन की पुष्टि करते हैं। इनमें भारतेन्दु प्रसाद और आधुनिक कवियों व उनकी कृतियों पर अंग्रेजी प्रभाव प्रदर्शित किया जाता है। कवियों के दृष्टिकोण पर पड़े हुए अंग्रेजी के प्रभाव का भी मूल्यांकन किया जाता है।

पश्चिम के बुद्धिवादी दृष्टिकोण ने भी हिन्दी कविता को प्रभावित किया है। अयोध्यासिंह उपाध्याय के प्रिय प्रवास में यह प्रभाव दृष्टव्य है, उसमें कृष्ण की अवतारणा दैवी विभूति के रूप में नहीं वरन लोक मंगल की भावना से समन्वित मान

१—डा० गोविन्द त्रिगुणायत—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त—पृष्ठ १०३।

२—१।१७।

३—काव्यालंकार सूत्र ५।४

४—दशरूपक ४।८५।

५—देखिए लेखक की (प्रकाशाधीन कृति) संस्कृत अंग्रेजी नाटक—प्रथम खण्ड।

मानव के रूप में हैं।[1] यहां यह कहना मार्मिक ही होगा कि अब विषय विस्तार हो गया है। हर व्यक्ति, वस्तु और स्थान काव्य के उपादान बन सकते हैं। यही क्या कई बार तो प्रतिक्रिया स्वरूप जीवन के हेय और कुत्सित अंगों और समाज के निम्न वर्ग का ही चित्रण किया जाता है। यथार्थवाद इसे बल प्रदान करता है। अब कोई भी पुरुष काव्य का नायक हो सकता है।

नायक-नायिका—

अंग्रेजी प्रभाव के कारण अब नायक नायिका का संस्कृत काव्य शास्त्र के समान सूक्ष्म विवेचन नहीं किया जा सकता है। काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों और शास्त्रीय कोषस ही वे प्राप्त हो सकते हैं। उदाहरणार्थ डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत डॉ० धीरेन्द्र वर्मा प्रभृति के ग्रन्थ इसके साक्षी हैं। किन्तु साधारणतया आलोचना में इनका उल्लेख नहीं किया जाता है।[2] [3] अब तक हर व्यक्ति नायक होने का अधिकारी हो चुका है। यही नहीं साधारण श्रेणी के नायकों की संख्या आज बहुतायत से प्राप्त होती है। अंग्रेजी के समान आज तो बिना नायक के नायिका प्रधान ग्रन्थ भी प्राप्त होते हैं अथवा नायिका का नायक की विवाहिता पत्नी होना आवश्यक नहीं माना जाता है।[4] पहले के से नायिकाओं के सूक्ष्म भेद विभेद अब बिरले ही स्थानों पर मिलते हैं।[5] यही अवस्था विरह, संयोग मान उपालम्भ और अन्य भाव विभावों की हो गई है। शैली भी इसका अपवाद नहीं है।

शैली—

शैली के विवेचन में पाश्चात्य विद्वानों के मत उद्धृत किये जाते हैं। डॉ०

१—डा० विश्वनाथ मिश्र-हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव—पृष्ठ २५८।

२—हिन्दी साहित्य शास्त्र-पृष्ठ २३६-२३८।

३—हिन्दी साहित्य कोष-नायक नायिका विवेचन।

४—हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन—आधुनिक नाटकों का विवेचन।

५—वर्णन निमित्त देखिये—डा० गोविन्द त्रिगुणायत का शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त-पृष्ठ २२४-२४३।

त्रिगुणायत ने मिडल्टन मरे के अनुसार शैली में व्यक्तित्व उसका वधानिक विशेषता और उसके विकास की स्थितियों का उल्लेख किया है।[१] यह स्पष्ट कर देता है कि हिन्दी में शैली विवेचन अंग्रेजी के आधार पर किया जाता है और शैली ही व्यक्तित्व है भी कहा जाता है। यह स्टाइल इज मैन से प्रभावित प्रतीत होता है। इसमें यथार्थता स्पष्टता और उपयुक्तता भी क्रमशः प्रिसीजन ल्यूसीडिटी प्राप्राइटी के अनूदित रूप हैं जो हडसन से लिए गए हैं। इसी भाँति शैली में फास एनर्जी सजेस्टिवनेस म्यूजिक, ग्रेस ब्यूटी और चार्म भी अंग्रेजी से आये हैं।[२] कला पक्ष और भाव पक्ष भी इस प्रभाव से नहीं बच सके हैं।

कला पक्ष और भाव पक्ष—

अंग्रेजी प्रभाव के कारण काव्य को कला पक्ष और भाव पक्ष में बाँटा जाता है। यह प्रश्न रुप पोएम और मैटर का अनुवाद है। अंग्रेजी में यह विवाद युगों तक चलता रहा आज भी कभी कभी इसका स्मरण कर लेते हैं। कोई कहता था वाट आफ्टन वाज थॉट बट नेवर सो वेल एक्सप्रेस्ड। इसकी प्रतिक्रिया के स्वरूप में कुछ लोग कहने लगे वाट आफ्टन वाज एक्सप्रेस्ड बट नेवर सो वेल थॉट। अठारहवीं शताब्दी के कवियों ने पोयम को महत्व दिया है तो रोमांटिक कवियों ने मैटर को। आज मनुष्य की ओर अधिक झुकाव है और यदि काव्य होकर गुनना करती है तो भावों को कला से अधिक महत्व दिया जाता है। आई० ए० रिचर्ड्स और टी० एस० इलियट इसके समर्थक हैं। हिन्दी में भी यही मत प्रचलित है। फिर भी यह उल्लेखनीय है कि कला पक्ष के विवेचन में हिन्दी में अंग्रेजी के सिद्धान्तों को महत्व दिया जाता है। अधिकांश शब्दों का सुन्दर समन्वय ही कला का उद्देश्य माना जाता है किन्तु जो सिद्धान्त संस्कृत और अंग्रेजी में उभयनिष्ठ होते हैं वे ही स्थापित स्थान कर लेते हैं और केवल संस्कृत के गुण बहुधा छोड़ दिए जाते हैं और अंग्रेजी की गन्ध अधिकांश ग्रहण कर लिये जाते हैं। कला पक्ष के विवेचन में ऐसा

१—काव्य निमित्त डेलिस-डॉ० गोविन्द त्रिगुणायत का शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त-पृष्ठ २४८-२४१।

२—वही पृष्ठ-६८-६६।

३—गोप भाव शास्त्र वाली कविता और आभावकों की मान्यतायें इसी ही थी।

को भी महत्व दिया जाता है । इसका विवेचन यथा स्थान किया जा चुका है । यहाँ इतना ही कहना सगत होगा कि शैली म लेखक का व्यक्तित्व अवश्य ही सम्मिलित कर लिया जाता है । इसम विषय प्रतिपादन कौशल का विशिष्ट हाथ रहता है । यद्यपि रीति शब्द म शक्ति तत्व के मिश्रण व अस्तित्व की ओर भी आलोचक सकेत कर देते हैं किन्तु सामान्यत शली के रूप म अ ग्रेजी स आया हुआ स्टाइल का समानार्थी शब्द ही प्रयुक्त होता है और गोडी, वदर्भी और पाचाली आदि रीतियाँ या अन्य मार्ग अथवा प्रवृत्तियाँ स्थान नहीं प्राप्त करती हैं । रीति कहने म सस्कृत का आभास प्रकट होता है और शली कहने पर आधुनिक मत य प्रकट होता है । कला पक्ष और भाव पक्ष के परिपाश्व म जहाँ आधुनिक शली को स्थान दिया गया वहाँ परम्परानुगत उद्देश्य म भी परिवतन हो गया ।

उद्देश्य—

पाश्चात्य शास्त्र म कथा की रूप वज्ञानिकता चरित्र चित्रण वस्तुनिरूपण सवाद भाषा शली और उद्देश्य को महत्व दिया गया है । वहाँ काव्य का उद्देश्य ब्रह्मानन्द सहोदर आनन्द प्रदान करना न होकर विचारोत्तेजक सामग्री प्रदान करना माना गया है । व बहुधा जीवन का यथा तथ्य चित्रण करना किसी विचार धारा को प्रतिपादित करना अथवा यौन सम्बन्धो या आर्थिक बाधाओं को प्रकट करना भी साहित्य का उद्देश्य मानते हैं । मनोवज्ञानिकों ने मनोविश्लेषण द्वारा उन्ह और भी सबल बनाया है । हिन्दी म भी उपर्युक्त तत्वों के अनुसार उद्देश्य म परिवतन हो गया है । अब जीवन की व्याख्या करना और यथार्थ चित्रण प्रस्तुत करना भी उद्देश्य माने जाते हैं ।

काव्य और कला—

काव्य और कला के सम्बन्ध पर भी अ ग्रेजी प्रभाव दिखाई देता है । अंग्रेजी प्रभाव के कारण काव्य को कला के अन्तर्गत माना जाता है । पन्त निराला और महादेवी ने ऐसा ही किया है । डा० गोविन्द त्रिगुणायत भी कहते हैं कि साहित्य को अब भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वान कला ही मानते हैं ।[1] इससे उन पर अंग्रेजी

१—डॉ० त्रिगुणायत—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त—पृष्ठ १० ।

प्रभाव परिलक्षित होता है। उन्होंने कला सम्बन्धी विभिन्न पाश्चात्य विचारकों के मत भी उद्धृत किए हैं।[१] शुक्ल जी ने एक की अनुभूति का दूसरे तक पहुँचाने को कला कहा है।[२] इस पर टाल्सटाय का प्रभाव है। गुप्तजी ने अभिव्यंजनावाद से प्रभावित हो अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति को कला कहा है। साथ ही वे उसे केवल मनोरंजन हित देखना नहीं चाहते हैं।[३] इसी भाँति डॉ० त्रिगुणायत कला को अनुभूति सौन्दर्य के सजीव पुनर्विधान की संज्ञा देते हैं।[४] इस पर क्रोचे के अभिव्यंजनावाद का प्रभाव है। क्रोचे ने इम्प्रेशन सप्रेशन और सजशन, और एक्स्प्रेशन को अभिव्यंजना कहा है। डा० त्रिगुणायत ने इम्प्रेशन को अनुभूति सौन्दर्य और अन्य शब्दों को पुनर्विधान से ध्वनित किया है। हिन्दी में अंग्रेजी के निम्नांकित कला सम्बन्धी विचारों को भी स्थान दिया गया है —

क—कला कला के लिए, ख—कला जीवन के लिए, ग—कला अपने ही लिए, घ—कला सृजन की अदम्य आवश्यकता के रूप में, च—कला जीवन से पलायन हेतु और छ—कला जीवन में प्रवेश हेतु आदि।

इनमें से अधिकांश को कई आलोचना पुस्तकों में स्थान मिल जाता है। मुख्य रूप से कला जीवन के लिए और कला कला के लिए सिद्धान्तों को मान्यता प्रदान की जाती है।

सौष्ठववादी आलोचना—

जैसा कि पहले कहा जा चुका है भूमिकाओं में अपने दृष्टिकोण को प्रकट करना अंग्रेजी प्रभाव का परिणाम है। यह शैली आधुनिक कविमाला में पूर्णरूपेण

१—डा० त्रिगुणायत—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त—पृष्ठ ३७।

२—काव्य में रहस्यवाद—पृष्ठ १०४।

३— हो रहा है जो जहाँ सो हो रहा—यदि वही हमने कहा तो क्या कहा,
किन्तु होना चाहिए कब क्या कहाँ—व्यक्त करती है कला यह यहाँ।
मानते हैं जो कला के अर्थ ही स्वार्थिनी करते कला को व्यर्थ ही।
वह तुम्हारे और तुम उसके लिए चाहिए पारस्परिकता ही प्रिये।
—साकेत प्रथम सर्ग।

४—डा० त्रिगुणायत—साहित्य समीक्षा के सिद्धान्त—पृष्ठ ५०।

मुखरित हुई है। द्विवेदी कालीन इति वृतात्मकता की प्रतिक्रिया मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अवश्यमभावी थी। साथ ही साहित्य स्वयं गतिशील है और अंग्रेजी साहित्य हिन्दी को इस समय तक अधिक आकर्षित करने लगा। समाज में अंग्रेजी का पठन पाठन और प्रचलन बहुत बढ़ गया। अतएव ऐसे समय में नवीन छायावादी सृष्टि स्वाभाविक थी।[1] इस में देश की राजनीतिक स्थिति ने भी सहयोग दिया।[2] छायावाद के विकास में क्रोच के अभिव्यंजनावाद का भी हाथ रहा। साथ ही संस्कृत के व बाद जो अंग्रेजी के रोमैन्टीसिसम में मिलते जुलते थे उन्होंने भी इसके विकास में शक्ति प्रदान की प्रसादजी कहते हैं—ध्वन्यात्मकता लाक्षणिकता सौन्दयमय प्रतीक विधान तथा उपचार वक्रता के साथ सहानुभूति की प्रवृत्ति छायावाद की विशेषतायें हैं।[3] इन विशेषताओं में प्रथम दो भारतीय काव्यशास्त्र के अनुकूल हैं और सौन्दयमय प्रतीक विद्यमान रोमैन्टीसिसम का आधार है। अन्तिम दो नाना में उभयनिष्ठ हैं। इस प्रकार छायावाद में नवीनता का आग्रह था और उसे स्वीकार किया गया भारतीय धरातल पर। छायावाद के सम्मुख प्रारम्भ से ही किस ओर की समस्या विद्यमान थी ? पल्लव की भूमिका में पन्तजी ने इसे अभिव्यक्त भी किया। यहाँ यह स्मरणीय है कि उस समय तक अर्थात् पल्लव की भूमिका लिखने तक पन्तजी और सामाजिक छायावाद नाम से परिचित नहीं थे। यह नाम बाद में दिया गया है।[4] पण्डित नन्ददुलारे वाजपेयी प्रारम्भ से ही छायावाद के स्वस्थ पक्ष के समर्थक रहे हैं।

शुक्लजी ने छायावाद की कटु आलोचना की। श्री वाजपेयी जी ने काव्य को बंधी बंधाई परिपाटी का रचना न मानकर जीवनकी उन्मुक्त स्वच्छन्द व सरस अभिव्यक्ति माना है। इस श्रेणी के आलोचकों ने काव्य को अपना आधार माना और आलोचना सिद्धान्तों का एक प्रायोरी अनुकरण नहीं किया है।

डा० नन्ददुलाल वाजपेयी ने तो विशेष रूप से निगमनात्मक शैली को अपनाया है। पन्तजी, प्रसादजी और अन्य कवियों की कई आलोचनाओं पर अंग्रेजी कवियों

१—महादेवी का विवेचनात्मक गद्य–पृष्ठ ५६।
२—आधुनिक हिन्दी साहित्य (बाजपेयी जी विरचित)—पृष्ठ ३७१।
३—काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध–पृष्ठ १२८।
४—पल्लव की भूमिका।
५—श्री सुमित्रानन्दन पन्त—६० वर्ष एक मूल्यांकन।

का प्रभाव दिखाई देता है। पन्तजी लिखते हैं कविता हमारे प्राणों का संगीत है छन्द हृदयकम्पन कविता हमारे परिपूर्ण क्षणों की वाणी है हमारे जीवन का पूर्ण रूप। हमारे अन्तरतम प्रदेश का सूक्ष्माकाश ही संगीतमय है उत्कृष्ट क्षणों में हमारा जीवन ही बहने लगता है। उसमें एक प्रकार की सम्पूर्णता स्वरैक्य तथा संयम आ जाता है।[1] ऐसे ही विचार वर्ड्सवर्थ ने लिरिकल बैलेड्स की भूमिका में व्यक्त किये थे। इस तरह के आलोचकों ने अंग्रेजी की नवीन समीक्षा पद्धति वस्तु सकलन चरित्रचित्रण भाव अनुभूति कल्पना सवेदनात्मक अनुभूति व्यंजना और छन्दात्मकता को लेकर बाह्य और आंतरिक पक्ष को रखा। इनका विवेचन करते समय आलोचक अंग्रेजी के विभिन्न ग्रंथों का आधार लेते हैं जो हिन्दी आलोचना पर अंग्रेजी का प्रभाव का द्योतक है। यथा डा० भगवत स्वरूप ने इनके विवेचन में विभिन्न अंग्रेजी आलोचकों के मतों का उल्लेख किया है।[2]

गंगाप्रसाद पाण्डे ने कला में बाह्य जीवन संबंधी आरोप चाहे वह धार्मिक हो चाहे नैतिक का अनुचित माना है। वे इस काव्य की इस भावना पर भी वर्ड्सवर्थ का प्रभाव है। इस शैली के आलोचना के प्रारम्भिकतया इन्दु के सम्पादकीय में प्राप्त हो सकते हैं। पल्लव की भूमिका में इसका प्रत्यक्ष विकास दिखाई देने लगा। छायावादी कवियों ने अपनी भूमिकाओं में इसे और भी सबल बनाया। इस पर कवि पंत विभूतियों ने स्वतंत्र पुस्तक भी लिखी।

उपर्युक्त भूमिकाओं में इन आलोचकों ने अपने हृदय को खोल कर रखा है। वहीं काव्य के उदाहरणों उनकी अनुभूति के कारणों और काव्य को समझने के उपयुक्त तत्वों का विश्लेषण किया गया है। सामान्यतः निराला आधुनिक कवि और पल्लव प्रवृत्ति के आलोचनात्मक अंश इस कथन की सच्चाई प्रकट करते हैं। यह अभिव्यक्ति वेडसवर्थ और कालरिज से प्रभावित दिखाई देते हैं। साथ ही ब्रैडले और टी० एस० इलियट की आलोचना पद्धति ने भी इसके विकास में—तत्व को अपनाने में सहयोग दिया।

१—पल्लव की भूमिका।

२—डा० भगवत स्वरूप मिश्र—हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास—पृष्ठ ४३० से ४६०।

यहाँ अभिप्राय यही है कि अंग्रेजी के लेखकों, कवियों और नाटककारों की भूमिका लेखन ने आधुनिक हिन्दी के लेखकों की इस प्रवृत्ति को सबल बनाया। इसके दर्शन प्रसादजी की आलोचना में भी होते हैं।

जयशंकर प्रसाद—

प्रसादजी सामान्यतः सैद्धान्तिक निरूपण के पक्ष में रहे हैं। उन्होंने भारतीय साहित्य के सिद्धान्तों और दार्शनिक धाराओं के समन्वय का प्रयत्न किया। रस के बारे में उनके विचार इस को स्पष्ट कर देते हैं। आनन्दवर्धन भी काश्मीर के थे और उन्होंने वहाँ के आगमानुयायी आनन्द सिद्धान्त के रस को तार्किक अलंकार मत से सम्भव किया। किन्तु महेश्वराचार्य अभिनव गुप्त ने उन्हीं की व्याख्या करते हुए अभेद मय आनन्द पथ वाले शैवाद्वैतवाद के अनुसार साहित्य में रस की व्याख्या की।[1] इनकी धारणायें शास्त्रीय और दार्शनिक पृष्ठभूमिपर आधारित हैं। कला सम्बन्धी विवेचन में उन्होंने विभिन्न भारतीय पण्डितों के मतों का उल्लेख किया है। उन्होंने कला और आत्मानुभूति को दो भिन्न सत्ताओं के रूप में स्वीकार किये हैं। इसी भाँति रहस्यवाद की चर्चा करते समय भी उन्होंने विभिन्न भारतीय शास्त्रवेत्ताओं के मतों का उल्लेख किया है। उन्होंने भारतीय चिन्तन में रहस्यवाद का प्रमुख स्थान माना है। उन्होंने रस विषयक विवेचन भी प्रस्तुत किया है। इसमें शैवदर्शन का पूरा पूरा उपयोग किया गया है। भारतीय शास्त्रीय दृष्टि से उन्होंने अलंकार वक्रोक्ति आदि का परीक्षण कर अपने निर्णय प्रदान किए हैं।[2] इनकी निम्नांकित धारणा इनके मौलिक चिंतन का प्रतीक है।— प्रगतिशील विश्व है किन्तु अधिक उछलने में स्खलन का भय है। साहित्य में युग की प्रेरणा भी आदरणीय है, किन्तु इतना ही अलम नहीं है। जब हम समझ लेते हैं कि कला को प्रगतिशील बनाये रखने के लिए—हमको वर्तमान सभ्यता का—जो सर्वोत्तम है—अनुसरण करना चाहिए तो हमारा दृष्टिकोण भ्रमपूर्ण हो जाता है। अतीत और वर्तमान को देखकर भविष्य का निर्माण होता है। इसलिए हमको साहित्य में एकांगी लक्ष्य नहीं रखना चाहिए। पश्चिम में भी अपना सब कुछ छोड़ कर नये को नहीं अपनाया गया है।[3] इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रसादजी ने छाया

१—काव्य कला तथा अन्य निबन्धन—पृष्ठ ७४ से ७६।

२—वही–पृष्ठ ७५ ७६।

३—वही–पृष्ठ १०८।

काव्य प्रणाली का भारतीयता से सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया । वे कहते हैं कि सौन्दर्य की अनुभूति के साथ ही साथ हम अपने संवेदन को आकार देने के लिए उनका प्रतीक बनाने के लिए बाध्य होते हैं । इसलिए अमूर्त सौन्दर्य बोध कहने का कोई अर्थ नहीं रह जाता ।[1]

श्री सुमित्रा नन्दन पन्त—

पंतजी ने छायावाद का समर्थन किया । पल्लव की भूमिका इसकी साक्षी है कि यह भाव से बुद्धि की ओर और बुद्धि से यथार्थ की ओर प्रगति करते रहे हैं । उक्त भूमिका इस बात का प्रमाण है कि कवि आलोचक के रूप में आ गया है और वह काव्य की मूल प्रेरणाओं का अध्ययन प्रस्तुत कर रहा है । पंतजी कहते हैं मेरा उद्देश्य केवल ब्रज भाषा के अलंकृत काल के अंतर्देश में अंतर्निहित उसका व्या... की वृहत चुम्बक की ओर इंगित भर कर देने का रहा है जिसकी ओर आक... पित होकर उस युग की अधिकांश शक्ति और चेष्टाएं काव्य की धाराओं के रूप में प्रवाहित हुई हैं ।[2] आधुनिक कवि भाग दो में पर्यालोचन करते समय इन्होंने अपने विकास पर प्रकाश डाला है । युगवाणी के दृष्टिपात में इन्होंने युग दर्शन सापेक्ष कला पक्ष का विवेचन किया है । तत्पश्चात् उत्तरा, स्वर्ण किरण, स्वर्ण धूलि और युगांत में भी उन्होंने अपने दृष्टिकोण को स्पष्ट किया है । इन्होंने अलंकारों को भावों के लिए आवश्यक माना है । वे कहते हैं कि अलंकार केवल वाणी की सजावट के लिए नहीं वे भाव की विशेष अभिव्यक्ति के द्वार हैं । वे वाणी के हास, अश्रु, स्वप्न, पुलक, हाव भाव हैं ।[3] पन्तजी ने रस गंगाधर की प्राचीन शैली को पुराना बताया है ।[4] इन्होंने समय के साथ प्रगति की ओर छायावादी कविता को कालान्तर में अतिवय... क्तिक बौद्धिकता, दुरूहता, संघर्ष अवसाद और निराशा की प्रतिक्रिया माना ।[5] उन्होंने तुलनात्मक प्रवृत्ति को भी स्थान दिया है । अंग्रेज आलोचकों के समान इन्होंने अपने साहित्यिक जीवन का पर्यवेक्षण भी किया है ।[6] इन्होंने बताया है कि वे उपहार

१—काव्य कला तथा अन्य निबंध —पृष्ठ ३५ ।
२—पल्लव की भूमिका–पृष्ठ ८ ।
३—गद्य प्रवेश–पृष्ठ १७ ।
४—गद्य पथ प्रवेश–पृष्ठ ४१ ।
५—वही–पृष्ठ ५७ ।
६—साठ वर्ष–एक रेखांकन ।

स्वरूप अंग्रेजी की पुस्तकें प्राप्त किया करते थे। इन्होंने यह इंगित किया कि प्रारम्भिक दिनों में इनकी पीढ़ी की कविताओं को छायावादी नहीं कहा जाता था। सम्भवत यह नाम पीछे से आरोपित किया गया। इसी हेतु इन्होंने पल्लव की भूमिका में छायावाद का उल्लेख नहीं किया। इन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि उन्हें कविता सम्बन्धी प्रेरणा अंग्रेज कवियों से मिली। इनकी आलोचना करते हुए कोई कह देता था 'प्रटी नोन मैन्स' और कोई 'यू आर दी फ्यूचर पोइट आफ इण्डिया''।[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि पंतजी की शैली पर अंग्रेजी का प्रभाव है। पंतजी के समान महादेवी वर्मा ने भी छायावाद का समर्थन किया।

महादेवी वर्मा—

महादेवी वर्मा ने अपनी भूमिकाओं और लेखों में अपना मन्तव्य को स्पष्ट किया है। वे काव्यानन्द को मंगलमय मानती है। अंग्रेजी की काव्य पुस्तकों के समान उनकी काव्य रचनाओं के प्रारम्भ में भूमिकाएँ प्राप्त होती हैं। यामा, दीप शिखा, सान्ध्य गीत, आधुनिक कवि, प्रथम भाग और चाँद तथा साहित्य संदेश के लेखों में इनकी भावनाएँ मुखरित हुई है। उन्होंने अंग्रेजों के समान काव्य को सर्वोत्कृष्ट कला माना है जिनका लक्ष्य है सत्य और सौन्दर्य है साधन। इस धारणा पर पाश्चात्य जगत के सत्यम् शिवम् सुन्दरम् का प्रभाव दिखाई देता है। काव्य को आत्म विषयक दृष्टि से देखना भी उन पर अंग्रेजी प्रभाव सिद्ध करता है। इन्होंने साहित्यिक वादों की मौलिक व्याख्यायें की है।[2] अतएव ये छायावाद को बाह्य वस्तु नहीं मानती है। इन्होंने अंग्रेज आलोचकों के समान काव्य की मनोवैज्ञानिक व्याख्या भी की है जिसमें भारतीय साधारणीकरण और पाश्चात्य मनोविज्ञान की संतुलित विवेचना के दर्शन होते है। यथा—

छायावाद का काव्य अनुभूतिमयी रचना पर आश्रित है। अत व्यापक करुणा भाव और व्यक्तिगत विषाद के बीच की रेखा और भी अस्पष्ट हो जाती है। गीत में गाया हुआ पराया दुख भी अपना हो जाता है और अपना भी सबका इसी से व्यक्तिगत हार से उत्पन्न यथा एक समष्टिगत करुण भाव में एक रस जान पड़ती है।[3]

१—साठ वर्ष-एक रेखांकन।

२—महादेवी का विवेचनात्मक गद्य-पृष्ठ ६०, ६१।

३—महादेवी का विवेचनात्मक गद्य-छायावाद—पृष्ठ ६७।

ये भारतीय आनन्द और पाश्चात्य यथार्थ के मध्य रूप को मानती रही हैं।[१] इसलिये इनके छायावाद सम्बन्धी कथनों को आदि कथन के समान का आदर दिया गया है।[२] महादेवी जी के समान भूमिकायें लिखने, मनोवैज्ञानिक विश्लेषण को स्थान देने और आलोचना की पाश्चात्य शैली को अपनाने के कारण निरालाजी पर भी पश्चिमी आलोचना का प्रभाव दिखाई देता है।

निराला --

छन्द भाव भाषा और उद्देश्य के सम्बन्ध में महाकवि निरालाजी पूर्ण स्वच्छन्दता के चाहक हैं। वे कविता प्रथम वर्ग छन्द अनुप्रास रस अलंकार या ध्वनि की सुन्दरता को नहीं मानते किन्तु इन सभी के सामञ्जस्य को ही पूर्ण सीमा के प्रभाव को मानते हैं।[३] इस पर पाश्चात्य के कथन की छाया है वे भी सुन्दरता को विभिन्न अंगों के सम्मिलित प्रभाव का स्रोत मानते हैं। इन्होंने तुलनात्मक निर्णयात्मक और व्याख्यात्मक शैली को अपनाया है।[४] निरालाजी ने मुक्त छन्द का समर्थन किया। ये व्यक्तिगत कटुआलोचना के शिकार बने और अंग्रेज कवि कीट्स के समान काल कवलित हो गये। इन्होंने अंग्रेजों से प्राप्त पुस्तकालोचन शैली को भी अपनाया। इस प्रकार निरालाजी पर अंग्रेजी काव्य शास्त्र का प्रभाव परिलक्षित होता है।

उपर्युक्त प्रभाव के अतिरिक्त निरालाजी ने यह भी कहा है कि—सूक्तियाँ, उपदेश मैंने बहुत कम लिखे हैं केवल चित्रण किया है, उपदेशों को मैं कवि की कमजोरी मानता हूँ[६]। इस कथन को अंग्रेजी के यथार्थवादी कवियों का प्रभाव माना जा सकता है।

१—महादेवी का विवेचनात्मक गद्य—छायावाद—पृष्ठ १६१।
२—डा० नगेन्द्र—काव्य चिन्तन—पृष्ठ ७२।
३—प्रबन्ध प्रतिमा—पृष्ठ २७५।
४—बंगाल के वैष्णव कवियों का शृंगार वर्णन।
५—प्रबन्ध प्रतिमा एवं परिमल की भूमिका—पृष्ठ २१।
६—प्रबन्ध प्रतिमा—पृष्ठ २८४।

उपयुक्त कवि आलोचकों के अतिरिक्त अन्य आलोचकों ने भी छायावाद पर प्रकाश डाला है। उदाहरण के लिये डॉ० देवराज जी उपाध्याय ने रोमैंटिक साहित्य शास्त्र का विवेचन किया। इसकी विशेषता यह है कि इसमें इंग्लिश कवियों के जीवन पर विस्तृत और प्रामाणिक प्रकाश डाला है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसकी भूमिका में रोमैन्टिसिज्म की व्याख्या की है। उसके द्वारा हिन्दी साहित्य के ऊपर पर पड़े हुये प्रभाव को भी स्पष्ट किया गया है। यहाँ वे लिखते हैं '१६ वीं शताब्दी के आरम्भ में अंग्रेजी के जिन साहित्यकारों में उन्मुक्त स्वाधीन दृष्टि भंगी विकसित हुई थी वे विद्रोही अवश्य थे । उसने हमारे देश के साहित्य को प्रभावित किया। अतएव हम निःसंकोच कह सकते हैं कि रोमैन्टिसिज्म ने हिन्दी आलोचना को प्रभावित किया।" [1] साथ ही यह भी विचारणीय है कि रीतिकालीन पृष्ठभूमि और द्विवेदी युगीन इतिवृत्तात्मकता ने भी हिन्दी साहित्य को सामान्य रूप से और आलोचना को विशेष रूप से हथकड़ियाँ तोड़कर नये और प्रशस्त मार्ग की ओर बढ़ाया। अतः एक ओर जहाँ इस पर अंग्रेजी प्रभाव है वहाँ दूसरी ओर भारतीय पृष्ठभूमि भी विद्यमान है।

अन्य शैलियाँ

प्रभावाभिव्यंजनात्मक और अभिव्यंजनात्मक —

अंग्रेजी प्रभाव के फलस्वरूप हिन्दी में कई आलोचना शैलियाँ सामने आईं। प्रभावाभिव्यंजक और क्रोचे की अभिव्यंजनात्मक शैलियाँ उदाहरणस्वरूप देखी जा सकती है। पण्डित भगवत शरण उपाध्याय ने प्रथम श्रेणी का अनुसरण नूरजहाँ का मूल्यांकन किया है। लेखक ने स्वयं और उसके दो शब्द लेखक पण्डित विश्वनाथ प्रसाद ने इसे स्वीकार भी किया है—नूरजहाँ के अध्ययन का मेरे ऊपर बड़ा मार्मिक प्रभाव पड़ा। फलतः कुछ अनुकूल अंतर्प्रक्रियायें खुल पड़ीं। मैं एक बात को स्पष्टतया कह देना चाहता हूँ कि प्रस्तुत प्रयास समालोचक का नहीं प्रत्युत सहानुभवी और समान धर्मा का है। मैं प्रभाववादी हूँ। जब अनुकूल प्रभाव का स्पर्श होता है प्रभाववादी चुप नहीं बैठ सकता। दो शब्द के लेखक कहते हैं—यह तो निःसंकोच कहा जा सकता है कि यह आलोच्य काव्य का शास्त्रीय भाव नहीं है। आजकल

१—पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव—पृष्ठ ६७।

के निर्माण मे महत्वपूर्ण माना है।[7] हिन्दी म इस पद्धति को मह व दिया जाता है। यथा कबीर के विवेचन मे अथवा हि न्दी साहित्य क आदि काल को समझने म उप युक्त सभी तत्वो को समझने का प्रयत्न किया जाता है । डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने अध्ययन, मनन और चिन्तन से हि दी के आदिकाल और कबीर का एसा ही श्लाघ्य अध्ययन प्रस्तुत किया है । यहा यह उल्लखनीय है कि डा० हजारी प्रसाद जस मेधावी भावक तो ज्ञान पूवक इसक दुगु णो का हटा देत हैं। अ यथा इस प्रणाली म निम्नांकित दोष पाय जात हैं —

क—यह पद्धति 'ए पेस्ट्रायरी है अर्थात् यह युग को देखकर साहित्य को उसस सम्बन्धित कर देती है । यह आग के लिय नही बता सकती की अमुक देश और अमुक जाति म किस प्रकार का साहित्य होगा ।

ख—एक ही युग म भी एक ही प्रकार की रचनायें नहीं होती हैं। यथा रीति काल म भूषण विद्यमान थे और वीर गाथा काल म अमीर खुसरो । यही क्यो एक ही युग म भी रचनाओ म अन्तर होता है ।

इसे हम यो कह सकते हैं कि भक्ति काल मे एक ओर जहाँ सहृदय साहित्य शिरोमणि तुलसी थ तो दूसरी ओर आचाय केशव । एक ही काल म विश्व प्रख्यात कवि द्र रवि द्र थे तो दूसरी ओर अपनी ही कोठरी म गुन गुना कर मर जाने वाले कवि जुगनू भी ।

कहने का तात्पय यह है कि यह पद्धति अपने आप मे परिपूर्ण नही है । इसे साध्य नही माना जा सकता । यह साधन है और इसम देश काल अनुसार व्यक्ति की क्षमता का भी समावेश कर लिया जाना चाहिये । डा० न द दुलारे वाजपेयी की दृष्टि मे यह पद्धति त्रुटि पूर्ण है । फिर भी इस पद्धति क पक्ष मे यह कहा जा सकता है कि इसने हमे देश काला अनुसार कवियो की आलोचना करने की दृष्टि प्रदान की । वीर गाथा काल के कवियो मे आज का सा चित्रण न प्राप्त कर हम उसकी अवहेलना नहीं कर सकते हैं । उनकी अवहेलना करने से यह पद्धति हम रोकती है और उस युग क अनुकूल हमे कृति का परीक्षण करने का आदेश देती है ।

७—हिस्ट्री ओफ इगलिश लिट्रेचर टेन भूमिका ।

डा० ग्रियर्सन और आचार्य शुक्ल जी ने ऐतिहासिक पद्धति को भी अपनाया था। किन्तु उन्होंने इतिहास को खण्ड रूप में ही देखा था। इसलिये उन्होंने भक्ति काल को इस्लाम की प्रतिक्रिया कह डाला। अन्य लेखक और आलोचकों पर इसका इतना प्रभाव पड़ा कि वे भी भक्ति कालीन साहित्य को इस्लाम की प्रतिक्रिया कहने लगे। यथा डा० ग्रियर्सन ने कवियों के विवेचन में ऐतिहासिक दृष्टि व्याख्या की ओर भक्ति काल और रीति काल के विवेचन से पूर्व संक्षेप में उन्होंने तत्कालीन ऐतिहासिक परिस्थितियों का विवेचन भी किया। शुक्ल जी ने ऐतिहासिक विवेचन को आगे बढ़ाया और उसे निम्नांकित रूप से अभिव्यक्ति दी —

देश में मुसलमानों का राज्य प्रतिष्ठित हो जाने पर हिन्दू जनता के हृदय में गौरव, गर्व और उत्साह के लिये अवकाश ही न रह गया। उसके सामने ही उसके देव मन्दिर गिराये जाते थे देव मूर्तियाँ तोड़ी जाती थी और राज्य पुरुषों का अपमान होता था और वे कुछ भी नहीं कर सकते थे। ऐसी दशा मे अपनी वीरता के गीत न तो गा सकते थे और न बिना लज्जित हुए सुन ही सकते थे। अपने पौरुष से हताश जाति के लिये भगवान की शक्ति और करुणा की ओर ध्यान ले जाने के अतिरिक्त दूसरा मार्ग ही क्या था। १

तत्पश्चात् आलोचक कहने लगे —

सात शताब्दियाँ व्यतीत हो गईं जबकि हिन्दुओं के स्वातन्त्र्य सूर्य के अस्त होने के साथ हिन्दी साहित्य और इतिहास का वीर गाथा काल भी प्राय समाप्त हो गया। इन प्रधान मुसलमान राजवंशों के सिवाय और भी छोटे मोटे अनेक मुसलमानी राज्य इतर स्थानों पर स्थापित होते थे तथा बिगड़ते थे। और इनके सम्पर्क का राजनीतिक स्थिति परिवर्तन के साथ भारत के सामाजिक तथा धार्मिक परिस्थितियों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। जब हम अपने देश की रक्षा न कर सके हम लोगों के उपासना गृहों देव मन्दिरों तथा पाठशालाओं को यथा शक्ति नष्ट भ्रष्ट किया जब हम साहस तथा वीरता के कार्य में अशक्त हो गये तब वीर गाथाओं की रचना या श्रवण करना हमारे लिये सम्भव नहीं रह गया। ऐसी दशा में सब आशा मय भगवान की सुरक्षणी पर असुर विनाशिनी शक्ति की ओर दृष्टि लगाकर अर्थात् सगुणोपासना कर हम अपने हृदय को सांत्वना देने की चेष्टा करने लगे। इन कारणों से

---

१ — हिन्दी साहित्य का इतिहास–पृष्ठ ६३, चौदहवाँ पुनमुद्रण स० २०१६वि०

निगु ए उपासना की ओर भी जनसाधारए की रुचि बढी ।[१] आ हजारीप्रसाद द्विवेदी न इस त्रुटि का निराकरए कर भारतीय इतिहास और सस्कृति क चिर विकास को देख कर भक्ति काल को हमारी सस्कृति के अविच्छिन्न श्रोत का प्रकटीकरए माना ।[२] तत्कालीन धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियो ने कबीर आदि स त कवियो को लोक प्रिय होने म सहायता दी ।[3] कबीर के काव्य म प्राप्य युग विरोध की भावना भी युग की ही देन थी ।[४] हि दी म तो ऐतिहासिक पद्धति इतना घुलमिल गई है कि जिस प्रकार बिना यह जाने कि सत्यम् शिवम् सुन्दरम्, अ ग्रजी के टु थ ब्युटी एवं गुडनेस क पर्याय हैं, हर व्यक्ति इनका प्रयोग करता है उसी भाति हर यक्ति ऐतिहासिक पद्धति को भी यथा शक्ति अपना लेता है । वह ता हिन्दी को अपनी पद्धति सी बन गई है । हिन्दी क अधिकाश शोध ग्रन्थो म ऐतिहासिक विवचन प्रस्तुत किया जाता है । इस दृष्टि स डा० सुधीन्द्र का हिन्दी कविता म युगान्तर डा० नारायण दास का आचाय भिखारी दास और इन पक्तियो के लखक का हि दी नाटको का विकासात्मक अध्ययन भी देख जा सकत हैं । श्री रामधारी सिंह दिनकर ने सस्कृति के चार अध्याय म हमारे सास्कृतिक पक्ष का सुन्दर और सुचारु एवम् विकासात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है । यह अ ग्रजी के ग्रीनस हिस्टी ओफ इ गलिश पिपल की टक्कर का ग्रथ है । शाति प्रिय द्विवदी ने युग और साहित्य म देश काल और लोक रुचि का अध्ययन प्रस्तुत किया है ।

निष्कर्ष —

अतएव यह कहा जा सकता है कि अ ग्रेजी स आई हुई इस पद्धति को हिन्दी म बहुतायत स अपनाया गया है । ध्यान यही रखना है कि इस पद्धति का अ धानुकरण नही किया जाना चाहिये । इसे अन्य पद्धतियो की सहायता स प्रयोग म लना चाहिये । उनम मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा पद्धति सबसे महत्वपूर्ण है ।

मनोविश्लेषणात्मक समीक्षा —

अ ग्रेजी प्रभाव के कारण सस्कृत के "का य यशसेऽर्थ कृते' आदि का य प्रयो जनों को अपूर्ण माना जाने लगा । आधुनिक आलोचक तो यहां तक कहने लगे कि—

१—ब्रजरत्न दास नन्द दास ग्रन्थावली पृष्ठ १ २ ।
२—हिन्दी साहित्य की भूमिका पृष्ठ २, ३१ ४३ ।
३—वही—
४—कबीर पृष्ठ १ ५ ।

'वस्तुत संस्कृत के आचार्यो ने काव्य के वर्ण विषय के स्वरूप तथा सृजन तथा समय (व) कवि की मानसिक स्थिति पर बहुत कम विचार किया है । यह भी तो विवादास्पद ही है कि साधारणीकरण का सम्बन्ध केवल पाठकों से ही है अथवा कवि से भी ।[1] अतएव यह अपूर्णता दिखा कर फ्रायड एडलर और यू ग के सिद्धान्तो को विश्लेषण कर उनकी पद्धतियो की सर्वांगीण व्याख्या की जाती है तथा कई ग्रन्थो मे अंग्रेजी और अमेरिका के आलोचको के उदाहरण दिये जाते हैं ।[2] डा० भगवत स्वरूप ने समरसेट माम और हरबर्ट रीड की यथा प्रशंसा व्याख्या की है । मनोविश्लेषणवाद के नाम पर मानस शास्त्र और मानसिक स्तर, मनुष्य प्रकृति पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों, साहित्य और मनोविश्लेषण सृजन की आवश्यकताए यथार्थ और साहित्य पर विचार किया जाता है ।[3]

मनोवैज्ञानिक व्याख्याएँ –

इस पद्धति पर पहला अंग्रेजी प्रभाव तो यह है कि उपयुक्त मनोवैज्ञानिकों के सिद्धान्त के आधार पर काव्य का परीक्षण किया जाता है । उनके आधार पर कवि पात्रो और भारतीय सम्प्रदायो की मनोवैज्ञानिक व्याख्याएं प्रस्तुत की जाती हैं । यह परीक्षण हमे कविता आदि को समझने आदि म सहायता भी देता है किन्तु हमे यह नही भुला देना है कि काव्यालोचन और मनोविज्ञान दो भिन्न भिन्न विषय हैं । आलोचना के नाम पर केवल मनोवैज्ञानिक तथ्यो का उद्घाटन समीचीन नही माना जा सकता । यदि इसका समुचित उपयोग किया जाय तो उपयुक्त रहेगा । जिस प्रकार शुक्लजी और डा० नगेन्द्र ने इस पद्धति को अपनाया है वह अनुकरणीय है । आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने रस आदि की सुन्दर मनोवैज्ञानिक व्याख्याएँ की हैं । डा० नगेन्द्र के आलोचना साहित्य म इसे यथा स्थान खोजा गया है । डा० राकेश गुप्त का शोध प्रबन्ध इसी प्रणाली का प्रमाणिक ग्रन्थ है । डा० वैकण्ठ शर्मा ने भी मनोवैज्ञानिक पद्धति की महत्ता को स्वीकार किया है । डा० नारायण दास खन्ना ने आचार्य भिखारी दास के अध्ययन करते समय भी मनोवैज्ञानिकता के आधार पर श्रृंगार रस का सूक्ष्म विवेचन किया है ।

१—डा० भगवत स्वरूप-हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास पृष्ठ ४६७ ।
२—वही—पृष्ठ ४६० से
३—वकण्ठ शर्मा-आधुनिक हिन्दी में समालोचना का विकास पृष्ठ ४१७ से ४४ ।

मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त और सरस साहित्य —

दूसरा प्रभाव यह भी है कि कतिपय लेखकों ने फ्रायड यू ग और एडलर प्रभति मनोवैनानिकों के सिद्धा तो का प्रतिपादन करने के लिये ही साहित्य सजन तक किया है। श्री अज्ञेय और श्री इलाच द्र जोशी के उपन्यास इसी श्रेणी मे आते हैं। शम्भु दयाल सक्सेना के नाटक और मित्र जी के भी आधी रात, सिंदूर की होली और सामाजिक नाटक इसी पक्ति म रक्खे जा सकते है। लक्ष्मी प्रकाश के निबन्ध और श्री सूय प्रकाश की कहानियाँ इस कथन की साक्षी हैं। इसके पात्र दमित वासना, मानसिक ग्रथियां और प्रभुत्व कामना से ग्रसित दिखाई देते हैं।[1]

श्री अज्ञेय के त्रिशकु नामक निब ध मे प्रभुत्व कामना और क्षतिपूर्ति सिद्धा त की सम्यक व्याख्या की गई है। आलोचना मे भी वे कहते हैं कि व्यक्ति का अह स्वीकृति चाहता है।[2] जब उसकी अवहलना की जाती है तब वह विद्रोह करता है।

कला सामाजिक अनुपयोगिता की अनुभूति के विरुद्ध अपने को प्रमाणित करने का प्रयत्न अपर्याप्तता के विरुद्ध विद्रोह है। हमारे कल्पित प्राणी ने हमारे कल्पित समाज के जीवन म भाग लेना कठिन पाकर अपनी अनुपयोगिता की अनुभूति से आहत होकर अपने विद्रोह द्वारा उस जीवन का क्षेत्र विकसित कर दिया है। उसे एक नई उपयोगिता सिखाई है। पहला कलाकार ऐसा ही प्राणी रहा होगा। पहली कला चेष्टा विद्रोह की रही होगी।[3] जोशी जी ने (इलाचन्द्र जोशी भी) छायावाद और प्रगतिवाद की मनोवैज्ञानिक व्याख्याएं की हैं। वे कहते हैं—

हमारे प्रगतिवादी कवि भी अपने समाज विद्रोही उद्गारों द्वारा एक विशेष प्रकार के रोमैन्टिक रस का रसास्वाद पा रहे हैं। जो छायावादी रस का सब्सटीट्यूट है।"[4]

१—हिन्दी नाटकों का विकासात्मक अध्ययन-आधुनिक नाटकों का विवेचन।
२—अज्ञेय-त्रिशकु, परिस्थिति और साहित्यकार पृष्ठ २० से २८।
३—सौन्दर्य बोध, त्रिशकु पृष्ठ २६।
४— विवेचना पृष्ठ १६६–७०।

निष्कर्ष —

इस आलोचना ने हमारी आलोचना पद्धति को प्रभावित किया है। कवि की मानसिक प्रक्रिया को ध्यान में रखकर और सामाजिकों की मनःस्थिति पर दृष्टि रख कर लिखी गई आलोचना वास्तव में सराहनीय होती है। यहाँ ध्यान रखने की बात है कि आलोचक का उद्देश्य समालोचना होना चाहिये न कि केवल मनोविश्लेषण। यदि आलोचक केवल मनोविश्लेषण में फँसकर आलोचक के स्थान पर मनोवैज्ञानिक बन बैठता है तो यह निस्सन्देह असह्य है। जिस प्रकार से ऐतिहासिक पद्धति को ध्यान पूर्वक अपनाना चाहिये वैसे ही इसका भी अनुकरण इष्ट है। आज का खोज साहित्य अधिकांशत इन उपरकथित प्रणालियों को अपनाता है।

खोज साहित्य —

हिंदी को अंग्रेजी से रिसर्च की प्रवृत्ति प्राप्त हुई है। प्रारम्भिक दिनों में तो हिंदी खोज साहित्य का प्रणयन पाश्चात्य विद्वानों द्वारा अंग्रेजी में किया जाता था। यही नहीं कुछ समय तक भारतीय लेखकों ने भी अपनी खोज की अभिव्यक्ति अंग्रेजी के माध्यम से की। डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल ने हिंदी काव्य की निर्गुण धारा नामक अपने शोध प्रबंध का मूल रूप अंग्रेजी में ही प्रस्तुत किया था। डा० राम शंकरजी शुक्ल रसाल के अभिनन्दनीय शोध आधि निबंध इवोल्युशन ऑफ हिन्दी पोईटिक्स का प्रणयन भी अंग्रेजी में ही हुआ था। डा० इन्द्रनाथ मदान का मॉडर्न हिन्दी लिट्रेचर भी इसकी पुष्टि करता है। आज भी श्री कन्हैया लालजी कल्ला ने अपना योग विषयक शोध प्रबन्ध अंग्रेजी में ही लिखा था आजकल अधिकांशत हिन्दी के शोध प्रबन्ध हिन्दी में ही लिखे जाते हैं। फिर भी यह तो मानना ही होगा कि हिन्दी आलोचना आज भी अंग्रेजी के माध्यम से प्रगति करने का साहस कर रही है।

इसमें प्रेरक अंग्रेज आलोचक और अंग्रेजी के ग्रन्थ रहे हैं। उदाहरण के लिए हम कह सकते हैं कि डा० ग्रियर्सन ने अपने इतिहास के पाँचवें अध्याय में मुगल दरबार का विवेचन किया।[१] इसमें अकबर बादशाह, बीरबल, मानसिंह रामदास और करणाणन आदि का उल्लेख किया। परिणामतः हिन्दी में अकबरी दरबार के हिंदी कवि का प्रणयन हुआ।[२] ग्रियर्सन कृत ग्रन्थ को इसका प्रेरणा स्रोत माना जा सकता

१—किशोरीलाल गुप्त कृत ग्रियर्सन के इतिहास का अनुवाद पृष्ठ १२६–१३६

२—डा० सरयू प्रसाद विरचित शोध प्रबन्ध।

है। इस भांति डा० ग्रियसन ने तुलसी पर नोटस लिखे।[1] इसमें कवि से सम्बन्धित तिथियों का ज्योतिष के आधार पर परीक्षण किया गया। सम्भवत: हिन्दी में तुलसी की अन्त साक्ष्य सम्बन्धी खोज को इसमें प्रेरणा मिली हो। इसे फिर आगे तो हिन्दी में मौलिकता पूर्ण ढंग से बढ़ाया गया—डा० माता प्रसाद गुप्त कृत तुलसीदास इसका उदाहरण है। अंग्रेजी में आये हुए इस खोज साहित्य ने प्राचीन भारतीय साहित्य को प्रकाश में लाने का स्तुत्य प्रयास किया है। इसके फलस्वरूप विभिन्न ऐसे लेखकों पर प्रकाश डाला गया जो पहले सन्दिग्ध या अप्राप्य थे। इससे हमारे साहित्य की श्री वृद्धि हो रही है। डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा का अभिमत है कि आज की हिन्दी का खोज साहित्य अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इसके आधार पर हिन्दी किसी भी समृद्धशाली साहित्य से लोहा ले सकती है और यह हिन्दी के आलोचकों के मानसिक विकास का द्योतक भी है। इसमें यही ध्यान देने की बात है कि खोज निष्पक्ष और सच्चाई से की जानी चाहिये। राग और भ्रम ग्रसित दृष्टिकोण अनुपयुक्त और त्याज्य है।

हिन्दी आलोचना में संस्कृत के शास्त्रीय सम्प्रदायों पर दृष्टिपात करना, अंग्रेजी के मनोवैज्ञानिक सिद्धान्तों के समकक्ष रख कर उन्हें देखना अंग्रेजी प्रभाव का ही परिणाम है। उन्हें खोज का विषय भी बनाया जाता है और यदा कदा वे अपना भी लिये जाते हैं। फिर भी पाठय पुस्तकों और शोध ग्रंथों के अतिरिक्त इनका विवेचन नहीं मिलता है। यथा—रस, अलंकार, ध्वनि, वक्रोक्ति और औचित्य का उल्लेख पहले जितनी उन्नति पर नहीं है। साथ ही अलंकारों का सूक्ष्म विवेचन भी डा० रामशंकरजी शुक्ल रसाल जैसे मेधावी पण्डित ही कर पाये है। अतएव शास्त्रीय दृष्टि को उन्नत बनाना आवश्यक है। आज रस निष्पत्ति के स्थान पर साहित्य को विचारोत्तेजक बनाया जाता है। अंग्रेजी आलोचना के आधार पर अन्य भाषाओं के उदाहरण देकर हिन्दी में उपयुक्त तत्वों का ग्रहण करने की आवश्यकता बताई जाती है।[2] इसमें अनुसंधान प्रवृत्ति सहयोग देती है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य में अंग्रेजी के प्रभाव स्वरूप खोज साहित्य ने विकास किया। परिणामत: अंग्रेजी और संस्कृत काव्य शास्त्र से सहारा लेकर निम्नांकित तथ्य सामने आये—

१—किशोरी लाल गुप्त कृत ग्रियसन के साहित्य का अनुवाद पृष्ठ २४ एवं इण्डियन एण्टीक्वरी सन् १८९३।

२—डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा—पाश्चात्य काव्यलोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव अध्याय ३ ५।

क—संस्कृत शास्त्रीय तत्वों और साहित्यिक प्रवृत्तियों की छानबीन।

ख—अंग्रेजी से प्रभावित शोध ग्रन्थों का प्रणयन जिनमें अंग्रेजी की शैलियों को समझाने का प्रयत्न किया जाता है।

ग—तुलनात्मक अध्ययन पर बल दिया गया और हिन्दी और अंग्रेजी की तुलनाएँ हुई। कहीं-कहीं अंग्रेजी का प्रभाव भी आंका गया।

च—भाषा वैज्ञानिक अध्ययन ने प्रेरणा प्राप्त की।

छ—अंग्रेजी के समान हिन्दी में भी यत्र तत्र अनुसंधान प्रक्रिया पर पुस्तकों का निर्माण हुआ। डा० नगेन्द्र ने डा० रामशंकर जी रसाल ने और कई विश्व विद्यालयों के प्राध्यापकों ने इस दृष्टि से सराहनीय कार्य किया है। डा० विजयेन्द्र स्नातक और डा० सावित्री सिन्हा ने अनुसंधान प्रक्रिया का सम्पादन किया है, जिसमें अधिकारी विद्वानों ने अपने गवेषणात्मक विचार प्रकट किये है।

अंग्रेजी के खोज साहित्य ने हिन्दी की साहित्यिक विधाओं से सम्बन्धित आलोचना को भी प्रभावित किया। हिन्दी की कहानी नाटक उपन्यास आलोचना और गद्य गीत आदि पर की गई आलोचना हमारे कथन की पुष्टि करती है।

साहित्यिक विधाओं की आलोचना

अंग्रजी प्रभाव —

कहानी के तत्वों के सम्बन्ध में कम ही आलोचनायें हो पाई हैं। डा० सत्येन्द्र का प्रेमचन्द की कहानी कला डा० श्री कृष्ण लाल और अन्य आलोचकों द्वारा प्रस्तुत किये गये कहानी संग्रहों के प्रारम्भ में की गई कहानी की बात इस अभाव की पूर्ति करती है। डा० वासुदेव शरण उपाध्याय और डा० मोहन लाल जी जिज्ञासु ने इस ओर सुन्दर कार्य किया है। उक्त सभी विवेचन अपनी शैली अर्थात् विषय प्रतिपादन दृष्टि और तत्व की दृष्टि में अंग्रेजी आलोचना से प्रभावित है। अधिकांश पुस्तकों में अंग्रेजी की परिभाषाएं और अंग्रेजी आलोचकों के मत उद्धृत किये जाते हैं। ...ना की आलोचना में मनोविज्ञान अन्तर्द्वन्द्व संघर्ष और कथा वस्तु पात्र संवाद

वातावरण, उद्देश्य और शैली[1] सोचने को बाध्य करने के गुण की विवेचना आदि इस पर अंग्रेजी प्रभाव सिद्ध करते है साथ ही संस्कृत की कहानियो और आख्यायिकाओं आदि की दृष्टि से भी इस पर विचार किया जाता है । इस सम्बन्ध में वैदिक कहानियो, पौराणिक कथाओं बौद्ध ग्रन्थो और जातक कथाओ का भी उल्लेख किया जाता है ।[2]

इस आलोचना की यह विशेषता है कि इसमें अंग्रेजी प्रभाव को बहुधा स्वीकार कर लिया जाता है । कहानी की विभिन्न शैलियाँ पत्रात्मक डायरी, भावावेश पूर्ण शैली आदि अंग्रेजी से ग्रहण की गई हैं । कहानियो के विकास पर अंग्रेजी काव्य के प्रभाव को भी दिखाया जाता है ।[3] और जबतक एडगर एलनपो की परिभाषा नही दी जाती है तबतक विवेचन अधूरा ही समझा जाता है ।[4] अन्य अंग्रेज आलोचको के मत भी उधृत किये जाते हैं । साथ ही संस्कृत की कथाओं और लोक कथाओं के प्रभाव से परिपूर्ण अंग्रेजी प्रभाव के पूर्व हिन्दी की रचनाओ की ओर भी संकेत किया जाता है ।

निष्कर्ष —

इस प्रकार की आलोचना से हमारी इस मान्यता की पुष्टि होती है कि आधुनिक काल में आलोचना करते समय संस्कृत और अंग्रेजी दोनो को ही ध्यान मे रखा जाता है । एक ओर जहाँ अन्तर्द्वन्द्व, यथार्थ चित्रण, मनोवैज्ञानिक चित्रण, पात्र कथोपकथन और वातावरण सृष्टि का विवेचन किया जाता है तो दूसरी ओर पौराणिक और प्राचीन कथाओ की ओर भी संकेत कर दिया जाता है । आलोचना स्वयं इस विशेषता से परिपूर्ण है ।

आलोचना की आलोचना

आलोचना की व्याख्या प्रस्तुत करते समय विद्वानो ने इस पर संस्कृत व्याकरण की दृष्टि से विचार किया है । डा० राम शंकर जी शुक्ल रसाल का आलोचनादर्श ऐसे प्रयासो में महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।

१—साहित्य सन्देश—पृष्ठ ६७—जुलाई, अगस्त १९६४ ।
२—पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव पृष्ठ ३२१—३२५ ।
३—वही—पृष्ठ ३२२ ।
४—साहित्य सन्देश—जुलाई अगस्त, १९६२, पृष्ठ ३२४ ।

आलोचना शब्द संस्कृत के लुच धातु से बनता है । लुच का अर्थ है देखना । इस धातु के आगे ल्यु प्रत्यय होता है क्योंकि यह धातु न = आदि धातु समूह के अन्तगत आती है । समालोचना शब्द प्राप्त होता है जिसका अर्थ है सब प्रकार से विधि पूर्वक किसी वस्तु के देखने की प्रक्रिया ।[१] किसी वस्तु की आलोचना से तात्पर्य है कि वस्तु का सांगोपांग वर्णन किया जाए और उसकी बाह्याभ्यान्तरिक समस्त बातों पर विचार करके एक निश्चित मत स्थापित किया जाय ।[२] इसे पाठक द्वारा गृहीत हो जाये ऐसा अवश्य मानते हैं । साथ ही रसाल साहब ने यह कहा है कि पाठय क्रम में स्थान मिलने से हिन्दी आलोचना का रूप और भी निखर गया है ।[३] डा० साहब ने इस विधा को शास्त्रीय रूप देने का सफल प्रयत्न किया है । डा० गोविन्द त्रिगुणायत ने भी इसी शैली को अपनाया है । इन्होंने अन्य आलोचकों के समान इसे अंग्रेजी के परिपार्श्व में देखा है । कई अग्रज विद्वानों के मत उद्धृत किये हैं । डा० विश्वनाथ प्रसाद का अभिमत है कि आलोचना को जो रूप हिन्दी साहित्य में विकसित हुआ है वह बहुत कुछ अंग्रेजी के प्रभाव से अनुप्राणित है । अन्त में स्वीकार किया जाता है आलोचना की जो पद्धतियां हिन्दी में आजकल प्रचलित हैं वे अधिकतर पाश्चात्य ही हैं । इसका प्रयोगात्मक उदाहरण इसमें दिखाई देता है कि साहित्य सन्देश के साहित्य शास्त्र विशेषांक में कालरिज का कल्पना सिद्धान्त स्थान प्राप्त करता है ।[४] यहाँ एक तथ्य उल्लेखनीय है कि अधिकांशतः पाठय क्रमों में आये हुए आलोचना के उदाहरण ग्रहण कर लिये जाते हैं । डा० विश्वनाथ मिश्र ने हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव में बहुधा ऐसा ही किया है ।[५] कभी कभी साधारण और बहुत चर्चित आलोचक जैसे हडसन और स्कॉट जेम्स के उदाहरण भी दिये जाते हैं ।

१—डा० राम शंकर जी शुक्ल रसाल—आलोचनादर्श पृष्ठ २ ।

२—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त (डा० गोविन्द त्रिगुणायत कृत)

३—आलोचनादर्श विक्रम संवत १९९० ।

४—साहित्य सन्देश जुलाई–अगस्त १९६२ पृष्ठ १४ ।

५—उनका (प्रोफेसर देव का) कहना था कि अंग्रेजी के अधिकांश में उन्हीं साहित्यकारों एवं रचनाओं ने हिन्दी भाषा एवं साहित्य को प्रभावित किया होगा जो हिन्दी प्रदेश की शिक्षा संस्थाओं के विभिन्न पाठ्य क्रमों में स्वीकृत रहे होंगे । भूमिका ।

यत्र तत्र एनसाइक्लापीडिया ब्रिटानिका या अन्य हिंदी की पुस्तकों में अंग्रेजी अभिमतों को प्रस्तुत कर दिया जाता है। अतएव वहाँ उक्त मत व्याख्या के विषय नहीं बन पाते। टी० एस० इलियट, आई० ए० रीचर्डस ऐवर क्राम्बी, जेंम्स जायसी की सम्यक व्याख्याओं का हिंदी में अभाव सा ही है। इस ओर भी आलोचकों का ध्यान जाना वाँछनीय है।

अब तो पहले संस्कृत के नियम बताकर, फिर अंग्रेजी साहित्य के आलोचकों के विचारों को रखकर आलोचना करने की एक शैली सी बन गई है। यह शैली पुस्तकों[1,2] और पत्र पत्रिकाओं में अपनाई जाती है[3 4]। अन्य विधाओं के समान जब गद्य गीत आलोचना के विषय बनते हैं तब उनकी आलोचना भी इसी प्रकार से की जाती है।

गद्य गीत—

जिस प्रकार से कहानी उपन्यास निबन्ध नाटक और स्वयम् आलोचना का विवेचन संस्कृत और अंग्रेजी के परिपार्श्व में किया जाता है उसी प्रकार से गद्य गीत के विवेचनों में भी उसी आधार को ग्रहण किया जाता है।[5] संस्कृत के काव्यादर्श के आधार पर इसका प्राचीन अस्तित्व सिद्ध किया जाता है। इसी भांति रवि बाबू के काव्यों का उल्लेख किया जाता है—अंग्रेजी और अंग्रेजी से अनुदित काव्यों पर भी विचार किया जाता है। डा० राम कुमार वर्मा ने इसमें प्रनीतों के समान इसमें भाव नात्मक अनुभूति और कोमल पदावली को आवश्यक माना है। डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने इसके विवेचन में अग्नि पुराण के समान संक्षिप्त काव्य विधान को आवश्यक माना है।[6] संस्कृत के कादम्बरी गद्य ने इस विधा पर प्रकाश डाला इसकी भी व्याख्या की जाती है।

१—देखिये डा० गोविन्द त्रिगुणायत के शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त निबन्ध, नाटक उपन्यास आदि की आलोचना।

२—साहित्य [illegible] ग्रन्थ (प्रोफेसर भारत भूषण सरोज)।

३—साहित्य शास्त्र विशेषांक जुलाई अगस्त, १९६२।

४—वही—पृष्ठ ८७।

५—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त पृष्ठ *३६।

६—वही—

डा० पद्मसिंह शर्मा ने गद्य काव्य के प्रथम लेखक रूप में भारतेन्दु को स्वीकार किया है। डा० गोविन्द त्रिगुणायत इस पर आपत्ति प्रकट करते हैं और कहते हैं कि चन्द्रावली की रचना एक नाटिका के रूप में हुई है। नाटक स्वयं उत्कृष्ट काव्य है। उसके गद्यों में भावनाओं का उद्रेक और सरस काव्यत्व का स्फुरण होना बहुत स्वाभाविक है।[1] यहां यह उल्लेखनीय है कि भारतेन्दु के समर्पण से इस परम्परा का उद्गम माना जाना चाहिये। भारतेन्दु ने नाटिकाप्रारम्भ करने से पूर्व जो कृष्ण को समर्पण लिखा है वह गद्य काव्य का उदाहरण है। इस लेखन क्रिया पर शेक्सपियर के "ब्लैंक वर्स" का छाया दिखाई देती है। वहां भिन्न तुकान्त काव्य को भावावेश पूर्ण शैली में प्रकट किया गया है। तदनन्तर साहित्य में ऐसा प्रचलन होने लगा और ऐसी ही रचनाएँ सामने आईं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि आलोचक इस विधा को भी संस्कृत और अंग्रेजी काव्यों के परिपार्श्व में रखकर देखते हैं। अतएव यह कहा जा सकता है कि गद्य गीत का उद्गम कादम्बरी के गद्य और शेक्सपियर की ब्लैंक वर्स के आधार पर हुआ है। ऐसी ही अवस्था उपन्यासों की है।

उपन्यास —

आधुनिक युग में उपन्यासों का महत्वपूर्ण स्थान है। इसकी आलोचना भी संस्कृत और अंग्रेजी दोनों के आधार पर की जाती है।[2,3] आलोचकों का उपन्यासों में मनोवैज्ञानिकता, यथार्थ चित्रण और अन्य वादों को खोजना इसका साक्षी है।[4] उपन्यासों की वस्तु पात्र सम्वाद और शैली के आधार पर आलोचना करना इस समालोचना पद्धति पर अंग्रेजी प्रभाव स्पष्ट करता है। प्रेम चन्द जी ने उपन्यासों को मानव चरित्र का विकास माना है, जो अर्नेस्ट ए बेकर के अनुकूल है। उपन्यासों में की गई मनोविज्ञान की छान बीन उपन्यासों की आलोचना पर अंग्रेजी प्रभाव स्पष्ट करता है। डा० देवराज उपाध्याय कृत आधुनिक कथा साहित्य में मनोविज्ञान इसका प्रमाण है। अंग्रेजी के रीजनल नौवल्स के समान, हिन्दी में भी आंचलिक उपन्यासों का वर्णन किया जाता है।

१—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त पृष्ठ ३३६।

२—डा० हजारी प्रसाद साहित्य सन्देश उपन्यास अंक अक्टूबर सन् १९४० पृष्ठ० २।

३—साहित्य सन्देश जुलाई अगस्त, १९६२—पृष्ठ ५९ ६०।

४—वही—पृष्ठ ६२, ६३

डा० माता प्रसाद गुप्त ने हिन्दी पुस्तक साहित्य में जायसी कृत पद्मावती को उपन्यास कोटि में रखा है। किन्तु सामान्यतः आलोचक उसे कथा काव्य ही कहते हैं। डा० विश्वनाथ मिश्र ने उपन्यासों पर अंग्रेजी प्रभाव आंकते समय कहा है कि हिन्दी में इस साहित्य विधा का विकास विशेष रूप से अंग्रेजी प्रभाव के युग में ही हुआ है।[1] ऐसा करते समय अंग्रेजी के उपन्यास साहित्य पर भी उन्होंने प्रकाश डाला है।[2]

हिन्दी उपन्यासों का विवेचन संस्कृत की पौराणिक कथाओं की ओर संकेत करके भी दिया जाता है। यथा महेन्द्र चतुर्वेदी ने उपन्यासों के उद्भव पर प्रकाश डालते हुए वशिष्ठ और विश्वामित्र के वैमनस्य की ओर संकेत किया है।[3] इसी भांति वहां मैकोले और अंग्रेजी के आलोचक भी विवेचन की सामग्री रहे हैं। विभिन्न भाषा के उपन्यासों का उल्लेख भी किया जाता है।

अतएव हिन्दी उपन्यासों की आलोचना करते समय अंग्रेजी के आलोचना तत्वों को अपनाया जाता है। और दृष्टि संस्कृत ग्रन्थों पर भी रखी जाती है।[4] यही अवस्था निबन्धों की भी है।

निबन्ध —

बहुधा निबन्ध का स्वरूप विश्लेषण करते समय इसे अर्वाचीन आलोचना विधा माना जाता है।[5] इसकी परिभाषा देते समय मोन्टेन, रीड, बेकन, वयफील्ड और डा० जाह्नसन तथा अन्य आलोचकों के मत प्रस्तुत किये जाते हैं।[6] पाश्चात्य साहित्य के समान प्रबन्ध और निबन्ध का भेद भी किया जाता है। निबन्ध को व्यक्ति

१—हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव पृष्ठ २८६–२६१।
२—वही पृष्ठ ३०१।
३—हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण–पृष्ठ ख, च।
४—वही—पृष्ठ ग घ ज क य त र आदि।
५—डा० विश्वनाथ मिश्र हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव पृष्ठ ३१३, ३३६।
६—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त दूसरा भाग पृष्ठ ९३३।

प्रधान और प्रबन्ध को विषय प्रधान माना जाता है । अंग्रेजी निबन्धों के समान हिन्दी में भी निबन्ध में व्यक्तित्व का समन्वय आवश्यक माना जाता है । इसका ललित की स्वाभाविकता के समर्थक थे । पोलिश ने भी निबन्ध का भेद स्वीकार किया जाता है । हिन्दी में इसकी बात का समर्थन अंग्रेजी से कराया जाता है । इसकी आलोचना में अंग्रेजी शब्दों को स्थान दिया जाता है । अंग्रेजी प्रभाव के कारण अनुसंधानात्मक निबन्ध भी लिखे जाते हैं । इसी भांति अंग्रेजी के समान हिन्दी निबन्धों में व्यंग्य का समावेश हुआ है । गर्दू और गुलाब ? इसका उदाहरण है । सरदार पूर्णसिंह की रचनाओं में वाल्ट विटमन का प्रभाव देखा जा सकता है ।[2] अतएव निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि निबन्धों की आलोचना में संस्कृत और अंग्रेजी दोनों के उदाहरण दिए जाते हैं । उन्हें अंग्रेजी की परिभाषा में बांधने का प्रयत्न किया जाता है । अंग्रेजी की दृष्टि से निबन्ध को मनोविज्ञान, व्यक्तित्व, व्यंग्य और अन्य बौद्धिक विवेचना से सम्बन्धित घोषित किया जाता है । निबन्ध की व्याख्या करते समय एक ओर जहाँ संस्कृत का आधार लिया जाता है वहाँ दूसरी ओर उसे अंग्रेजी के एस्से का पर्याय मान लिया जाता है ।[3]

अन्य विधाएँ —

निबन्ध के समान कहानी उपन्यास, रेखाचित्र, स्केच इंटरव्यू जीवनी साहित्य यात्रा साहित्य, संलाप और पत्र-पत्रिकाओं की आलोचनाएँ भी की जाती हैं । पत्र पत्रिकाओं और इंटरव्यू के अतिरिक्त अन्य सभी की व्याख्या करते समय संस्कृत और अंग्रेजी दोनों ही दृष्टियों से विचार किया जा सकता है ।

गीति काव्य

अंग्रेजी प्रभाव —

अंग्रेजी के ह्वट रौब और राइस के समान हिन्दी गीति काव्यों में भावातिरेक आत्म विषयक अभिव्यंजना संगीत और माधुर्य प्रभृति गुणों को अनिवार्य

१—लेखक राम वृक्ष बेनीपुरी ।

२—डा० विश्वनाथ मिश्र—हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव पृष्ठ ३४५ ।

३—साहित्य सन्देश जुलाई, अगस्त विशेषांक सन् १९६२—पृष्ठ ७, से ७६ ।

माना जाता है [1] हिन्दी में अंग्रेजी के से करुण गीत (इलिजी) लिखे जाने लगे। प्रसाद का 'आंसू' और दिनकर कृत 'नई दिल्ली' इसके उदाहरण हैं।

अंग्रेजी के सम्बोधी गीतो के समान हिंदी में पंत की 'छाया' और निराला जी का 'युगान्त के प्रति' सामने आये।

अंग्रेजी के प्रभाव स्वरूप यह कहना ही होता है कि— हमारी समझ में राजशेखर का वर्गीकरण आज बहुत अधिक महत्त्व नहीं रखता है इसके अतिरिक्त उसके वर्गीकरणों के अन्तर्गत हिन्दी के बहुत से कवि नहीं आ सकते। अतएव वर्गीकरण की पुनर्व्याख्या बड़ी आवश्यक प्रतीत होती है।" [2]

कविता छंद

अंग्रेजी प्रभाव —

अब छंद बद हेय माना जाता है। छायावादी कवियों ने ही मुक्त छंद का आरंभ किया था। [3] अब तक गीतात्मक छंदों का प्रणयन होने लगा—

"अब तो नूतन गीत पुराने लगते हैं।
गीतों के स्वर नये नये पर छंद वही हैं
छंदों में रागों का अन्तर्द्वन्द्व वहा है
चिन्तन में अंकुरित विचारों की बगिया में,
नये नये हैं फूल मगर मकरंद वही है॥ [4]

उपर्युक्त गीत में स्पष्ट रूप से 'छंद वही है' कह कर कवि ने छंद परिवर्तन की कामना प्रकट की है और रागों में अन्तर्द्वन्द्व का समावेश कथन उस पर अंग्रेजी के मेंटल कोन्फ्लिक्ट का प्रभाव प्रदर्शित करता है। कई आलोचक निम्नांकित छंदो को हेय मानते हैं —

१—डा० गोविन्द त्रिगुणायत शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत। पृष्ठ ३०-३२।
२—वही पृष्ठ ७८।
३—'प्रिय आ तू ओढ़ कर छंदों की बंधन मय छोटी राह'।
४—बनवीर सिंह।

"श्री मातृ
श्री गुरु
श्री लक्ष्मीकांत

कवि हो ?
छन्द नहीं लय नहीं
केवल गति
पैरा फूट ' १

प्रयोगवादी कविता —

इसी भाँति निम्नांकित काव्य प्रयोग और काव्य शैली आलोचकों द्वारा प्रशंसा प्राप्त करने मे असमर्थ रही—

'आ
आ
आ
ओ
मेरे पास आ री
घड़ी भर के लिये ही सही।
मुझे पी
जी
मेरी कल्पना मेरी कल्पना, मेरी वासना पी
जी । २

इसके सम्बन्ध मे तो कहा गया है —' इस प्रकार विराम चिन्हों का ऐसे ऐसे ढंग से प्रयोग किया गया है कि मालूम होता है कि कवि महोदय ने कोई नई शैली

१—डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित रस सिद्धांत स्वरूप और विश्लेषण।
२—राजेन्द्र किशोर विरचित।

खोज निकाली है। किन्तु होती है वह नवीनता की धुन म जगने वाली कादू नी सूझ।[1]

इसका तात्पय यह नही कि सभी आधुनिक कविताएँ नीरस और निष्प्राण होती हैं। कविता म सरसता के साथ काव्य के उपादाना और उपकरणो पर भी प्रकाश डाला जाता है। श्री पण्डित श्यामलालजी एम० ए० विरचित निम्नाकित कविता इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है —

'कविता वह करती कलोल हो,
रस मयी रस भरे बोल हो—
सुकुमार सरलता बरस रही हो—
शब्दाडबर से विहीन हो।
कविता सरिता सी बहती हो।
बोल नहीं मृदग बजे हो,
ऐसी प्रकृत रूप मयी हो,
जन जन का मन मोह रही हो।'

ऐसी कविता को पढ कर हर मावक और भावुक को इनके भावा और इनकी मजी हुई भाषा की सराहना करनी ही होती है। अग्रेजी प्रभाव के कारण प्राचीन सैद्धान्तिक नियमों और शास्त्रीय तत्वो की भी नवीन और आधुनिक व्याख्या की जाती है। रस, भाव, विभावादि का निम्नाकित विवेचन हमारे कथन की पुष्टि करता है।

शास्त्रीय तत्व नवीन व्याख्या

भाव —

आचाय रामचन्द्र शुक्ल ने भाव को भरत के समान अभिनय से सम्बद्ध रस भावा मात्र ही नही माना है। इन्होने शड के समान इसे व्यापक प्रदान किया है।[2] डा० श्यामसुन्दर दास ने पाश्च्यातसस्कृत और अन्य मान्यताओं का भिन्न

१—डा० गोविन्द त्रिगुणायत शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धांत पृष्ठ १७२।

२—क—डा० जयचन्द्र राय आचार्य रामचन्द्र शुक्ल-अप्रकाशित शोधप्रबन्ध पृष्ठ ४६—४७।

ख—डा० रामलाल सिंह—आचाय रामचन्द्र शुक्ल के समीक्षासिद्धान्त पृष्ठ ३४६ ३४७।

ग—व्यापक विवेचन देखिये आचार्य राम चन्द्र शुक्ल की विवेचना।

भिन्न विवेचन किया है । इन्होंने भी मनोवैज्ञानिक आधार को अपनाया और भावों को तीन श्रेणियों में बांटा—

क—इन्द्रिय जनित ।

ख—प्रभावात्मक—संचारी ।

ग—गुणात्मक । १

डा० नगेन्द्र ने संस्कृत और अंग्रेजी के इन शब्दों का साम्य वैषम्य पूर्वक अध्ययन किया है । उनकी परिभाषा—बाह्य जगत के सम्पर्कों से मनुष्य के हृदय में जो विकार होते हैं वे ही मिलकर भाव की संज्ञा प्राप्त करते हैं । २ यह तो संस्कृत के अनुकूल है किन्तु भाव का स्पष्टीकरण मनोवैज्ञानिक प्रकाश में किया गया है । और उसे एमोशन के रूप में मान्यता दी गई है । डा० गुलाब राय ने मनोवैज्ञानिक अर्थ से विवेचन कर भाव तथा साहित्य के भाव को भिन्न भिन्न माना है । ३ यही अवस्था स्थायी भावों की है ।

स्थायी भाव —

सन् १८२६ में एच० एच० विल्सन ने संस्कृत नाटकों के अंग्रेजी अनुवाद में रस के लिये सेंटिमेंट शब्द का प्रयोग किया । इसका हिन्दी काव्यशास्त्र पर निम्नांकित प्रभाव पड़ा ।

क—रस शब्दावली केवल कलात्मक उपकरण मात्र को अंग्रेजी मनोवैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दों में ढालने का प्रयत्न किया गया । उदाहरण के लिये रस को सेंटिमेंट कहा गया ।

ख—भावों को एमोशन की संज्ञा दी गई ।

१—साहित्यलोचन पृष्ठ २२१।२१५

२—सिद्धान्त और अध्ययन पृष्ठ ७५ ।

३—रीति काव्य की भूमिका पृष्ठ ४६ ।

संस्कृत काव्यशास्त्र के आधारभूत सिद्धान्तों (कन्टेन्ट्स) की पाश्चात्य काव्य-शास्त्र से तुलना की गई। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने स्थायी भावों और भावों का विवेचन शंड के अनुसार किया है। शुक्लजी ने स्थायी भावों और भावों का विवेचन करते समय सेंटिमेंट्स और इमोशन्स से प्राप्य भेद को भी प्रकट किया है। इस विवेचन के फलस्वरूप इन्होंने रति स्थायी भाव को स्थायी दशा (सेंटिमेंटस) के भिन्न प्रतिपादित किया है। शंड के आधार पर भाव (इमोशन) और स्थायी दशा (सेंटिमेंट्स) से पृथक शील दशा का वर्णन किया है।[1] इन्होंने इसे इस प्रकार अभिव्यक्त किया है। एक अवसर पर एक आलंबन के प्रति उत्पन्न भावों को भाव दशा कहा है। राग, हास, उत्साह, आश्चर्य, शोक, क्रोध, भय, जुगुप्सा को इसमें स्थान दिया गया है। अनेक अवसरों पर एक आलम्बन के प्रति उत्पन्न भावों की संख्या स्थायी दशा कही गई है। इसमें रति अनभिदेय, संताप, वयर, आशंका और विरति इसमें सम्मिलित किये गये हैं। अनेक अवसरों पर अनेक आलम्बनों के प्रति उत्पन्न भावों की सत्ता, शीलदशा, नाम से अभिहित की गई है। इसमें स्नेहशीलता, रसिकता लोभ, तृष्णा, असोडपन, विनोदशीलता, वीरता, तत्परता और धीरता आदि को स्थान दिया गया है। इस प्रकार इन्होंने मनोवैज्ञानिक आधार पर विवेचन करने का प्रयास किया है।

डा० ग्रियेरसन ने अपने इतिहास में रसों की सत्ता स्वीकार की। किन्तु यह शब्द शैली के ही प्रयोग में आता है और यह रस का पर्याय बनने में असमर्थ ही रहा है। यहाँ यह कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी कि रस का शब्द उपयुक्त पर्याय वाच्य शब्द विदेशी साहित्य में प्राप्त ही नहीं होता है। जिस प्रकार डा० बुचर ने यूनानी काव्य-शास्त्र का अनुवाद करते समय यह अनुभव किया कि अरस्तू के द्वारा प्रयोग में लिये गये शब्दों के उपयुक्त पर्याय कामदी और त्रासदी नहीं कहे जा सकते[2] उसी प्रकार भारतीय काव्यशास्त्रीय शब्दों के अंग्रेजी पर्याय दुर्लभ हैं।

डा० नगेन्द्र ने मनोविज्ञान के आधार पर भावों या मनोविकारों को तीन भागों में विभाजित किया है—

२—डा० बुचर कृत अरस्तू के काव्यशास्त्र का अंग्रेजी अनुवाद—भूमिका।

१—आचार्य शुक्ल के समीक्षा सिद्धांत (डॉ० रामलाल सिंह) पृष्ठ ३४६

क—मौलिक मनोविकार (प्राइमरी इमोशन)
ख—व्युत्पन्न मनोविकार (डिराइव्ड इमोशन) (Derived Emotions)
ग—मनोवृत्ति (सेंटिमेंट)।

इनका यह मत है कि संस्कृत काव्यशास्त्र वर्णित रति आदि स्थायी भावों को उपर्युक्त किसी एक वर्ग में नहीं रखा जा सकता है। उन्होंने इनकी उपरिकथित मनोवैज्ञानिक भावों से तुलना कर प्राप्य, साम्य, वैषम्य का विवेचन किया है। [1] डा० गुलाबराय ने तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत करते हुए स्थायी भावों का सम्बन्ध इंस्टिंक्ट्स से जोड़ने का प्रयत्न किया है। डा० राकेश गुप्त ने संस्कृत और अंग्रेजी शब्दावली को अभिन्न सिद्ध करने के प्रयास को हेय बताया है। [2]

स्थायी भाव और स्थायी वृत्ति —

अंग्रेजी प्रभाव के कारण स्थायी भावों और सेंटिमेंट्स के तुलनात्मक अध्ययन को बल मिला। कितना विवेचन सेंटिमेन्ट्स और स्थायी वृत्ति के सूक्ष्म भेद-प्रभेदों को प्रकट करने का किया जाता है। इनका विवेचन करते समय विभिन्न संस्कृत काव्यशास्त्रकारों और पाश्चात्य मनोवैज्ञानिकों के उद्धरण प्रस्तुत किए जाते हैं। [3] स्थायी भाव सहृदय में संस्कारगत विद्यमान रहते हैं किन्तु सेंटिमेंट्स का फोरमेशन (संघटीकरण) होता है। स्थायी भाव आस्वाद्य होते हैं किन्तु सेंटिमेंट्स की सहचर भावनाओं का ही आस्वादन सम्भव है। आज यह भी कहा जाता है कि स्थायी भाव में परम्परानुरोध को त्याग कर नये स्थायी स्वीकार किये जा सकते हैं। [4] इस तुलना से रस और सेंटिमेंट्स भी नहीं बच सके हैं।

१—रीति काव्य की भूमिका पृष्ठ ७२ ७३।
२—डा० राकेश गुप्त-साइकोलॉजिकल स्टडीज इन रसास पृष्ठ १२६।
३—डा० मनोहर काले ३-आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्यशास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ ३६–४१।
४—डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित-रसस्वरूप सिद्धान्त और विश्लेषण, प्राक्कथन एवं पृष्ठ १४।

रस और सन्टिमेन्टस —

जिस प्रकार से स्थायी भाव और सेन्टिमेनट की तुलना की गई उसी प्रकार से रस और सेंटिमट की भी तुलना की गई है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि रस तो ब्रह्मानन्द सहोदर है जो सामाजिक को भी साधारणीकरण द्वारा प्राप्य होता है किन्तु सन्टिमटम किसी भी व्यक्ति मे हो सकता है उनका सम्बन्ध आनन्द स नहीं है। रस, अभिनयात्मक और काव्यात्मक प्रक्रिया का परिणाम है और सेंटिमट जगत के क्रिया व्यापारो का मानसिक प्रतिक्रिया।

स्थायी भाव और सहज प्रवृतिया (इन्सटिंक्टस)

डा० नगेन्द्र ने स्थायी भावो और सहज प्रवृतियो का विवेचन किया है।[१] डा० गुलाब राय न भी ऐसा ही प्रयत्न किया है। यहाँ भी यह उल्लेखनीय है कि इनका पूर्ण सबन्ध स्थापित करना अवाछनीय और दुराग्रह मात्र ही हो सकता है। यह सत्य है कि काव्यशास्त्र और मनोवैज्ञानिक की आधारभूत मिलन भूमि एक ही है-वह है भावनाओ की।[२] साथ ही यह भी सत्य है कि मनोवैज्ञानिक प्रक्रियायें मानव जाति पर घटित होती है जो इस काव्य व्यापार मय जगत में विचरण करते हैं। परन्तु काव्यशास्त्रीय विवेचन का सम्बन्ध सहृदय सामाजिको से है जिनकी विचारभूमि काव्य ही है। अतएव इनमे पूर्णरूपेण साम्य प्राप्त करने का प्रयास उपयुक्त नही है।

विभाव विवेचन —

शुक्लजी ने आश्रय और आलम्ब में भेद स्वीकार किया है। यह मत जगन्नाथ के अनुकूल है। शुक्लजी ने प्रकृति वर्णन का स्वतन्त्र आलम्बन रूप मे स्वीकार किया है। वास्तव म प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण सभव भी है।[३] शुक्लजी ने पूर्ण रस दशा प्राप्ति के लिय कहा है कि आश्रय श्रोता के रति भाव का आलम्बन होगा और आलम्बन श्रोता के भी उन्हीं भावो का आलम्बन होगा आश्रय के जिन भावों का है।[४] इस पर डा० काले ने निम्नांकित आपत्तिया प्रस्तुत की हैं।

१—रीति काव्य की भूमिका पृष्ठ ८०।

२—डा० मनोहर काले—आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्यशास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ ५५।

३—वही पृष्ठ ६०-५६।

४—वही एव रस मीमांसा पृष्ठ १५०।

क—रस सिद्धान्त ही मूलत इतना अव्यापक है कि उसमें कवि द्वारा अभिव्यक्त सभी प्रकार की भावनाओं का अन्तर्भाव नहीं हो पाता है। विशेषत वे भाव रसानुभूति के अनुपयुक्त हैं जिनमें काव्यगत आश्रय की भावनाओं से सहृदय का तादात्म्य नहीं हो पाता है। अथवा।

ख—भरत मुनि ने परिवर्तित आचार्यों ने ही व्यापक विभाव तत्व को सहृदयगत रस निष्पत्ति की दृष्टि से संकुचित बना दिया है।

रस सिद्धान्त में अव्यापकता का एक कारण उसके विभिन्न तत्वों का अत्यधिक सूक्ष्म वर्गीकरण भी है। ऐसी स्थिति में सहृदय के लिये काव्यगत आलम्बन तथा काव्यगत आश्रय दो पक्ष निर्धारित करना अनुपादेय होता है। काव्यगत आलम्बन तथा काव्यगत आश्रय दोनों ही आलम्बन स्वरूप ही है। अधिक स्पष्ट शब्दों में कहें तो यहाँ काव्य आलम्बन शकुन्तला और काव्यगत आश्रय दुष्यन्त दोनों ही सहृदय के लिये आलम्बन रूप ही है।[1]

इन आपत्तियों का समाधान हम निम्नांकित रूप से कर सकते हैं। दुर्वासा से सामाजिकों का तादात्म्य नहीं होता है। सामाजिक एक ही घटना को इकाई के रूप में नहीं देखते हैं। वे तो पूरे रूप से दुष्यन्त और शकुन्तला के कार्य व्यापार का रसास्वादन करते हैं। आचार्य नन्द दुलारे वाजपेई का भी यही मत है।[2] दूसरा रस सिद्धान्त को अव्यापक कहना और सूक्ष्म वर्गीकरण को हेय बताना इन पर अंग्रेजी प्रभाव का द्योतक है। ऐसा ही प्रभाव डा० बच्चनसिंह पर भी देखा जा सकता है जबकि वे हिन्दी साहित्य कोष में नाटकों की कथा वस्तु का विवेचन करते हैं। अस्तु अंग्रेजी में रस निष्पत्ति जैसी कोई साहित्य प्रक्रिया नहीं है। इसलिये आज अंग्रेजी आलोचना के प्रभाव स्वरूप हिन्दी में भी इसे महत्वपूर्ण नहीं माना जाता है। यद्यपि यह तो मानना ही होगा कि अंग्रेजों के आने से पूर्व रस निष्पत्ति की महत्ता बहुत क्षीण हो गई थी फिर भी अंग्रेजों के प्रभावों के कारण रस की बहुत कुछ अवहेलना हुई। आज तो इसे अव्यापक भी कहा जाता है वर्गीकरण की

१—डा० मनोहर काले-आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्यशास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ ६०

२—आचार्य नन्द दुलारे वाजपेई आधुनिक हिन्दी साहित्य पृष्ठ ६०।

प्रणाली को अंग्रेजी साहित्य मे हेय माना जाता है। वे इस भारतीय पद्धति को उपयुक्त नही मानते हैं। डा० कीथ ने अंग्रेजी मे सस्कृत नाटको का विवेचन करते हुए यहाँ की इस पद्धति को अवाछनीय बताया है।[1] एतदर्थ हिन्दी म भी इस वर्गीकरण स घृणा होने लगी है।

अनुभाव —

सस्कृत म अनुभावो के चार भेद किये गये हैं कायिक, मानसिक, आहार्य और सात्विक।[2] डा० श्याम सुन्दरदास ने आहार्य को अभिनय का ही अग माना है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मानसिक, आहार्य को नही माना है। रामदेव मिश्र तथा डा० गुलाब राय आचार्यो का धारणाओ की पुष्टि करते हैं। डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित ने सात्विको की भाव सत्ता और उनको अनुभाव मानने के औचित्य पर प्रकाश डालते हुए भानुदत्त का अनुसरण किया है और वे लिखते है कि इस प्रश्न का एक मात्र समाधान भानुदत्त की रसतरगिनी से किया जा सकता है। उन्होने कहा है सहृदय यदि काव्य का अभ्यास किये हुए है उसके कुछ प्राक्कथन सस्कार हैं तो परिणित भावादि के उन्मीलन के द्वारा काव्य के विषय का साक्षात्कार किया जा सकता है। यदि सूक्ष्मता के आधार पर काव्य का सर्वश्रेष्ठ स्थान स्वीकार कर लिया जाय तो उसी पर दृश्य काव्य के अपेक्षा श्रव्यश्रेष्ठ सिद्ध होगा।[3]

यहाँ यह कहना उपयुक्त ही होगा कि श्रव्य काव्य को दृश्य से श्रेष्ठतर कहना सस्कृत काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तो से विमुख होना है। वहाँ तो कहा गया है—काव्येषु नाटकम रम्य।

सचारी भाव —

आधुनिक युग मे सचारीभावो को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाता है। डा० नगेन्द्र ने भाव को मूलत मनोविकार माने हैं और सचारियों को भी उन्होने मनोभाव सिद्ध किया है।[4]

१—डा० कीथ सस्कृत ड्रामा पृष्ठ ३०, ३५ ४८।

२—भानुदत्त—रस तरगिणी पृष्ठ १०।

३—डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित—रस सिद्धांत स्वरूप विश्लेषण।

४—रीतिकाव्य की भूमिका पृष्ठ ८१।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने आशा, निराशा, विस्मृति, संतोष, असंतोष, पटुता, मृदुलता और अभय नवीन संचारियों की कल्पना की है आचार्य विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने न तो पूर्णरूपेण प्राचीन सिद्धान्त का अनुसरण किया और न नवीन का ही। उन्होंने फिर भी दया दाक्षिण्य और उदासीनता को संचारी माना है। रामदेव मिश्र ने सरलता का उल्लेख किया है। इस प्रकार इन्होंने नवीन उद्भावनाओं के प्रयास किये हैं जिनके मूल में अंग्रेजी आलोचनाओं के समान वैज्ञानिक छान बीन और मौलिक बनने की आकांक्षा है। यही क्यों संचारियों को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से परखने का प्रयत्न ही पाश्चात्य प्रभाव का द्योतक है। बहुधा संचारियों का किया गया विवेचन और वर्गीकरण ओवरलेपिंग होता है। इस दृष्टि से आचार्य शुक्ल के किये गये संचारियों के वर्गीकरण को देखा जा सकता है।[1] डा० राकेश गुप्त ने मुख का आरक्त होना तथा नेत्रों का लाल होना इन दोनों को नवीन शास्त्रिक माना है।[2] डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित ने इस पर आपत्ति प्रकट की है और वे जम्भा एवं डा० राकेश गुप्त द्वारा स्वीकृत उक्त प्रक्रिया को स्वीकार नहीं करते हैं।[3]

रस संख्या —

वैसे तो रसों की संख्या के बारे में संस्कृत साहित्य में भी कुछ मत भेद पाया जाता है। उद्भट और अभिनव गुप्त ने रसों की संख्या में विस्तार कर दिया था। शान्त को कालान्तर में रस की श्रेणी में स्थान दिया जाने लगा। इसकी व्याख्या भी की गई।[4] यथा रुद्रट प्रेयानरस जिसका कि स्थायी भाव स्नेह है, उसे भी (काव्यालंकार) समाविष्ट कर लिया। भोज ने उदात्त और उद्धत रसों का समावेश किया। भानुदत्त माया रस के समर्थक रहे और हरिपाल देव के संयोग और विप्रलंभ के उभायक भक्ति, सख्य, दास्य और वात्सल्य को भी रस मानने को आग्रह

१—रस मीमांसा पृष्ठ २२९।
२—सम्कोलौजिकल स्टडीस इन रसाज पृष्ठ १५५।
३—रस स्वरूप सिद्धांत और विश्लेषण—प्राक्कथन।
४—क—डा० राघवन नम्बर ओफ रसास पृष्ठ ६१।
ख—रस विमर्श पृष्ठ २२०।
ग—शास्त्र शिरोमणी भाव प्रकाश पृष्ठ २७।

हुए। नाटय दर्पणकार ने लौल्य, स्नेह, दुःख और सुख की रस रूपता की भी सम्भावना प्रकट की।[१] यहा यह कहना ही होगा कि वहाँ रस विस्तार के होते हुए भी रसों की संख्या नौ या दस से आगे नहीं बढ़ी। इसका प्रत्यक्ष प्रमाण यही रहा है कि नवीनरस स्थापक पहले के नौ और दस रसो की स्थापना करते और तब अपने रसो की स्थापना करते और तब अपने रसों की संख्या उसमे जोड कर १२ या १३ बना देते थे। उदाहरण के लिये भोज ने ३ रस जोडे विश्वनाथ ने एक वात्सल्य रस मिलाया हरिलाल देव ने भी तीन रस जोड कर १३ रस बनाये। इससे प्रतीत होता है कि ये नवीन रस स्थापक स्वयं एक दूसरे को महत्ता नहीं देते थे और सब प्रचलित तथा सर्वमान्य रसों को मान्यता देते थे। एक ओर रुद्रट जहाँ आस्वादयता के आधार पर हर भाव को रस मान लेते हैं वहाँ लोलट इसके विरुद्ध थे। उन्होंने विद्वानों की सभा बुलाकर इसे रोकना भी चाहा। अधिकांशत रसों की संख्या अधिक विस्तृत नहीं हो पायी।

आधुनिक युग में अंग्रेजी के प्रभाव के कारण यह कहा जाने लगा कि रस दृष्टिकोण अव्यापक है और सभी देशों और सभी साहित्य के अंगो को इस परिपाटी के दृष्टिकोण से नही देखा जा सकता है यथा मारलो के डा० फास्टस का स्थायी भाव अपार शक्ति की तृष्णा और शेक्सपियर के ओथेलो का स्थायी भाव प्रेमशंका है। ये भाव और दूसरे बहुत से जिन पर आधुनिक नाटक उपन्यास और काव्य आधारित है नौ स्थायी भावों के अतिरिक्त हैं। अन्याय और अनम्यता के भावों पर गाल्सवर्दी के नाटक सिलवर बोक्स और स्ट्राइफ आधारित हैं। यदि खीचतान कर इन भावों को उन्ही नौ भावों में मिला दिया जाय तो सतुष्टि नहीं हो सकती है[२] अब देशकाल सापेक्ष नवीन रसों की उद्भावनाएँ हुईं। देश भक्ति नवीन बन गया।[३] रसो की इन्सटिक्टस से तुलना करते हुए वात्सल्य रस को पारेंटल इन्सटिक्टस से सम्बन्ध कर उसे भी रस माना गया। वसे तो यह रस विश्वनाथ द्वारा ही मान्यता प्राप्त कर चुका था परन्तु इसे नवीन दृष्टिकोण से देखना अंग्रेजी प्रभाव का परिणाम है। डा० नगेन्द्र

१—गायकवाड संस्कृत सीरिज पृष्ठ १६३ एवं आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्यशास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ १२७ १२८।

२—पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धान्त पृष्ठ ७८ ७९ (लीलाधर गुप्त)

३—क—नव रस पृष्ठ ६२ ख—सिद्धांत और अध्ययन पृष्ठ १५८।

न रसों की मनोवैज्ञानिक दृष्टि से करने का स्तुत्य प्रयास किया है। इन्होंने पूर्व प्रचलित प्रणाली को पूर्णरूपेण निर्दोष नहीं माना है। रामचन्द्र मिश्र ने ११ रसों (भक्ति और वात्सल्य) को मान्यता दी है। डा० भागीरथ मिश्र ने भी ११ रस माने हैं। इलाचन्द्र जोशी ने विस्मय रस को स्थान दिया है। शुक्लजी ने जब प्रकृति को स्वतन्त्र आलम्बन माना तो आगे के आलोचकों ने प्रकृति रस की ही स्थापना कर दी है।[1] अंग्रेजी के काव्यों के ज्ञान ने और अंग्रेजी कविता के प्रभाव ने शुक्लजी को प्रकृति को स्वतन्त्र आलम्बन मानने की प्रेरणा दी। वाङ्मय का साहित्य इसका प्रमाण[2] श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने प्रकृति रस को स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है।[3]

सामञ्जस्य —

डा० रामेश्वरलाल खण्डेलवाल ने प्रकृति रस की स्थापना की और उसके स्थायी भाव और परम्परागत शास्त्रीय तत्त्वों का दिग्दर्शन भी किया है।[4] ये नवीन उद्भावना के समर्थक हैं और साथ ही शास्त्रीय पृष्ठ भूमि के पोषक भी। आज तो रति को व्यापकता प्रदान की गई है। और इसका आधार मनोवैज्ञानिक प्रवृत्ति माना जा सकता है। डा० मनोहर काले ने प्रकृति रस को स्वतन्त्र रस माना है। और उसके निम्नांकित ढंग से शास्त्रीय पक्ष का विवेचन भी किया है। वे उसके आलम्बन, उद्दीपन आदि सभी की कल्पना कर लेते हैं।[5] विषय विस्तार में संस्कृत की शास्त्रीय परम्परा को देशकालानुसार मनोवैज्ञानिक और नवीन अंग्रेजी समीक्षा सिद्धान्तों की दृष्टि से बल मिला है। डा० नगेन्द्र ने इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय कार्य किया है। आधुनिक युग में रस सिद्धान्त की व्यापकता और उसके महत्व को भी प्रतिपादित किया जाता है। इसके साथ ही केवल बौद्धिक काव्य को काव्य की संज्ञा ही नहीं दी जाती है।[6]

१—आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्यशास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ १३८, १३६।
२—रस मीमांसा विभाव प्रकरण।
३—वाङ्मय विमर्श पृष्ठ २३३।
४—काव्य में प्रकृति चित्रण पृष्ठ ४८।
५—आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्यशास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ १४४।
६—रस सिद्धान्त स्वरूप और विश्लेषण पृष्ठ ४२८, ४३०।

रस

अंग्रेजी परिपार्श्व में—

आधुनिक आलोचना पर अंग्रेजी आलोचना के प्रभाव निम्नांकित रूपों में पड़ा।

क—प्राचीन की पूर्णरूपेण अवहेलना।

ख—प्राचीन को नवीन दृष्टि से देखना।

ग—प्राचीन सिद्धान्तों और नवीनता सामनजस्य स्थापित करना।

घ—प्राचीन सिद्धान्तों एवं नवीन सिद्धान्तों की तुलना का पुरातन सिद्धांतों की उचित सीमा रेखाओं का प्रतिष्ठान करना।

प्रथम शैली का उदाहरण निम्नांकित कथन है—

इस पुराने सिद्धान्त से साहित्य को समझने में भी कितनी मदद मिल सकती है यह संदिग्ध है। क्योंकि जीवन की धारायें एक दूसरे से इतना मिली जुली है कि नव रसों की मेडबाद कर उन्हें अपने मन के मुताबिक नहीं बहाया जा सकता [1]। दूसरी का उदाहरण रस को इमोशन आदि की दृष्टि से परखना दिखायी देता है। इसी भाँति डा० राकेश गुप्त ने मनोविज्ञान के प्रकाश में रस का विवेचन किया है। तृतीय रूप के दर्शन निम्नांकित कथन में पाये जा सकते हैं—परम्परागत भावों को अंग्रेजी के अनुकूल ग्रहण करना चाहिए—विभाव तत्व की परिव्यक्ति मनुष्य से लेकर कीट पतंग तक को सम्मलित किया जा सकता है। चतुर्थ श्रेणी में डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित का शोध ग्रन्थ रखा जा सकता है। इस प्रकार रस सिद्धान्त की कहीं अवहेलना की गई, कहीं उसे नवीन दृष्टि से देखा गया और कहीं उसका विस्तार करते हुए नवीन समीक्षा पद्धतियों के सामनजस्य करने के लिए बाध्य किया गया।

अंग्रेजी प्रभाव के कारण आया हुआ सामनजस्य सिद्धान्त इसमें सहायक हुआ। रस निष्पत्ती के सिद्धान्तों का विवेचन करते हुए अंग्रेज आलोचकों के मत उद्धृत किये जाते हैं। यही क्यों रसोद्रेक और करुणा रस तथा हास्य रस के सम्बन्ध में पाश्चात्य दृष्टि से विचार किया जाता है [2]।

१—आधुनिक हिन्दी मराठी काव्यशास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ २६०

२—(क) डा० रामलालसिंह आचार्य शुक्ल के समीक्षा सिद्धान्त—पृष्ठ २०३

(ख) रस सिद्धान्त स्वरूप और विश्लेषण पृष्ठ १४, १५ छवां अध्याय और छवा अध्याय।

करुणा रस से सुख कैसे ?

अंग्रेजी प्रभाव के कारण रस के सम्बन्ध में कई प्रश्न पूछे जाते हैं, और उनका उत्तर मनोविज्ञान या अंग्रेजी काव्य शास्त्र की दृष्टि से दिया जाता है। इसमें प्रमुख प्रश्न है *कि करुण रस से सुख की उत्पत्ति कैसे होती है। इसका उत्तर अरस्तू के* 'कैथर्सिस–विरेचन' के आधार पर दिया जाता है। यह बताया जाता है कि हमारी दूषित भावनाएँ काव्य के माध्यम से बाहर अभिव्यक्त हो जाती है। और उनका शमन हो जाता है। फिर भी कई व्यक्ति मनोवैज्ञानिक दृष्टि से करुण रस से आनन्द की उत्पत्ति नहीं मानते हैं[१]। इसका समर्थन संस्कृत के उदाहरण देकर किया जाता है[२]। हमारा अभिप्राय तो यही है कि जब ऐसे प्रश्नों का उत्तर संस्कृत के आधार पर दिया जाता है तो आलोचकों पर संस्कृत ज्ञान का प्रत्यक्ष या परोक्ष, एक या दूसरी विचारधारा का प्रभाव अवश्य ही दिखाई देता है।

यहाँ यह स्मरणीय है कि काव्य या नाटक में सुख-दुख का प्रदर्शन तो अवश्य होता था *किन्तु रस निष्पत्ति होने पर फल प्राप्ति होने पर आनन्द ही मिलता है।* भरत मुनि ने तो नाटक का उद्देश्य दुखी, शान्त और शोकाकुल व्यक्तियों को आनन्द प्रदान करना माना है[४]। डा० नगेन्द्र ने भी रसानुभूति को आनन्दमय माना है। इनका मत है कि रचयिता के द्वारा संवेद्य बनाये गए भावों से सामाजिक तादात्म्य स्थापित करता है। यह है भी उचित ही ? क्योंकि आलम्बन और आश्रय कवि भावों के साकार स्वरूप होते हैं और ऐसा मान लेने पर पूरी रचना की किसी एक इकाई

१—डा० राकेश गुप्त–साइकोलोजिक स्टडीज इन रसाज पृष्ठ १८० १८४।

२—डा० आनन्दप्रकाश दीक्षित–रसस्वरूप सिद्धान्त और विश्लेषण पृष्ठ १८०, १८४।

३—डा० मनोहर काले–आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्य शास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ २०६, २१०।

४—नाट्य शास्त्र ७।५५ और १।११

से तादात्म्य स्थापित करने की भ्रान्ति का निराकरण हो जाता है। डा० न द दुलारे वाजपेयी रचयिता और सामाजिक की भावनाओं के तादात्म्य को साधारणीकरण मानते हैं। इनकी मान्यता है कि कवि कल्पित समस्त काव्य व्यापार से साधारणीकरण सम्भव है न कि किसी एक पात्र विशेष से[1]। डा० रघुवंश ने सौन्दर्यानुभूति को रसास्वाद कहा है।[2] इस पर अंग्रेजी की 'एस्थेटिक सेंस' का प्रभाव दिखाई देता है।

साधारणीकरण—

साधारणीकरण के सम्बन्ध में यह कह देना उपयुक्त होगा कि कवि स्वयं (तीव्र) अनुभूति को अनुभूत कर रचना द्वारा उसे सम्वेद्य बनाता है। तब सामाजिक सम्पूर्ण कृति हृदयगम कर सुन्दर और श्रेष्ठ से तादात्म्य स्थापित कर रस प्राप्त करता है। किसी एक घटना या एक पात्र विशेष से तादात्म्य स्थापित हो जाने पर साधारणीकरण का प्रश्न ही नहीं उठता है। यहाँ यह उल्लेख आवश्यक है कि साधारणीकरण में सामाजिक का संकीर्ण और व्यक्ति परक दृष्टिकोण दूर हो जाना चाहिए। रचयिता का भी कर्तव्य है कि वह रचना मे ऐसे भाव, इस ढग से प्रतिपादित न करदे कि सामाजिक उसे स्वीकार ही न कर सके। बहुधा जब व्यक्ति या समाज के अङ्ग विशेष पर कटु प्रहार किया जाता है। तब वे व्यक्ति उसे सहन नही कर सकते। इसके उदाहरण प्राचीनतम समवकार समुद्र मथन मे प्राप्त होते हैं। जब यहाँ देवासुर सग्राम म असुरो की पराजय और उनकी हीनता प्रदर्शित की गई तब नाटक असुरो के लिए असह्य हो गया। उत्तर रामचरित मे सीता के दुख को राम नहीं देख सके। अंग्रेजी की ऐसी ही घटना का उल्लेख 'हैम्लट' नाटक में देखा जा सकता है। यहो नहीं अथलो द्वारा की गई 'डैसडीमोना' की हत्या पर एक सिपाही ने गोली चला दी[3]। इसी प्रकार कहा जाता है कि मरचेन्ट ऑफ वैनिस' में भी

१—नया साहित्य नये प्रश्न पृष्ठ १२२।

२—हिन्दी साहित्य कोष पृष्ठ ६२८।

३—डा० कौल बुक—ए हिस्ट्री ऑफ इगलिश रोमेन्टीसिज्म पृष्ठ २१२ वोल्यूम १।

जब "शाईलोक दी ज्यू" के साथ किए गए व्यवहार को दर्शक सहन नहीं करसके [१]। इसलिए हम चाहिए कि व्यक्तिगत व्यग्य प्रहार साहित्य म न हो।

एक ऐसी ही घटना का उल्लेख सामाजिक हो कि जसवन्तसिंहजी द्वितीय के समय म अमरसिंह का ख्याल निषिद्ध घोषित कर दिया गया क्योंकि महाराजा की महारानी हाडी जाति की थी और नाटक का प्रमुख पात्र भी हाडी ही है जो मञ्च पर पदार्पण करती है। तत्कालीन महारानी इस सहन नही कर सकी और ख्याल को निषिद्ध घोषित कर दिया। इस धारणा की पुष्टि एक अन्य तथ्य से भी होती है। विगत शताब्दी म जोधपुर म ही एक थे यती। उनका दुराचार बढ गया था, इस कारण मोहल्ले वालों ने एक तमाशा बनाया और उसमें गुरों पर बहुत व्यग किया गया। यथा—

सावे करणी टाट गुरा या। मावो वडो मतीरो।

इस पर यति ने आकर पाव पकड लिए और भविष्य म दुराचार न करने की शपथ ली।

कहने का तात्पर्य यह है कि जब व्यक्ति या समुदाय विशेष पर कटु व्यग प्रहार किया जाता है अथवा उनके हृदय मर्म को निर्मम ढग से छू लिया जाता है तब वहाँ किसी प्रकार के साधारणीकरण की सम्भावना नही रह पाती। अतएव साहित्य में इस प्रवृत्ति को रोकना भी आवश्यक है। [२]

साधारणीकरण म इसीलिए यह माना जाता है कि नायक जो विरोधी न हो। वह सद्गुणों का प्रतिद्वन्दी भी न हो। यदि असद् पात्र विजयी होगा तो आनन्द की उपलब्धी नहीं हो सकेगी उसे रस विघ्न ही माना जायेगा। [३] वास्तव म रससाधारणीकरण एक सयुक्त मानसिक प्रक्रिया है। [४] इसम हम सम्पूर्ण काव्य

१—डा० रौस–हिस्ट्री ऑफ शेक्सपीरियन प्लेज पृष्ठ ५१८।

२—पाश्चात्य साहित्यालोचन और उसका हिन्दी पर प्रभाव पृष्ठ ४

३—डा आनन्दप्रकाश दीक्षित–रस स्वरूप सिद्धान्त और विश्लेषण पृष्ठ १८।

४—जे० ई० डाउने–क्रीयेटिव इमेजिनेशन अध्याय सैल्फ एण्ड आट।

व्यापार के आधार पर सुख प्राप्ति की कामना रखते हैं—सुख प्राप्ति होती है। इस प्रकार साधारणीकरण में कवि, काव्य और सामाजिक तीनों का तादात्म्य होता है और सामाजिकों को आनन्द की उपलब्धि होती है।

भक्ति रस अंग्रेजी के परिपार्श्व में—

वैसे भक्ति रस की महत्ता के उत्स दण्डी के प्रेयोलंकार में ही प्राप्त हो जाते हैं। रुद्रट ने प्रेयान का नवीन अलंकार के रूप में उद्भावन किया जिसका भाव स्नेह बताया। तदनन्तर कई लक्षण ग्रन्थों में इसके दर्शन होने लगे। हिन्दी में भी भक्ति में रस का स्वरूप धारण किया—उसे रस राज कहा जाने लगा। श्री रूप गोस्वामी ने हरि भक्ति रसामृत सिन्धु में भक्ति रस को और भी बल प्रदान किया। आज का आलोचक इसे पुष्टि प्रदान करता है। वह कहता है कि भरत द्वारा कथित रसों में विस्तार हो सकता है।[१]

यहाँ यह कहना सामयिक ही होगा कि रसों की संख्या में तो कुछ तो वृद्धि संस्कृत साहित्य में ही होने लगी थी किन्तु संस्कृत साहित्य की शास्त्रानुकूल रहने की प्रवृत्ति ने रस संख्या में विस्तार नहीं होने दिया—भक्ति रस का प्रौढ़ प्रमुखता नहीं मिल पाई। अंग्रेजी से हिन्दी में जब यह धारणा आई कि बधी बधाई परिपाटी ही सर्वस्व नहीं है, भक्तिकालीन साहित्य का प्रचार हिन्दी में विद्यमान था ही तब संस्कृत के आधार पर अंग्रेजी से बल प्राप्त कर हिन्दी के आलोचकों ने भक्ति को रस माना। अतएव इस मान्यता का आधार तो संस्कृत में खोजा ही जा सकता है, किन्तु इसकी प्रेरणा अंग्रेजी धारणाओं से मिली।

इसी भाँति वात्सल्य को भी रस स्वीकार किया गया है। उसका स्थायी भाव वात्सल्य स्वीकार किया गया है। इतना ही नहीं संस्कृत साहित्य ग्रन्थों से कार्पण्य रस, क्रीडनक रस, ब्रह्म रस, प्रशान्त रस, माया रस, प्रक्षोभ रस, कान्ति रस, प्रेम तथा विषाद रस के भी नाम ढूँढ निकाले हैं।[२] जैसा कि पहले कहा जा चुका है इस विस्तार पर अंग्रेजी का प्रभाव स्पष्ट प्रतीत होता है। आजकल तो कई प्रकार

१—डा० आनन्द प्रकाश दीक्षित—रस सिद्धान्त स्वरूप और विश्लेषण पृष्ठ २६७।

२—वही पृष्ठ ३११।

के नवीन रसो की भी कल्पना की जाती है। डा० दीक्षित ने इस प्रकार की कल्पना को निराधार और अवाञ्छनीय घोषित किया है।

रस विवेचन में कई बार अग्रेजी की पारिभाषिक शब्दावली से हिन्दी म भ्रम उत्पन्न हो जाता है। उदाहरणार्थ अग्रेजी म विख्यात दर्शन वेत्ता हीगेल को अईडियलिस्ट कहा जाता है। दार्शनिक पृष्ठ भूमि है उसका अर्थ विचारों को महत्ता देने वाला है कि तु हमारे यहाँ हीगेल को अईडियलिस्ट के आधार पर आदर्शवादी मान लिया जाता है। जो अनुपयुक्त प्रतीत होता है।[1] रसों की भाँति ही अलकारो का विवेचन भी अग्रेजी के प्रभावो से अछूता नही रह सका है।

अलकार अग्रेजी के परिपार्श्व मे

अलकार विवेचन पर निम्नाकित अग्रेजी प्रभाव आका जा सकता है। हिन्दी अलकारो के अग्रेजी म नाम प्राप्त किये गये और उनकी तुलनाएँ भी हुई। यथा रूपक को मेटाफर कहा गया और उपमा को सिमली। जगन्नाथ प्रसाद भानु तथा भगवानदीन और रामदहीन मिश्र ने अग्रेजी के परसोनिफिकेशन और ट्रासफर्ड एपिटेट नामक भेदो को भी स्वीकार किया।[2]

हिन्दी के अलकारों को मनोविज्ञानिक पृष्ठ भूमि पर स्थापित करने के प्रयत्न किये गये। रामदहीन मिश्र ने तो अलकार और मनोविज्ञान नामक प्रकरण म इनका अपरिहार्य सम्बन्ध स्थापित किया। डा० राम कुमार वर्मा ने अलकारो का आन्तरिक विवेचन किया।[3]

अलकारों का वर्गीकरण अग्रेजी सिद्धान्तो के अनुकूल किया गया—उन्हे सदृश्य मूलक, विरोधमूलक और साहचर्यमूलक भेदो मे बाटा गया।[4] यह विभाजन प्रफोसर बेन से प्रभावित प्रतीत होता है। वर्ण विन्यास सम्बन्धी, वाक्य विन्यास

१—रस सिद्धान्त स्वरूप विश्लेषण पृष्ठ २२३।
२—काव्यदर्पण पृष्ठ ४३०, ४३३।
३—डा० रामकुमार वर्मा-साहित्यशास्त्र पृष्ठ ११८।
४—आलोचना के पथ पर अलकार और मनोविज्ञान पृष्ठ १७ से ३४।

सम्बन्धी आदि विवेचन रामदहीन मिश्र ने किया।[१] इस पर एलिट्रेशन और पन का स्पष्ट प्रभाव है। डा० श्याम सुन्दर दास ने साम्य, विरोध और सानिध्यमूलक वर्गों में उन्हें बांटा है जो भी उपरिकथित विवेचन के अनुकूल है और प्रफोसर वेन से प्रभावित है।

आधुनिक युग मे अंग्रेजी मे भाव पक्ष को कला पक्ष से अधिक महत्व दिया जाता है। इसलिये हिंदी मे भी अलकारो को अधिक महत्व नहीं दिया जाता है फिर भी जिस प्रकार से हरबट रीड और आ० ए० रिचडस आदि ने शब्दालकारो को कम महत्व दिया है और अर्थालंकार को अधिक महत्व दिया है तथा अलकारो मे सीमा निर्धारण का प्रयत्न किया है। वैसे ही प्रयास हिंदी मे भी किये गये हैं। वैज्ञानिक दृष्टि से अलकारो के उत्पत्ति के बारे मे भी विचार किया गया है।[२] [३] इस प्रकार अलकारो के उद्गम पर वैज्ञानिक दृष्टि डालना अंग्रेजी ससर्ग का परिणाम कहा जा सकता है क्योंकि प्राचीन काल मे तो आप्तवाक्य अधिकांशत पर्याप्त मान लिया जाता था। अलकारों के विवेचन को संस्कृत काव्यशास्त्र के आधार पर मनोवैज्ञानिक सिद्धान्ता के अनुकूल विश्लेषण करके भी देखा जाता है।

विभिन्न पौर्वात्य और पाश्चात्य अलकार विवेचकों का तुलनात्मक अध्ययन किया गया—कुन्तक और क्रोचे की तुलना की गई।[४] आचार्य शुक्ल ने भी क्रोचे के सम्बन्ध मे भारतीय अलकारों का विवेचन किया।[५] डा० नगेन्द्र ने इस दृष्टि से विस्तृत विवेचन किया है। आधुनिक युग मे अंग्रेजी के सम्पर्क से गद्य का पूर्ण विकास हुआ। सामाजिक राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों मे अन्तर आया। इससे रीति कालीन काव्य प्रवृत्तियों की प्रतिक्रिया भी हुई। द्विवेदीयुगीन यह प्रतिक्रिया आलोच्य काल मे भी विद्यमान रही। पल्लव की भूमिका मे पन्तजी ने अलकार प्रदर्शन की अराजकता पर रोष प्रकट किया।[६] बहुधाआधुनिक अंग्रेजी

१—काव्य दर्पण पृष्ठ ३२३।
२—चिन्तामणि पृष्ठ १८४
३—रीति काव्य की भूमिका पृष्ठ ६०
४—सिद्धान्त और अध्ययन पृष्ठ ३५, ४२ ४३।
५—चिंतामणि द्वितीय भाग पृष्ठ २४०।
६—पल्लव की भूमिका पृष्ठ १८।

के समान छायावादी पुस्तकों में अलकारो के सूक्ष्म भेदों का निराकरण किया। अलकारों का विवेचन अंग्रेजी के माध्यम से भी हुआ। डा० एस० के० डे ने अंग्रेजी में ही इन पर प्रकाश डाला।

हिन्दी अलकारो के विवेचन करते हुए अंग्रेजी अलकारों का उल्लेख किया जाता है। पाश्चात्य अलकारो के इतिहास का भी विवरण दिया जाता है।[1] यत्र तत्र कतिपय हिन्दी नामों के अंग्रेजी के अनूदित रूप भी दिये जाते हैं।[2] हिन्दी में शब्दालकार अर्थालकार और उभयालकार ही सामान्यतः साधारण आलोचकों द्वारा मान्यता प्राप्त करते हैं इससे यह प्रतीत होता है कि संस्कृत और अंग्रेजी की उभयनिष्ठ धारणायें तो हिन्दी में अपनाली गई और संस्कृत की अधिकांश बातें जो अंग्रेजी में नहीं थी वे भुलादी गई किन्तु अंग्रेजी की बहुत सी बातें जो संस्कृत मे नहीं थी वे हिन्दी में अपना ली गईं।[3] अंग्रेजी मे—

क–फिगर ओफ स्पीच इन वर्डस

ख–फिगर ओफ स्पीच इन सेन्स एवं

ग–फिगर ओफ स्पीच इन दी थौट, प्राप्त होते हैं।

अतः हिन्दी में तीनों शब्दालकार अर्थालकार और उभयालकार में मान्यता प्राप्त कर ली। अंग्रेजी के कारण हिन्दी में मानवीकरण, विशेषण विपर्यय और ध्वन्यर्थ व्यजना जैसे अलकारो को स्थान दिया जाने लगा। छायावादी कविता मे इन तीनो का बाहुल्य पाया जाता है।

इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि हिन्दी अलकारों मे सूक्ष्म वर्गीकरण को स्थान न देना, इनकी मनोवैज्ञानिक और वैज्ञानिक व्याख्यायें करना इन्हें शब्दालकार अर्थालकार और उभयालकार भेदो मे बाँटना तथा इन्हें भाव पक्ष

१—आधुनिक हिन्दी मराठी काव्यशास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ ,८२ से ३८५।

२—डा० गोविन्दत्रिगुणायत-शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त पृष्ठ ३००

३—संस्कृत के सूक्ष्म भेदों को भुलाया जाना और अंग्रेजी के असंबद्ध व पर्याय चित्रण आदि का अपनाया जाना भी हमारे कथन की पुष्टि करता है।

से निम्नतर स्थान देना इनकी आलोचना पर अंग्रेजी प्रभाव सिद्ध करता है। अलंकारो का तुलनात्मक अध्ययन भी हमारे कथन की पुष्टि करता है।

रीति विवेचन

अंग्रेजी परिपार्श्व में —

कतिपय आलोचको ने रीति और "स्टाइल" में साम्य पाया जाता है तो अन्य समालोचको में इनमें पर्याप्त भेद देखा है।[1] आज का आलोचक रीति सिद्धान्त और पाश्चात्य शैली तत्वों की तुलना पर वांछनीय प्रकाश डालता है।[2] इस दृष्टि से डा० नगेन्द्र का कार्य सराहनीय है। डा० बलदेव उपाध्याय ने भारतीय साहित्य शास्त्र[3] में ऐसा ही प्रयास किया है। इन्होंने दोनो की समता पर प्रकाश डाला है। साथ ही यह भी प्रतिपादित किया गया है कि हमारे यहां में "स्टाइल" के जैसा व्यक्तिगत तत्व नही प्राप्त होता है। इसके विपरीत डा० गुलाबराय ने "अस्त्यनेको गिरा मार्ग" के आधार पर व्यक्तिगत तत्व को भी रीति में देखा है। डा० सुशील-कुमार ने दोनो में वैषम्य प्राप्त किया।[4] डा० नगेन्द्र का कथन है कि भारतीय रीति में व्यक्ति की पूर्ण अवहेलना तो नही हुई है किन्तु पाश्चात्य शैली के समान इसमें व्यक्तित्व का इतना समावेश भी नही किया गया है। अंग्रेजी में शैली ही व्यक्तित्व है कहा जाता है। 'मिडल्टन मरे' व जे० एम० ग्रीन ने इस तथ्य पर गहनता से विचार किया है।[5] आई० ए० रिचर्डस् ने भी कवि की मनोभूमिका का सूक्ष्म विवेचन किया है।

अंग्रेजी के स्टाइल और डिक्शन को हिन्दी में रीति का पर्याय भी मान लिया जाता है किन्तु यह अधिक उपयुक्त नही है क्योंकि जिस प्रकार बूचर और वाय वाटर ने अरस्तू के अनुवाद के समय कहा था कि अरस्तू के और आधुनिक अंग्रेजी

१—आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्य शास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ ४७१।
२—वही पृष्ठ ४७४, ४८६।
३—भारतीय साहित्य शास्त्र-द्वितीय खंड पृष्ठ २३६।
४—हिस्ट्री ऑफ संस्कृत पोइटिक्स-द्वितीय भाग पृष्ठ ११६।
५—प्रिंसीपल्स आफ लिटरेरी क्रिटिसिज्म् पृष्ठ १३६।

ने कहा है कि इसके द्वारा हमें एक नवीन दृष्टिकोण प्राप्त हुआ है।[1] इस प्रकार हिन्दी आलोचना ने अंग्रेजी के माध्यम से एक नया दृष्टिकोण अवश्य ही प्राप्त किया है। इस प्रणाली में आलोचना को न तो ऊहात्मक उक्तियाँ और चमत्कार उपयुक्त प्रतीत होते हैं और न कोमलता न कटुता ही।[2] श्री अमृतराय ने तो उक्त बातों का स्पष्ट विरोध किया है।[3] कई आलोचकों ने इस सम्बन्ध विवाद से असम्बद्ध माना है। पन्त, दिनकर निराला और महादेवी विचार स्वातन्त्र्य के समर्थक रहे हैं।

हिन्दी में डा० राम विलास शर्मा श्री अमृतराय और श्री शिवदान सिंह को मार्क्सवादी आलोचक कहा जा सकता है। यहाँ यह स्मरणीय है कि अन्धानुकरण को तो यह भी अनुपयुक्त मानते हैं। हमारा मन्तव्य इनकी तुलसी दास की निष्पक्ष आलोचना करने पर स्पष्ट हो जाता है। हमें तो यही बताना है कि अंग्रेजी के माध्यम से हिन्दी आलोचना ने इन सिद्धान्तों और इस शैली को ग्रहण किया है। फिर भी यह भी मानना होगा कि मार्क्सवादी आलोचकों का अंग्रेजी के ही माध्यम से आये हुए मनोविश्लेषणवाद का विरोध किया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अंग्रेजी साहित्य में प्राप्य विरोधी भावनायें हिन्दी में भी स्थान प्राप्त करने लगीं।

कई विदेशी लेखक हिन्दी में आत्मसात कर लिये गये और कई हिन्दी लेखक अंग्रेजी की भाषा में अपने आपको अभिव्यक्ति करने लगे। कहीं कहीं साधारणीकरण को सामूहिक भाव में श्रेष्ठतर बताया गया है तो कहीं प्रभावानुवृत्ति को फलागम से श्रेष्ठ बताया गया। इस प्रकार आलोचकों का एक वर्ग पाश्चात्य साहित्य की दुहायी देता है तो दूसरा वर्ग संस्कृत काव्यशास्त्रकारों की कहीं कहीं सामञ्जस्य के बीज दिखायी देते हैं यत्र तत्र व्यक्तिगत प्रभाव और वाल्टर पेटर के कला कला के लिये वाले सिद्धान्त टेन के ऐतिहासिक सिद्धान्त और क्रोचे के अभिव्यञ्जनावाद आदि के निरूपण भी प्राप्त होते हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है भूमिका के रूप में अपने मत की पुष्टिकरण स्वच्छन्दतावादी अंग्रेजी आलोचकों से ही प्राप्त हो जाता है किन्तु आधुनिक युग में घोषणा पत्रों के रूप में भी अपनी धारणाओं का विवेचन किया जाता है। इसका प्रारम्भ पाश्चात्य जगत से अति यथार्थवाद के

१—डा० रामविलास शर्मा–हंस प्रगती अंक पृष्ठ ३९३।
२—नयी समीक्षा पृष्ठ ५
३—सन् १९२४।

प्रवर्तक आग्र ब्रेन्न तथा अन्य दो घोषणा पत्रों मे प्रकाशित हुए।[१] इसी भांति हिन्दी मे भी घोषणा पत्र लिखे गये।

पुस्तकों की भूमिकायें —

उन्होंने अपना मन्तव्य प्रकट किया। अंग्रेजी के उदाहरण द्वारा अपने मत की पुष्टि की गई। कई बार अंग्रेजी के उद्धरण पाद टिप्पणियों मे दिये गये।[२] वस्तु पुराने वादों को हेय सिद्ध करने के प्रयत्न किये गये। प्रयोग की आकांक्षा पर अंग्रेजी के एक्सपरिमेंटलिसम का सीधा प्रभाव दिखायी देने लगा। तार सप्तकों की भूमिकायें विभिन्न कवियों और आलोचकों पर अंग्रेजी प्रभाव स्पष्ट करती है। उदाहरण के लिये अज्ञेय यह लिखते हैं--विशेष शब्दों के इस युग मे भाषा एक रहते हुए भी उसके मुहावरे अनेक हो जाते हैं आलोचना मे नया कम होता है[३] इस कथन पर आई० ए० रिचेडस के इस कथन की छाया दिखायी देती है। वी कनोट एक्सपेक्ट नोवल वाइज वेन स्पेलिंग सो एडीशनल ये गेम। अज्ञेय ने मौलिकता के प्रसंग मे इलियट का विश्लेषण भी किया है। जिससे ज्ञात होता है कि उन्होंने उसका अध्ययन किया है। इसी भांति उन पर इलियट की उक्तियों का प्रभाव भी दिखायी देता है अज्ञेय ने नवीनता की चाह द्वारा अंग्रेजी प्रभाव को और भी अधिक स्पष्ट कर दिया है। उन्होने अंग्रेजी से आई हुई मनोवैज्ञानिक पद्धति को भी अपनाया है। नई कविता के समर्थक नवीनता के समर्थक हैं। वे नवीन काव्य अपनाने के इच्छुक हैं। डा० जगदीश गुप्त के नई कविता मे रस और मौलिकता शीर्षक निबन्ध पर इलियट की नयी कविता के विवेचन की गहरी छाया दिखायी देती है। उदाहरण के लिये इलियट ने जिस प्रकार विचार और कला मे अन्तर बताया है तथा बहुलिकता का आग्रह दिखाया है वैसा ही मत प्रतिपादन इन्होने किया है। यह कोडवेल के समान कला की उत्पत्ति वैसे ही मानते हैं जैसे सीप से मोती। डा० जगदीश गुप्त का यह कहना कि कला हम सोचने को मजबूर करती है अंग्रेजी आलोचना के मरुदण्ड

१—सन् १९३०।

२—तार सप्तक पृष्ठ ५१।

३—दूसरा तार सप्तक की भूमिका पृष्ठ १० एवं त्रिशंकु पृष्ठ ७।

है। डा० भागीरथ प्रसाद दीक्षित संस्कृत आधार भित्ति पर स्थित हैं और वे चमत्कार युक्त कविता को कविता नहीं मानते हैं। यह सिद्धान्त संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल है परन्तु टी० एस० इलियट की धारणाओं के प्रतिकूल है।

मनोविश्लेषणवादी आलोचक —

इलाचन्द्र जोशी ने साहित्य सर्जना, विवेचना, विश्लेषण, साहित्य चिन्तन देखा और परखा एवं उनका प्रभाव पाश्चात्य के साथ लिया हुआ साहित्य संसार में अपना प्रभाव का परिचय दिया है। इन्होंने मनोविश्लेषण वादी दृष्टिकोण के आधार पर मनोवाद सिद्धान्तों का उदाहरणात्मक पर विचार किया है। वे स्वयं कहते हैं कि मैं फ्रायड का समर्थक नहीं हूँ।[1] इन्होंने स्पष्टतया इसलिए कहा है कि मार्क्सवादी और फ्रायडवादी आपस में एक समझौते पर नहीं पहुँच पाये हैं। इन्होंने फ्रायड का समर्थन मनोविज्ञान के आधार पर किया है और वे मार्क्सवादी की पृष्ठभूमि पर आधारित हैं। इन्होंने कहीं कहीं अत्यन्त कठोर शब्दों का प्रयोग कर दिया है जो त्याज्य है। एक तथ्य और भी उल्लेखनीय है कि आपस में प्रयोगवादियों और मार्क्सवादियों का सहयोग नहीं पाया जाता है। यह पार्थक्य और बढ़ता जाता है।[2] इस प्रकार की धारणायें और असहयोग की भावनायें हैं। साहित्य के लिये घातक सिद्ध होगी।

अज्ञेयजी के निबंधों पर भी मनोवैज्ञानिक पद्धति का पूरा २ प्रभाव दिखायी देता है। वे अपने विवेचन में मनोविज्ञान का सहारा लेते हैं फलतः मार्क्सवादियों के विरुद्ध दिखायी देते हैं।[3,4] इनकी कविता पर पाश्चात्य प्रभाव दिखायी देता है जिनमें नग्नता के भी दर्शन होते हैं[5] इस प्रकार वे अंग्रेजी से प्रभावित हैं। अंग्रेजी प्रभाव के कारण यह मान लिया जाता है कि आलोचना का विशिष्ट और सम्यक् स्वरूप अंग्रेजी के प्रभाव का परिणाम है। इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि अंग्रेजी

१—साहित्य चिन्तन, प्रगति की नई दिशा-पृष्ठ ५८।

२—श्री सुमित्रानंदन पंत साठ वर्ष एक रेखांकन पृष्ठ ६९,७०

३—त्रिशंकु-पृष्ठ ७६।

४—तारसप्तक-७५।

५—इत्यलम् के प्रारम्भ में फ्रांसीसी की लेकर की अश्लील सी कविता का उद्धरण दिया गया है।

के प्रभाव से हिन्दी आलोचना को वहाँ एक ओर नई शक्ति और दिशा मिली है वहीं आलोचकों के मस्तिष्क पर प्रभाव का पूरा आतंक जमा दिया है। [1] यही नहीं कहीं कहीं तो हिंदी के लेखक अनायास ही अंग्रेजी आलोचक को याद कर बैठता है। उदाहरण के लिये डा० रवीन्द्र सहाय लिखते हैं महावीर प्रसाद द्विवेदी को देखकर अनायास ही डा० जाह्नसन की याद आ जाती है। इसी भांति हिंदी आलोचकों की परिस्थितियों की तुलनाएँ अंग्रेजी आलोचकों से की जाती हैं। [2] डा० वेंकट शर्मा ने भी पन्त का विवेचन करते हुए भी लिरिकल बैलटस का नाम ले लिया है। [3] इस प्रकार व्यक्तियों विचारों और परिस्थितियों में अंग्रेजी आलोचना से साम्य अनुभव करना अंग्रेजी आलोचना के प्रभाव का परिणाम है।

कई बार अंग्रेजी के वाक्यों और सिद्धान्तों को हिंदी में ज्यों का त्यों अपना लिया जाता है। डा० सेंटसबरी ने कहा था कि आलोचना का कर्तव्य श्रेष्ठतर भावों को प्रचारित करना है। [4] इसी की छाया में डा० खन्नी लिखते हैं साहित्य का मुख्य लक्ष्य साहित्य को प्रेम पूर्वक हृदयगम करके श्रेष्ठातिश्रेष्ठ विचारों तथा भावों का अविरल प्रसार करना है [5] इसी भाँति इनका यह कथन कि समकालीन लेखकों का मूल्यांकन दुष्कर होता है ए० सी० वाड की धारणा से प्रभावित है। इसी प्रकार कई आलोचकों के सिद्धांत अंग्रेजी आलोचना से प्रभावित प्रतीत होते हैं। उनके वर्गीकरण पर भी अंग्रेजी का प्रभाव दिखायी देता है।

कला का वर्गीकरण —

ललित कलाओं और उपयोगी कलाओं का विभाजन अंग्रेजी के अनुकूल दिखायी देता है। डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने कलाओं के इन भेदों पर समीचीन प्रकाश डाला है। डा० एस० पी० खन्नी ने भी ललित और उपयोगी कलाओं का भेद

१—आलोचना इतिहास तथा सिद्धान्त पृष्ठ ११।
२—पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव पृष्ठ ५२।
३—आधुनिक हिन्दी में समालोचना का विकास पृष्ठ ३४१–४८।
४—डा० सेंटसबरी। हिस्ट्री ऑफ इंगलिश क्रिटिसिसम–कनक्लूजन।
५—आलोचना इतिहास तथा सिद्धान्त पृष्ठ २५७।

किया है।[1] डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा ने भी इस भेद को मान्यता प्रदान की।[2] प्रसादजी इस भेद के विरुद्ध थे। हिन्दी में पाश्चात्य आलोचना के समर्थकों द्वारा आलोचकों विरागयुक्त माना गया है।[3] सम्भवतः इस विचार धारा पर अंग्रेजी के इन डिफेन्स में का प्रभाव रहा है। मनोवैज्ञानिक आलोचना प्रणाली भी हिन्दी में अंग्रेजी के प्रभाव से ही उत्पन्न और विकसित हुई है। इसका सर्वप्रथम जागरूक प्रयोग एडिसन ने १८ वीं शताब्दी में अपने निबन्धों में किया। उसका प्रेरणा श्रोत लोक का एन० एस० ओन० ह्यूमन अण्डरस्टेंडिंग था। आडीसन के द्वारा अपनाया गया कल्पना तत्व भी हिन्दी में स्थान ग्रहण करने लगा। इसका अंग्रेजी में विभिन्न प्रयोगों के अनुकूल वर्गीकरण भी किया गया। डा० एस० पी० खत्री ने उस वर्गीकरण को और सम्भवतः वर्किंग ओफ लिटरेचर की धारणाओं को मिलाकर कल्पना का विवेचन किया।[4]

अंग्रेजी के परिभाषायें हिन्दी में अपना ली गई और साहित्य को जीवन की व्याख्या माना जाने लगा। इसी भाँति कला कला के लिये कला जीवन के लिये कला जीवन से पलायन के लिये, कला जीवन में प्रवेश के लिये और अन्य ऐसे ही वाक्य हिन्दी में अंग्रेजी के माध्यम से आये। यह कहना कि साहित्य के एक या दो भागों को ही अवतारित किया जा सकता है। अंग्रेजी की परिभाषा—क्लिस ओफ लाइफ का प्रभाव है सरस साहित्य और अन्य प्रकार का साहित्य हिन्दी वालों पर डी क्वन्सी के प्रभाव का परिचायक है डा० खत्री ने इस बात का भी उल्लेख किया कि आलोचना का अधिकारी कौन है? उनके उक्त विवेचन पर बन जोसन की डिसकवरीज और स्केटजम्स के विवेचन का प्रभाव है। इसी भाँति इलाचन्द्र जोशी ने कला कला के लिये सिद्धान्तों को अपना कर अंग्रेजों का प्रभाव का परिचय दिया है। बहुधा लेखक अंग्रेजी विचारों को ज्यों का त्यों रख देते हैं। कहीं कहीं इन विचारों की गन्ध बड़ी तीव्र हो जाती है।[5]

१—डा० एस० पी० खत्री—आलोचना इतिहास तथा सिद्धान्त पृष्ठ २७०
२—रवीन्द्र सहाय वर्मा—पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव ४७।
३—आलोचना इतिहास तथा सिद्धान्त पृष्ठ ३०५ एवं मारस एंजलस सेलेक्टेड करसनेट्स।
४—आलोचना इतिहास तथा सिद्धान्त पृष्ठ ४१७
५—वही पृष्ठ ४१८, ४२०, ४२३ से ४४०।

अंग्रेजी के अनुवाद —

प्रभाव

डा० लक्ष्मी सागर वाष्र्णेय ने 'गासी दी तासी' का अनुवाद हिन्दी में किया है जिससे साहित्य में उक्त ग्रंथ का प्रत्यक्ष ज्ञान सम्भव हो सकेगा। इसी भाँति किशोरीलाल गुप्त ने ग्रियसन के साहित्य का हिंदी अनुवाद प्रस्तुत किया है। फिर भी इस सम्बन्ध में कार्य होना अवशेष है। रिचाड्स और स्कॉट जेम्स के अनुवाद होने चाहिये। डा० नगेन्द्र ने इस दृष्टि से सराहनीय कार्य किया है अनुवादों के साथ भाषा विज्ञान पर भी दृष्टि पात करना उचित ही होगा।

भाषा वैज्ञानिक —

इस दृष्टि से ग्रियरसन और पाश्चात्य विद्वानों को अगुआ कहा जा सकता है। निर्देशन के पश्चात्य तो भारतीय विद्वानों ने तो अपने ढंग से कार्य किया है। डा० सुनीति कुमार, डा० धीरेन्द्र वर्मा व डा० उदय नारायण तिवारी प्रभृति के नाम उल्लेखनीय हैं। इसमें विभिन्न साहित्यिक संस्थाओं ने सहयोग दिया है।

आकाश वाणी —

आकाश वाणी और साहित्यिक संस्थाएँ

अंग्रेजी में बी० बी० सी० जैसे शेक्सपीयर और आदि की आलोचनाएँ प्रसारित की जाती हैं, वैसे ही हिन्दी में भी तुलसी और सूर आदि की आलोचनाएँ प्रसारित की जाती हैं। यहाँ पुस्तकों की आलोचनाएँ भी की जाती हैं। इस दृष्टि से डा० सरनाम सिंह जी द्वारा जयपुर रेडियो से प्रसारित पुस्तकों की आलोचनाएँ सारगर्भित हैं।

विदेशों की विभिन्न संस्थाओं के समान हमारे यहाँ भी साहित्यिक संस्थाएँ कार्य कर रही है। वहाँ से प्रचारित आलोचना साहित्य हमारी बहुत बड़ी क्षतिपूर्ति करता है। फिर भी कई संस्थाएँ सरकार से सहायता लेने के लिये अथवा निजि स्वार्थ के लिये ही स्थापित कर ली जाती हैं, यह अवश्य ही निन्दनीय है। ऐसी कई संस्थाओं ने जितना रुपया लगता है और जितने व्यय से आलोचनात्मक पत्रिकायें

किया है।[1] डा० रवीन्द्र सहाय वर्मा ने भी इस भेद को मान्यता प्रदान की।[2] प्रसादजी इस भेद के विरुद्ध थे। हिन्दी में पाश्चात्य आलोचना के समर्थकों द्वारा आलोचकों विरागयुक्त माना गया है।[3] सम्भवत इस विचार धारा पर अंग्रेजी के इन डिफेन्स का प्रभाव रहा है। मनोवैज्ञानिक आलोचना प्रणाली भी हिन्दी में अंग्रेजी के प्रभाव से ही उत्पन्न और विकसित हुई है। इसका सर्वप्रथम जागरूक प्रयोग एडिसन ने १८ वीं शताब्दी में अपने निबन्धों में किया। उसका प्रेरणा स्रोत लोक का एन० एस० ओन० ह्यूमन अन्डरस्टेटिंग था। आडीसन के द्वारा अपनाया गया कल्पना तत्व भी हिन्दी में स्थान ग्रहण करने लगा। इसका अंग्रेजी में विभिन्न प्रयोगों के अनुकूल वर्गीकरण भी किया गया। डा० एस० पी० खत्री ने उस वर्गीकरण को और सम्भवत वर्क्स ओफ लिटरेचर की धारणाओं को मिलाकर कल्पना का विवेचन किया।[4]

अंग्रेजी के परिभाषायें हिन्दी मे अपना ली गई और साहित्य को जीवन की व्याख्या माना जाने लगा। इसी भांति कला कला के लिये कला जीवन के लिये कला जीवन से पलायन के लिये कला जीवन में प्रवेश के लिये और अन्य एसे ही वाक्य हिन्दी में अंग्रेजी के माध्यम से आये। यह कहना कि साहित्य के एक या दो भागों को ही अवतारित किया जा सकता है। अंग्रेजी की परिभाषा—स्पेस ओफ लाइफ का प्रभाव है सरस साहित्य और अन्य प्रकार का साहित्य हिन्दी वालों पर डी कन सो के प्रभाव का परिचायक है डा० खत्री ने इस बात का भी उल्लेख किया कि आलोचना का अधिकारी कौन है? उनके उक्त विवेचन पर बन जो सन की डिसकवीज और स्कटजम्म के विवेचन का प्रभाव है। इसी भांति इलाचन्द्र जोशी ने कला कला के लिये सिद्धान्तों को अपना कर अंग्रेजी का प्रभाव का परिचय दिया है। बहुत लेखक अंग्रेजी विचारों को ज्यों का त्यों रख देते हैं। कहीं कहीं इन विचारों की गन्ध बड़ी तीव्र हो जाती है।[5]

१—डा० एस० पी० खत्री—आलोचना इतिहास तथा सिद्धान्त पृष्ठ २७०
२—रवीन्द्र सहाय वर्मा—पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर उसका प्रभाव ४७।
३—आलोचना इतिहास तथा सिद्धान्त पृष्ठ ३०५ एवं मादस एजिल्स सेलेक्टेड करसपोन्डेन्स। ।
४—आलोचना इतिहास तथा सिद्धान्त पृष्ठ ४१७
५—वही पृष्ठ ४१८, ४२०, ४२३ से ४४०।

अग्रजी के अनुवाद —

प्रभाव

डा० लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय ने 'गार्सा दी तासी' का अनुवाद हिन्दी म किया है जिसस साहित्य म उक्त ग्रन्थ का प्रत्यक्ष ज्ञान सम्भव हो सकेगा। इसी भाँति किशारीलाल गुप्त ने ग्रियसन के साहित्य का हिन्दी अनुवाद प्रस्तुत किया है। फिर भी इस सम्बन्ध म काय होना अवशेष है। रिचाडस और स्काट जेम्स के अनुवाद होने चाहिये। डा० नगेन्द्र ने इस दृष्टि से सराहनीय काय किया है अनुवादो के साथ भाषा विज्ञान पर भी दृष्टि पात करना उचित ही होगा।

भाषा वैज्ञानिक —

इस दृष्टि से ग्रियरसन और पाश्चात्य विद्वानों को अगुआ कहा जा सकता है। निर्देशन के पश्चात्य तो भारतीय विद्वानो ने तो अपने ढग से काय किया है। डा० सुनीति कुमार डा० धीरेन्द्र वर्मा व डा० उदय नारायण तिवारी प्रभृति के नाम उल्लेखनीय हैं। इसम विभिन्न साहित्यक सस्थाओं ने सहयोग दिया है।

आकाश वाणी —

आकाश वाणी और साहित्यिक सस्थाएँ

अग्रेजी मे बी० बी० सी० जैसे शक्सपीयर और आदि की आलोचनाएँ प्रसारित की जाती ह वसे ही हिन्दी मे भी तुलसी और सूर आदि की आलोचनाएँ प्रसारित की जाती हैं। यहाँ पुस्तको की आलोचनाएँ भी की जाती हैं। इस दृष्टि स डा० सरनाम सिंह जी द्वारा जयपुर रेडियो स प्रसारित पुस्तको की आलोचनाएँ सारगर्भित हैं।

विदेशो की विभिन्न सस्थाओ के समान हमारे यहाँ भी साहित्यिक सस्थाएँ काय कर रही है। वहाँ स प्रचारित आलोचना साहित्य हमारी बहुत बडी क्षतिपूर्ति करता है। फिर भी कई सस्थाएँ सरकार से सहायता लेने के लिये अथवा निजि स्वाथ के लिये ही स्थापित कर ली जाती हैं, यह अवश्य ही निन्दनीय है। एसी कई सस्थाआ न जितना रुपया लगता है और जितने व्यय स आलोचनात्मक पत्रिकायें

प्रकाशित होती हैं उतने से कम व्यय में अधिक स्थायित्व की पुस्तकें प्रकाशित की जा सकती हैं। प्रयाग और दिल्ली प्रभृति, विश्व विद्यालयों की साहित्यिक संस्थायें आलोचनात्मक साहित्य के प्रसार में अभिनन्दनीय कार्य कर रही हैं। जोधपुर स्थित प्राच्य शोध संस्थान भी पुस्तकालय और अपनी पत्रिका के द्वारा शोधार्थियों और साहित्य जिज्ञासुओं को अपूर्व सहयोग दे रहा है। ऐसी संस्थाओं को पक्षपात और राजनीति से बचाना चाहिये। आधुनिक युग में अंग्रेजी प्रभाव से दृष्टिगोचर होता है कि पुस्तकों के अन्त में जहां लेखकों के नाम दिये जाते हैं वहाँ उन्हें अंग्रेजी ढंग से रखा जाता है। यथा अंग्रेजी में टी० एस० इलियट को इलियट टी० एस० रूप में रखा जाता है अतएव हिन्दी में भी दास श्याम सुन्दर और प्रसाद जय शंकर रखा जाने लगा है।[1]

अंग्रेजी के ही समान हिन्दी में भी आलोचनात्मक और रचनात्मक ग्रन्थों का प्रणयन होता है। अंग्रेजी के आक्सफोर्ड कम्पेनियन के जैसा ग्रन्थ हिन्दी साहित्य कोष नाम से आया। उसके प्रणयन का उद्देश्य ओक्सफोर्ड कम्पेनियन जैसा अधिकार पूर्ण ग्रन्थ हिन्दी को प्रदान करना था।[2]

आलोचना की परिभाषा में भी अंग्रेजी के तत्वों को अपना लिया जाता है। उदाहरण के लिये जब यह कहा जाता है कि आलोचना का जो वास्तविक और आधुनिकतम अर्थ विश्लेषण विवेचन और निगमन हैं जिनमें आलोचना की तटस्थता का तत्व भी अन्तभूर्त है।[3] इस प्रकार आलोचना में पाश्चात्य शैलियों का समावेश किया जाता है।

अंग्रेजी आलोचना के प्रभाव से समाज शास्त्रीय आलोचना का भी उदय हुआ।

१—पाश्चात्य साहित्यालोचन और हिन्दी पर इसका प्रभाव-पृष्ठ १८६।

२—डा० देवराज उपाध्याय जबकि वे इस ग्रन्थ के कतिपय अंशों का प्रणयन कर रहे थे तब उन्होंने कहा था कि हिन्दी की क्षतिपूर्ति का यह एक प्रयास है और ग्रन्थ को ओक्सफोर्ड कम्पेनियन जैसा अधिकार पूर्ण बनाने की योजना है।

—ख—देखिये हिन्दी साहित्य कोष की भूमिका।

३—हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास-पृष्ठ ३३२।

समाज शास्त्रीय आलोचना —

अंग्रेजी प्रभाव के कारण अब समीक्षक का कार्य आलोच्य कृति का विश्लेषण माना जाता है। अर्थात् यह जानने का प्रयत्न करें कि साहित्यकार जीवन के (जिसमें बाह्य प्रतिक्रिया एवं आन्तरिक प्रतिक्रिया दोनों का समावेश है) किस पहलू का उद्घाटन करने बैठा है। और उस पहलू के उद्घाटन का साहित्यकार को युग के लिये क्या महत्व है।[1] इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि की मनोवैज्ञानिक और उसकी बाह्य परिस्थितियों का विवेचन आवश्यक माना गया है। यह अंग्रेजी प्रभाव का परिणाम है। अन्यथा संस्कृत काव्यशास्त्र के अनुकूल तो विभिन्न गुण दोषों और सम्प्रदायों आदि के अनुकूल विवेचना कर दी जाती थी। युग सापेक्ष मूल्यांकन की भावना अंग्रेजी साहित्य के अनुकूल है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि अंग्रेजी साहित्य ने हिंदी आलोचना को बहुत अंशों तक प्रभावित किया है। आधुनिक वाद, विभिन्न शैलियाँ, अनेक प्रकार की आलोचनात्मक उक्तियाँ पुस्तकों की भूमिकायें, अंग्रेजी से अनुदित ग्रन्थ मनोवैज्ञानिक विवेचना, अंग्रेजी के माध्यम से अन्य पाश्चात्य भाषाओं का परिचय कलाओं और काव्य का विवेचन आलोचना की परिभाषा आलोचक के गुण, आलोचकों के नाम लिखने की प्रणाली और अंग्रेजी के जैसे ग्रन्थों के प्रणयन की आकांक्षाएँ हमारे कथन की पुष्टि करते हैं। यहाँ यह कहना भी सामयिक ही होगा कि अंग्रेजी के नवीनता के आग्रह को संस्कृत की पृष्ठभूमि पर देश काल अनुसार अपना कर हिन्दी आलोचकों ने सामंजस्य और समन्वय का मौलिक प्रयास किया है।

१—डा० देवराज द्वारा सम्पादित हिन्दी आलोचना की अर्वाचीन प्रवृतियाँ—भूमिका।

'ख' भाग

आचार्य राम चन्द्र शुक्ल —

आचाय रामचन्द्र शुक्ल सच्चे अर्थों में आचाय थ ।[1] इन्होने भारतीय सिद्धान्तो के साथ अंग्रेजी के कलावाद सौन्दय शास्त्र और प्रतीकवाद प्रभाववाद एव अभिव्यजनावाद का भी उल्लेख किया है । आचाय नन्द दुलारे वाजपेयी का अभिमत है कि शुक्ल जी स पूव शास्त्रीय आधार होते हुए भी पुरातन रस सिद्धान्त को मनो वज्ञानिक शैलि प्राप्त नही हो सकी थी ।[2] आचाय शुक्ल ने साहित्य इस क्षति पूर्ति का सफल प्रयास किया है । साथ ही उन्होने अपनी आलोचना के साथ सामा जिक सम्पक का आ ह्वान किया है ।[3] उन्होने काव्य जगत म प्रचलित भ्रान्तिया के निराकरण का प्रयत्न किया ।[4]

सस्कृत क परिपार्श्व मे —

उन्होने रहस्यवादियो की अज्ञात को प्राप्त करने की लालसा को अनुपयुक्त सिद्ध किया । व भारतीयता के समथक थे और उन्होने अंग्रजो की अन्धी नकल कर ब्रह्मवादी बनने वालो पर कटुव्यग प्रहार भी किया ।[5] [6] उन्होंने रहस्यवादियो म भावो की सच्चाई का अभाव और व्यजना की कृत्रिमता के अतिरिक्त और कुछ भी

१—डा० गुलाब राय और विजयेन्द्र स्नातक– आलोचक रामचन्द्र शुक्ल पृष्ठ २५ ।

२—पण्डित नन्ददुलारे वाजपेयी–आचाय शुक्ल का काव्यालोचन पृष्ठ ५६ ।

३—वही पृष्ठ ६१ ।

४—चिन्तामणी दूसरा भाग पृष्ठ ४६ ।

५—वही पृष्ठ ७१ ।

६—वही पृष्ठ ८१ ।

नहीं देखा।[1] रहस्यवाद को उन्होंने अंग्रेजों के आन पर उत्पन्न साम्प्रदायिक वस्तु के रूप में देखा।[2]

महाकाव्य और मुक्तक की परिभाषाएँ —

शुक्लजी ने महाकाव्य की परिभाषा रस सिद्धान्त के अनुकूल देते हुए उसमें जीवन का पूर्ण दृश्य चित्रण माना है। उनके इस परिभाषा पर ध्वनियों लोककार आनन्द वर्धन की छाया दिखाई देती है। आनन्द वर्धन ने कथा का प्रावधन, प्रवाह एवं विन्यास सब कुछ रस को दृष्टि में रखकर ही किया है। मुक्तक की परिभाषा देते समय भी शुक्लजी का ध्यान रस पर रहा होगा। वे कहते हैं—'मुक्तक में प्रबन्ध काव्य के समान रस की धारा नहीं रहती, जिसमें कथा प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में स्थाई भाव ग्रहण करता है। इसमें तो रस के छीटे पड़ते हैं जिनमें हृदय कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठता है।[3] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि इन शब्दों में शुक्ल जी का रस सिद्धान्त के प्रति आदरभाव दिखाई देता है। वे मुक्तकों को, जो आधुनिक युग में अंग्रेजी की देन है उन्हें महाकाव्य जितना आदर नहीं देते हैं। कविता की परिभाषा में भी साधारणीकरण की गन्ध आती है। हृदय की मुक्तावस्था के लिए की गई साधना को कविता कहते हैं।[4] कला की व्याख्या भी इन्होंने संस्कृत के अनुकूल की और काव्य को कला के अन्तर्गत नहीं रखा। हीगेल के अनुसार अपनाई जाने वाली काव्य और कला सम्बन्धी प्रणाली का शुक्ल जी ने बहिष्कार किया। इन्होंने काव्य को कला से भिन्न माना।[5] आचार्य ने क्रोचे के अभिव्यंजनावाद को भारतीय वक्रोक्तिवाद से निम्न-स्तर का घोषित किया। इसके भी मूल में इनका रस सम्बन्धी सिद्धान्त ही था।

रस और चमत्कार —

यह रसवादी आचार्य है। अतएव मनोरंजन ही काव्य का उद्देश्य न मान

१—चिन्तामणी दूसरा भाग-पृष्ठ १२२।
२—वही-पृष्ठ १२५।
३—आचार्य रामचन्द्र हिन्दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ २६८, २६९।
४—रस मीमांसा-पृष्ठ ५।
५—चिन्तामणी पृष्ठ १८७, १७८।

कर सहृदय को सहानुभूति म तल्लीन कर देना काव्य का लक्ष्य मानते हैं । इन्होने कहा है—काव्य विधायिनी कल्पना वही कही जा सकती है जो या तो किसी भाव द्वारा प्रेरित हो अथवा भाव का प्रवतन या सचार करती हो। सब प्रकार की कल्पना काव्य की प्रक्रिया नही कही जा सकती। अत काव्य म अनुभूति अग है, पूर्ण रूप अग प्रधान है कल्पना उसकी सहयोगिनी है।[1] शुक्लजी केवल चमत्कार को काव्य नही मानते। उनका मत है कि वचन का जो वक्रता भाव प्रेरित होती है वही काव्य है।[2] इस प्रकार रस और काव्य की व्याख्या भारतीय सिद्धान्तो के अनुकूल है। उन्होने साधारणीकरण की मान्यता का स्वीकार किया है। वे उसकी दो अवस्थायें मानते हैं —पर रस की एक नीची अवस्था और है जिसका हमारे यहा के साहित्य ग्रन्थों म विवेचन नहा हुआ है। इसस प्रतीत होता है कि इनकी धारणाये सस्कृत शास्त्रकारों के पारिपार्श्व म दीक्षित हुई हैं। इनके प्रतिपादन की शैली और उन तथ्यो म मौलिकता का वज्ञानिक योग इनकी अपनी देन है। शुक्लजी का रस मीमासा ग्रन्थ यह प्रतिपादित करता है कि व रस के समर्थक थे और व काव्य सिद्धान्तो के विवेचन विश्लेषण को उसी कसौटी पर कसना चाहते थे। रस मीमांसा की परिनिष्ठि से यह ज्ञात होता है कि शुक्लजी उसे बहुत ही व्यापक रूप देना चाहते थ। इनके काव्य की परिभाषा पर भी सस्कृत का प्रभाव दिखाइ देता है।

काव्य —

काव्य की परिभाषा देते हुए इन्होने सस्कृत के विभिन्न उदाहरण दिये हैं।[3] कही रामायण, कही मेघदूत और कही अन्य सस्कृत के शास्त्रीय ग्रन्थो से। उन्होने काव्य म हृदय को स्पष्ट करने की शक्ति पर बल दिया जाता है। यह रस सिद्धान्त के अनुकूल है। यह कहते हैं 'हमारे यहा भी व्यग्य वाक्य ही काव्य माना जाता है। वक्रोक्तिवादी कहग कि ऐसी उक्ति जिसम कुछ वचित्र्य या चमत्कार हो, व्यजना चाहे जिसकी हो, या किसी ठीक ठीक बात की न भी हो। पर जसा कि हम कह चुके हैं कि मनोरजन मात्र काव्य का उत्कर्ष मानने वाले उनकी इस बात का समथन करने म असमथ होग[4]

१—इन्दौर वाला भाषण पृष्ठ ३३।
२—भ्रमरगीत सार पृष्ठ ७०।
३—रस मीमासा पृष्ठ ६, ८१ १०, १०१ और १३६।
४—वही पृष्ठ ३३।

काव्य और अलंकार —

शुक्लजी काव्य म रस को महत्व दते हैं और अलकार को सवस्व कहने वाले चन्द्रालोककार से असहमत होते हैं। वे रूयक और कुन्तक से भी असहमत होते हैं। उनकी मान्यता है जिस प्रकार एक कुरूप स्त्री अलकार लादकर सुन्दर नहीं हो सकती उसी प्रकार वस्तु या तथ्य की रमणीयता के अभाव म अलकारो का ढेर काव्य सजीव स्वरूप खडा नही कर सकता। [1]

इन्होने अश्लीलता का बहिष्कार किया और शृङ्गार के रजन पक्ष दाम्पत्य भाव को साहित्य के लिए उपयुक्त माना। इसी हेतु ये पाश्चात्य विचारक वालो और उपदेशात्मक काव्य को अनुपयुक्त घोषित करते हैं। साथ ही इन्होंने केवल बधी बधाई परिपाटी के अनुकूल विभाव आदि के वर्णन कर देने से रस निष्पत्ति की कामना को अनुपयुक्त माना है। इन्होने ध्वनि और शक्तियो का भी सूक्ष्म विवेचन किया है तथा तात्पर्य वृत्ति को महत्ता प्रदान की है। [2] ये युग के अनुकूल अंग्रेजी साहित्य से भी परिचित थे। उसकी ओर इन्होने जागरूकता का परिचय दिया था।

अंग्रेजी के परिपार्श्व में —

साहित्य की व्याख्या करते हुए शुक्लजी लिखते है कि साहित्य के अन्तर्गत वह सारा वाङ्मय लिया जा सकता है जिसमे अर्थ बोध के अतिरिक्त भावो मेष अथवा चमत्कार पूर्ण अनुरजन हो तथा जिसमे ऐसे विचारात्मक वाङ्मय की समीक्षा या व्याख्या हो [3] इस पर डिक्विन्सी के साहित्य के विभाजन की छाया दिखायी देती है। इसी भांति इन्होने जो काव्य के दो विभाजन किये है आनन्द की साधनावस्था को लेकर चलने वाले काव्य और आनन्द की सिद्धावस्था को लेकर चलने वाले काव्य मूल रूप से डिक्विन्सी से प्रभावित होते हुए डण्टन की पोईट्री एण्ड दी रिनसस ओफ

१—रस मीमांसा पृष्ठ ४२ ४३।
२—वही पृष्ठ ७४, ३०१–३४०।
३—चिन्तामणी द्वितीय भाग पृष्ठ १५६।

का अभाव खटकता रहा था। फिर भी जहां कहीं इन्हें उसमें हृदय को स्पर्श करने की शक्ति दिखाई दी वहीं उसका भी स्वागत किया। [1] इसके मूल में इनकी नैतिकता भी दिखाई देती है। ये ब्रेडले आदि कलावादियों और प्रभाववादियों से असहमत हुये हैं। शुक्लजी ने रस सिद्धांत की मनोवैज्ञानिक व्याख्या की है जिसकी प्रेरणा सम्भवत आई० ए० रिचर्ड्स से मिली होगी। ये प्रारम्भ से ही अंग्रेजी की ओर आकृष्ट हुए थे। इन्होंने कई अंग्रेजी निबन्धों और ग्रन्थों के अनुवाद किये यथा एडीसन के एसे ऑन दी इमेजीनेशन का अनुवाद किया। इसी भांति माईनर हिंट्स का अनुवाद राज्य प्रबन्ध शिक्षा नाम से किया। इन्होंने कई मनोवैज्ञानिक पुस्तकों का अध्ययन किया और स्वयं ने अंग्रेजी में लेखादि भी लिखे। [2] इन्होंने काव्य के भावों की विवेचना करते हुए अंग्रेजी आलोचकों और कवियों के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं [3] इन्होंने भावों का विवेचन करते हुए बीज भाव का उल्लेख किया है। जो मनोवैज्ञानिक मोटिफ के अनुकूल दिखाई देता है [4] इन्होंने भावों का विस्तृत विवेचन कर मनोवैज्ञानिक भावों के रूप में उनकी व्याख्या भी की है। इनका संचारियों का विवेचन खण्ड के अनुकूल बन पड़ा है रस विरोध की चर्चा करते समय इन्होंने शास्त्रीय और मनोवैज्ञानिक प्रकाश डाला है [5] रस और रस परिपाक की व्याख्या करते समय अभिव्यंजनावाद, तात्कालीन प्रवृत्ति मूर्ति मत्तावाद, ममवेदनावाद और नवीन मर्यादावाद का विवेचन किया है। यह विवेचन संक्षेप में किन्तु इतना स्पष्ट बन पड़ा है कि शुक्लजी का इन पर प्रत्यक्ष अधिकार दिखाई देता है।

इन्होंने उपरिकथित पाश्चात्य वादों को निस्सार घोषित किया है। रस मीमांसा को पढ़कर हर व्यक्ति यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि शुक्लजी का अंग्रेजी का ज्ञान स्तुत्य और अधिकार पूर्ण है।

१—रस मीमांसा पृष्ठ ३२७।
२—हिंदुस्तान रिव्यू में लिखा हुआ लेख वाट इण्डिया हेज टू डू।
३—रस मीमांसा पृष्ठ ३७५।
४—वही पृष्ठ ८२ से ८०।
५—वही पृष्ठ २०५ से २१०।

निष्कर्ष —

इन्होने भारतीय परम्परा को अपनाते हुए भी उसका अ धानुकरण नही किया और अ ग्रेजी मान्यताओ का केवल उल्लेख ही नहीं किया अपितु उसकी सांगोपांग व्याख्या भी की। हि दी समीक्षा क्षेत्र मे तो वे अपनी मौलिकता तथा रस ग्राहिता के कारण एक नव युग के जन्मदाता कहे जाते हैं। इनका हिन्दी साहित्य का इतिहास हमारे कथन की पुष्टि करता है।

'हि दी साहित्य के इतिहास लेखक —डा० ग्रियर्सन एव आचाय रामचन्द्र शुक्ल

आचाय रामचन्द्र शुक्ल ने अपने हि दी साहित्य के इतिहास के वक्तव्य म डा० ग्रियर्सन के 'माडन वर्नाक्यूलर लिटरेचर' का कविवृत्त सग्रह नाम से अभिहित किया है।[1] उन्होंने 'मिश्र बन्धु विनोद' को भी ऐसा ही सग्रह बताया किन्तु जहाँ उन्होंने उसके आभार को प्रकट किया।[2] और काल के विभाजन म उससे असहमत होने का उल्लेख भी किया।[3] वहाँ वे डा० ग्रियर्सन की रचना की ओर सकेत मात्र करके ही रह गये हैं। समीप से देखने पर शुक्लजी के इतिहास पर ग्रियर्सन की उक्त रचना की गहरी छाया दिखाई देती है। इसका यह तात्पर्य नहीं कि शुक्लजी ने ग्रियर्सन से ही सामग्री ली अथवा शुक्लजी के इतिहास मे मौलिकता का अभाव है, किन्तु मतव्य केवल यही है कि शुक्लजी के इतिहास पर ग्रियर्सन के इतिहास की छाया अवश्य है निम्नांकित विवेचन इसे स्पष्ट कर देगा।[4]

काल विभाजन म शुक्लजी ने ग्रियर्सन के रीतिकाल नाम को स्वीकार किया है। प्रेम मार्गी शाखा नाम भी ग्रियर्सन के 'रोमैंटिक' शब्द का छायानुवाद प्रतीत होती है। ऐसा ज्ञात होता है कि ग्रियर्सन एव शुक्लजी—दोनो ने ही रोमटिक का शाब्दिक अथ ग्रहण किया है न कि रूढिगत साहित्यिक अथ (साहित्यिक दृष्टि से रोमटिक शब्द स्वच्छदता का द्योतन करता है।)

१—हि दी साहित्य का इतिहास पृष्ठ १।

२—वही पृष्ठ ३।

३—वही पृष्ठ ७।

४—शुक्लजी पर ही नही अन्य आलोचकों पर भी ग्रियर्सन के इतिहास की छाया परिलक्षित होती है।

ग्रियसन ने अपने अध्यायों के अन्त में परिशिष्ट नाम से इस काल के अन्य कवियों, मुख्य अध्याय में उल्लेखित कवियों के अतिरिक्त अन्य कम प्रख्यात कवियों का विवेचन किया है। ग्रियसन के इतिहास के अध्याय २, ३, ४ एवं ८ आदि के परिशिष्ट इस कथन की पुष्टि करते हैं शुक्लजी ने भी कई प्रकरणों के अन्त में फुटकल रचनायें और रीति काल के अन्य कवि आदि में वैसा ही वर्णन प्रस्तुत किया है।[1] कई प्रकरणों के प्रारम्भ में श्री ग्रियसन ने युग की सामान्य प्रवृत्तियों का संक्षिप्त विवरण दिया है, जो शुक्लजी के इतिहास के "सामान्य परिचय" का पूर्व प्रतीत होता है।[2] इतिहास लेखन पद्धति के अतिरिक्त शुक्लजी की कतिपय धारणाओं पर भी ग्रियसन का निम्नांकित प्रभाव भी पाया जाता है।

ग्रियसन ने भक्ति काल में कृष्ण और राम भक्ति सम्बन्धी धाराओं का उल्लेख किया है।[3] 'पद्मावत के रचना काल से हिन्दुस्तान का साहित्य दो धाराओं में जम कर स्थिर हो गया। पहले ने विष्णु के अवतार राम की उपासना पद्धति चलाई और दूसरे ने कृष्ण भक्ति के रूप में साहित्य सर्जन किया।' शुक्लजी ने भी भक्ति काल में राम भक्ति और कृष्ण भक्ति शाखाओं का उल्लेख किया है। यहाँ ऐसा ज्ञात होता है कि ग्रियसन के बीज शुक्लजी के इतिहास में पूर्ण रूप से विकसित रूप धारण कर लेते हैं।

शुक्लजी ने अपने इतिहास में तुलसीदास को अत्यधिक महत्ता प्रदान की है। उनसे पूर्व ग्रियसन तुलसी की महानता स्वीकार कर चुके थे। उनका मत था कि,[4]

"भारतीय लोग इनको (सूर को) कीर्ति के सर्वोच्च गवाक्ष में स्थान देते हैं पर मेरा विश्वास है कि यूरोपीय पाठक आगरे के अन्धे कवि की अत्यधिक माधुरी की अपेक्षा तुलसीदास के उदार चरित्रों को अधिक पसन्द करेगा।[5]" इसी प्रकार से जायसी के बारे में भी ग्रियसन के मत का प्रौढ़ रूप शुक्लजी के इतिहास में दिखाई

१—रामचन्द्र शुक्ल—हिन्दी साहित्य का इतिहास बारहवाँ संस्करण, पृष्ठ १८१, २०४, ५० एवं ५५।

२—वही रीति कालीन विवेचन पृष्ठ ३०० से ३६६।

३—ग्रियसन कृत इतिहास अध्याय ३, ४ एवं ६।

४—हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास—अनुवादक किशोरीलाल गुप्त पृष्ठ ६८।

५—वही पृष्ठ १०७।

देना है। उदाहरणार्थ, शुक्लजी ने पद्मावत का सपादन किया और जायसी का समभन समझाने का प्रयास किया। इसके लिये ग्रियसन के निम्नांकित शब्द प्रेरणा स्रोत कहे जा सकते हैं —

'यह (पदमावत) निश्चय ही अध्यवसाय पूर्ण अध्ययन करने योग्य है क्योंकि साधारण विद्वान् को इसकी एक भी पंक्ति स्पष्ट नहीं हो सकती है, इसके लिये जितना भी परिश्रम किया जाय, इसकी मौलिकता और काव्यगत सौंदर्य दोनों की दृष्टि से वह उचित ही है। १

उपरकथित प्रभावों के अतिरिक्त निम्नांकित परोक्ष एवं निषेधात्मक प्रभाव भी परिलक्षित होता है। यथा ग्रियसन ने रीतिकाल के प्रवर्तन का श्रेय आचार्य केशव को देते हुए कहा है कि,

'इस युग (रीति काव्य युग) के अत्यंत प्रसिद्ध कवि जिनका विवरण पहले नहीं आया है, केशवदास चिंतामणि त्रिपाठी और बिहारीलाल हैं। केशव और चिन्तामणि काव्य शास्त्र लिखने वाले उस कवि सम्प्रदाय के सर्वाधिक महत्वपूर्ण प्रतिनिधि हैं जिसकी स्थापना केशव ने की और जो काव्य लता के शास्त्रीय पक्ष का ही निरंतर विवेचन करता है। २

शुक्लजी का अभिमत है कि,

'रस निरूपण और अलंकार निरूपण का इस प्रकार सूत्रपात हो जाने पर केशवदासजी ने काव्य के अंगों का निरूपण शास्त्रीय पद्धति पर किया। इसमें सन्देह नहीं कि काव्य रीति का सम्यक समावेश पहले पहल आचार्य केशव ने ही किया। पर कवव के उपरान्त तत्काल रीति ग्रन्थों की परम्परा चली नहीं हिंदी रीति ग्रन्थों की अखण्ड परम्परा चिन्तामणि त्रिपाठी से चली अतः रीति काल का आरम्भ उन्हीं से माना जाना चाहिये। ३

१—किशोरीलाल गुप्त-हिन्दी साहित्य का प्रथम इतिहास पृष्ठ ६३।
२—वही पृष्ठ १६३।
३—रामचन्द्र शुक्ल-हिन्दी साहित्य का इतिहास १२ वाँ संस्करण पृ २१५,
वही पृष्ठ २१६।

उपयुक्त कारणों से यह स्पष्ट विदित होता है शुक्लजी जब रेखांकित वाक्य लिख रहे थे तब वे उन विद्वानों की उक्तियों का खण्डन कर रहे थे जिन्होंने केशव को रीति काल का प्रवर्तक माना है। अतएव वे ग्रियर्सन की धारणा का भी खण्डन कर रहे थे, अतः शुक्लजी की इस खण्डन प्रणाली के मूल में ग्रियर्सन की धारणा निषेधात्मक रूप से काम कर रही थी।

निष्कर्ष —

अन्त में निष्पक्षतः कहा जा सकता है कि शुक्लजी के "सामान्य परिचय" पर, फुटकल कवियों के विवेचन पर भक्तिकालीन धाराओं के विभाजन पर और तुलसी और जायसी के प्रवर्तन की व्याख्या पर कुछ सीमा तक काल विभाजन पर और रीतिकाल के प्रवर्तन की व्याख्या पर ग्रियर्सन की स्पष्ट छाया दिखाई देती है। साथ ही यह भी संकेत अप्रासंगिक न होगा कि आधुनिक काल का दिग्दर्शन कई कवियों की विस्तृत और मौलिक आलोचना गद्य विवेचन और ग्रियर्सन की भ्रान्तियों का निराकरण शुक्लजी की मौलिकता को प्रकट करते हैं। यही नहीं ग्रियर्सन का इतिहास तो शुक्लजी के इतिहास के आधे से भी कम है अतएव ग्रियर्सन के इतिहास में शुक्लजी की सी व्याख्या अभाव का स्वतः सिद्ध है। फिर भी ऐतिहासिक आलोचना की दृष्टि से ग्रियर्सन का ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण है एवं उपर्युक्त अंशों में शुक्लजी के इतिहास पर उसका प्रभाव परिलक्षित होता है।

बाबू गुलाब राय —

आचार्य शुक्ल के समान बाबू गुलाब राय भी हिन्दी के महान् स्तम्भ हैं। इनके सिद्धान्त और अध्ययन और अध्ययन और आस्वाद आदि संस्कृत और अंग्रेजी दोनों ही समीक्षा सिद्धान्तों के ज्ञान को प्रदर्शित करते हैं। उदाहरण के लिये सिद्धान्त और अध्ययन में इन्होंने रीति गुण और वृत्ति की व्याख्या शैली के अन्तर्गत की है। इन्होंने भरत दण्डी, वामन कुन्तक और मम्मट आदि सभी आचार्यों के मत उद्धृत किये हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि इन्होंने पाश्चात्य आलोचकों की मान्यताओं का विवेचन कर अपनी धारणायें भी प्रतिपादित की हैं। इन्होंने मम्मट के प्रतिकूल भरत प्रतिपादित दस गुणों को महत्ता दी है। ये स्थान स्थान पर संस्कृत और अंग्रेजी शास्त्र वेत्ताओं के मत उद्धृत करते रहते हैं। ये रस निष्पत्ति में भारतीय सिद्धान्त के

समर्थक रहे हैं। १ अंग्रेजी आलोचना के समान इन्होंने काव्य को ललित कलाओं में अंतर्गत स्थान दिया है। इन्होंने रस की शास्त्रीय दृष्टि से देखते हुए उसकी मनोवैज्ञानिक व्याख्या भी की। २ एडीसन और कोलरिज के समान गुलाब राय ने कल्पना तत्व के सम्बन्ध में कहा है—कल्पना वह शक्ति है जिसके द्वारा हम अप्रत्यक्ष के मानसिक चित्र उपस्थित करते हैं। ३ इस कथन पर एसामियेनिष्ट मनोवैज्ञानिक विचारों का प्रभाव दिखाई देता है। कोलरिज के समान ये काव्य सृजन की शक्ति के रूप में कल्पना को स्वीकार करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि इन्होंने संस्कृत और अंग्रेजी दोनों के ही परिपार्श्व में हिन्दी आलोचना को आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया है।

श्रद्धेय डा० राम शंकरजी शुक्ल "रसाल" —

आधुनिक युग में संस्कृत काव्य शास्त्र के अधिकारी और अंग्रेजी आलोचना सिद्धान्तों के मर्मज्ञ ज्ञाताओं में डा० राम शंकर शुक्ल 'रसाल' का महत्व पूर्ण स्थान है। इन्होंने प्राचीन काव्य शास्त्र रचनाओं—दण्डी, वामन, रुद्रट, रुय्यक, विश्वनाथ और कुंतक प्रभृति विद्वानों की मान्यताओं का विस्तृत विवेचन कर अपनी मौलिक उद्भावनाएँ प्रकट की हैं। यही क्यों आपने हिन्दी के आचार्यों की मान्यताओं का भी स्पष्टीकरण किया और उपलब्ध अलंकारों को नवीन वर्गीकरण प्रदान किया। अलंकार पीयूष पूर्वार्द्ध और उत्तरार्ध में अलंकारों पर व्यापक दृष्टि से विचार किया गया है। अलंकार शास्त्र का इतिहास विश्लेषणात्मक और निर्णयात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। इसमें हिन्दी के विभिन्न युगों की अलंकार विषयक धारणाओं पर मौलिक रूप से विचार किया गया है। अतएव डा० भगवत स्वरूप का निष्कर्ष उपयुक्त ही है कि रसाल जी का अलंकार पीयूष अलंकार निरूपण का सर्वांगिण इतिहास प्रस्तुत करता है। शैली की दृष्टि से यह ग्रन्थ हिन्दी साहित्य को एक नवीन

१—सिद्धान्त और अध्ययन-पृष्ठ ५४ एवं रहस्यवाद और हिन्दी कविता पृष्ठ १।

२—सिद्धान्त और अध्ययन पृष्ठ ३९।

३—सिद्धान्त और अध्ययन पृष्ठ ६७, १३८–१४३।

और अनुपम देन है। [1] इन्होने आधुनिक युग म संस्कृत शास्त्रो के आधार पर अलकारो का विवेचन किया और कहा कि वैज्ञानिक दृष्टि से भी उनकी विवेचना की है।

श्रद्धेय पडित रसालजी ने शास्त्र सम्मत शब्दालकार, अर्थालकार और उभयालकार को स्थान देते हुए अपनी मौलिकता प्रतिभा से मिश्रालकार एक अन्य भिन्न वर्ग का प्रतिपादन किया है। इसम केवल अर्थालकारो को ही स्थान दिया गया है और इनकी मान्यता है कि मिश्रालकार वहाँ होता है जहाँ विभिन्न अर्थालकारो के प्रयोग से एक नूतन प्रभाव की सृष्टि होती है। इन्होने उभयालकार और मिश्रालकार के भेद का वैज्ञानिक विवेचन किया है। [2]

परमादरणीय डा० साहब ने हिन्दी मे सर्व प्रथम मौलिक और पाडित्य पूर्ण रूप से काव्यालकार विषय शास्त्र है या कला ? पर प्रकाश डालते हुए मौलिक और महत्वपूर्ण ढग से यह प्रतिपादित किया कि काव्यालकार का विषय एक प्रकार का शास्त्र है और साथ ही विशिष्ट कला भी। [3] इसी भाँति आपने अन्य शास्त्रों से इसके सम्बन्ध को स्थापित करने का श्लाघ्य प्रयत्न किया है। [4] आपने अलकार शब्द की परिभाषा, व्याकरण और काव्यशास्त्रीय दोनो ही दृष्टियो से दी है। इनकी उत्पत्ति और इनके विकास पर भी स्तुत्य प्रकाश डाला है। [5] इसम आपने हिन्दी आचार्यो का और उनके मतो का विवेचन कर ग्रन्थ को सर्वागीण बनाने का सफल प्रयत्न किया है। [6] गद्य मे अलकारो का स्थान भी आपकी दृष्टि से ओझल नही हो पाया है। इसी भाँति आलोचनादर्श मे आपने आलोचना कला का मार्मिक शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया है। इसमे आलोचना के अर्थ, उसकी वैज्ञानिक व्याख्या और उसके ऐतिहासिक विकास की सम्यक विवेचना की गई है। हिन्दी साहित्य म आलोचना, आलोचना के अग उसके रूप और उसका निरीक्षण भी विवेचन के विषय रहे हैं। वहाँ आपने मौलिक निष्कर्ष प्रदान करते हुए कहा है—इसी के साथ प्रत्येक आलोचक और पाठक

१—डा० भगवत स्वरूप मिश्र-हिन्दी आलोचना उद्भव और विकास पृष्ठ ५६४।
२—अलकार पीयूष (पूर्वार्द्ध) पृष्ठ १६३।
३—वही पृष्ठ २।
४—वही पृष्ठ १५।
५—वही पृष्ठ २०—३०।
६—वही पृष्ठ ३३—४।

को यह भी ध्यान मे रखना चाहिये कि जिस प्रकार उसने अपनी सुरुचि आदि को सुशिक्षित शिष्ट और विकसित बनाया है उसी प्रकार उसमे वह सर्वथा ऐसा प्रभावित न रहे कि केवल उसी के आधार पर वस्तुओ और रचनाओ को देखा दिखाया और समझा समझाया करे, उसी के आधार पर वह निर्णय भी किया करे। [1]

आपने छन्द शास्त्र म छन्द शास्त्र के ऐतिहासिक विकास और उसके नियमो तथा उदाहरणो का विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसमे छन्द सम्बन्धी ज्ञान अपनी पूर्णता पर दिखाई देता है।

निष्कर्ष—

अतएव निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि श्रद्धेय डा० रसाल साहब के सिद्धान्तो म मौलिक प्रतिभा प्रखर पांडित्य और वैज्ञानिक विश्लेषण का प्राचुर्य है। विशेषकर आपकी वैज्ञानिक आलोचना पद्धति के प्रयोग का परिणाम दिखाई देता है। इनके जैसा अलंकारों छन्दों और आलोचना का सूक्ष्म, सफल, उपयोगी तर्क पर आधारित वैज्ञानिक और अधिकार पूर्ण विवेचन अन्यत्र प्राप्त होना दुर्लभ है। आपने इस दिशा म सराहनीय कार्य किया है। इनके अलंकार विवेचना की प्रशंसा करते हुये डा० धीरेन्द्र वर्मा ने कहा है—इट इज ए वरी वैल्युएबल कन्ट्रीब्युशन टू दी सब्जेक्ट ओफ का यालंकार शास्त्र। [2] डा० गङ्गा नाथजी झा ने भी अपने अलंकार विवेचन को योग्यता पूर्ण और मौलिक कहा है। [3] पण्डितवर रसाल जी ने हिन्दी साहित्य का इतिहास, छन्द शास्त्र और हिन्दी शब्द कोष आदि विभिन्न ग्रन्थों से हिन्दी साहित्य को समृद्ध किया है।

डा० लक्ष्मीनारायण सुधांशु—

डा० सुधांशु जी की आलोचना शैली प्रौढ़ और प्रखर है। आप पश्चिम के वादो के हिन्दी के प्रचलन पर क्षोभ प्रकट करते हैं। ये कहते हैं कि पश्चिमी साहित्य

१—आलोचनादर्श पृष्ठ २७३।
२—अलंकार पीयूष-पूर्वार्द्ध पृष्ठ १
३—वही पृष्ठ २

म जा विधाए उत्पन्न होकर म्रियमाण हो जाती हैं वे भारतीय साहित्य म नये युग की पुकार के नाम स सामने आती हैं। पश्चिमी साहित्य म जिस विधा की शव परीक्षा हाने लगती है वह भारत म प्रसव वेदना उत्पन्न करती है। यह एक सत्य है पर मैं इसे मानने के लिय किसी को बाध्य नही कर सकता।[1] इन्होंने सस्कृत के शृ गारिक विवेचन का समथन किया है और उस आधुनिक कविया के अश्लील चित्रण से अच्छा बताया है। वे कहते हैं कि सस्कृत साहित्य म शृ गार है पर कही भी कवि उसम भाग नही लेता है। वह पाठक को दृश्य मात्र दिखाता है और स्वय उस दृश्य म नही रगता है। वह इन नय कवियो म तो रति वासना को ही सब कुछ मानने का आग्रह दिखाई देता है।[2]

इस प्रकार सुधाशु जी पर सस्कृत के ज्ञान का प्रभाव दिखाई देता है। इनकी सस्कृत के कविया क प्रति धवल भावना भी प्रकट हो जाती है। इन्होंने वक्रोक्तिवाद और अभिव्यजनावाद को भी आलोचना का विषय बनाया। वहा क्रोचे की काव्य विषय धारणाआ का स्पष्टीकरण किया गया। यह अग्रेजी भाषा के माध्यम से ही हुआ है। इन्होने क्रोचे के अलकार और अलकार्य के भेद को अनुपयुक्त माना है।[3] मथ्यूआरनल्ड के समान काव्य को जीवन की व्याख्या मानते हैं।

इन्होने भारतीय सिद्धा तो के साथ अग्रजी सिद्धान्तो के समन्वय का प्रयत्न किया है। किन्तु इसकी विशेषता यह है कि जो विचार धारा सस्कृत शास्त्रकारा के अनुकूल नही है उस व हय मानते है। उनके उदाहरणों और दृष्टान्तों द्वारा विषय की दुरूहता दूर हो जाती है। सुधाशु जी के समान पण्डित विश्वनाथ मिश्र भी हिन्दी के प्रमुख समथक हैं।

पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—

पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने अधिकाशत आधुनिक युग और अग्रेजी स दूर ही रहन का प्रयत्न किया है। इन्होने मध्य कालीन कविया पर सुन्दर प्रकाश डाला है। इनकी आलोचना म सस्कृत के नियमो का आधिक्य दिखाई देता है।

१—डा० राम शकर त्रिवारी कृत प्रयोगवादी काव्य धारा की सुधाशुजी लिखित भूमिका पृष्ठ ८

२—वही पृष्ठ १०।

३—काव्य में अभिव्यजनावाद पृष्ठ ८६।

आपने केशव के पचासी तथा लाला भगवान दीन कृत अलंकार मंजूषा आदि ग्रन्थों का सम्पादन किया है। बिहारी की वाग्विभूति इनकी भारतीय आलोचना के आधार पर की गई प्रयोगात्मक आलोचना का उदाहरण है।[1] मिश्रजी ने गीतावली, कवितावली और सुदामा चरित्र इत्यादि की टीकाएँ भी प्रस्तुत की हैं। वाङ्मय विमर्श में इन्होंने भारतीय शास्त्रीय ज्ञान का यथा साध्य सुन्दर उपयोग किया है। अंग्रेजी प्रभाव के कारण जो इन पर समकालीन लेखकों के माध्यम से आया है पुस्तक की भूमिका भी लिखी है। इसी भाँति आलोचना में इतिहास को महत्व देना अंग्रेजी की ऐतिहासिक आलोचना का प्रभाव है। जो युग प्रभाव के रूप में इनके द्वारा अपनाया गया है। इन्होंने भारतीयता का समर्थन किया है और युग प्रभाव के रूप में अंग्रेजी की विशेषताओं को भी ग्रहण किया है।[2] पण्डित विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के समान पण्डित राम कृष्ण शुक्ल शिलीमुख की रचनाओं में भी संस्कृत प्रभाव दिखाई देता है।

पण्डित राम कृष्ण शुक्ल शिलीमुख —

पण्डितजी की आलोचना में प्रयोगात्मक और सैद्धान्तिक आलोचना का समन्वय प्राप्त होता है। वे संस्कृत के सिद्धान्तों को आधार बनाकर आलोचना किया करते थे यथा वे काव्य की सद्य पर निवृत्ति और मध्यो निवृत्ति नामक दो भागों में विभाजन करते हैं।[3] इन्होंने निर्णयात्मक आलोचना प्रदान करते हुये निर्देश किया है। इनकी प्रेमचन्द जी की आलोचना इसका उदाहरण है।[4] काव्य कल्प की आलोचना करते समय इन्होंने पौर्वात्य और पाश्चात्य काव्य शास्त्रीय नियमों के सामञ्जस्य का प्रयत्न किया है।[5] इन्होंने प्रेमचन्द जी की कहानियों पर पाश्चात्य प्रभाव बताने का सफल प्रयास किया है।[6,7] इन्होंने साहित्य शास्त्र निबन्ध में शास्त्रीय दृष्टिकोण के

१—चतुर्थ संस्करण।
२—वाङ्मय विमर्श उपसंहार पृष्ठ १।
३—सरस्वती पत्रिका भाग ३१ संख्या ४, ४ शिलीमुख पृष्ठ ४७।
५—वही पृष्ठ ७६।
६—सुधा वर्ष एक, खण्ड एक, संख्या तीन।
७—सुधा वर्ष तीन, खण्ड एक, संख्या चार।

साथ पाश्चात्य ज्ञान का भी उपयोग किया है। अरस्तु के समान ये नाट्य को अनुकरण मानते हैं और भारतीय दृष्टि से उसके वस्तु नेता और रस नामक तत्व भी स्वीकार करते हैं।[१] प्रसादजी के बारे में प्रमादात्त शब्द भी इनकी ही देन है।

अतएव निष्कपत कहा जा सकता है कि इनमे सस्कृत आलोचको के समान निर्णय देने की प्रवृति है। उन्होने सस्कृत के शास्त्रीय तत्वों को आदर के साथ अपनाया है और पाश्चात्य ज्ञान का भी समुचित उपयोग किया है। ये अंग्रेजी और अन्य भाषाओं के ज्ञान के उपयोग के विरोधी नहीं थे। किन्तु उसके भारतीयकरण को वाछनीय समझते थे। जैसे प्रेमचन्द जी उसका (स्टरनल सीटी का) आधार लेकर भी देश कालीन सस्कृतियो के अनुसार उन्हें नहीं ढाल सके और उनकी कृति (विश्वास कहानी) कई अंशो में दोष पूर्ण रही है।[२] हिंदी के शास्त्रीय समीक्षको में डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा का नाम उल्लेखनीय है।

डाक्टर जगन्नाथ प्रसाद शर्मा —

डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ने प्रसाद के नाटको का शास्त्रीय अध्ययन शास्त्रीय समीक्षा पद्धति के अनुकूल प्रस्तुत किया है। साथ ही आपने अंग्रेजी के नाट्य तत्वो और खोज पूर्ण तथ्यो से भी हमारे ज्ञान की श्रीवृद्धि की है। कई नाटको का भारतीय दृष्टि से और अंग्रेजी दृष्टि से विवेचन हमारे कथन की पुष्टि करता है। अतएव आप एक सफल आलोचक हैं जो अंग्रेजी ज्ञान का उपयोग हमारे साहित्य की श्रीवृद्धि के लिये करते हैं। इसी भाँति पदमलाल पुन्नालाल बक्शी भी हिंदी के प्रबल समर्थक रहे हैं।

पदमलाल पुन्नालाल बक्शी —

विश्व साहित्य में इन्होने अंग्रेजी ज्ञान का समुचित प्रयोग किया है। इन्होंने आलोचना में अधिकाशत मधुप वृति का परिचय दिया है। सरस्वती के सम्पादन से आपने साहित्य की श्री वृद्धि की है। ये भारतीय सिद्धान्तों को आधार मानकर पाश्चात्य विचारों को ग्रहण करते हैं। प्रबन्ध पारिजात, हिंदी कथा साहित्य, कुछ

१—प्रसाद की नाट्य कला निवेदन और पृष्ठ ५, १५, २७, ।
२—शिलीमुखी पृष्ठ ६१ ।

और युग, प्रदीप और साहित्य निन्दा प्रभृति उदाहरण स्वरूप रखे जा सकते हैं। आधुनिक युग में संस्कृत और अंग्रेजी काव्य शास्त्र के सम्यक ज्ञान रखने वाला में डा० सरनाम सिंह जी शर्मा का स्थान बहुत ऊँचा है।

डा० सरनाम सिंह जी शर्मा —

आधुनिक युग में संस्कृत काव्य शास्त्र और अंग्रेजी आलोचना सिद्धान्तों का सम्यक ज्ञान डा० सरनाम सिंह जी शर्मा विरचित समीक्षा ग्रन्थों से प्राप्त हो सकता है। आपने अपने शोध प्रबन्ध में हिन्दी पर संस्कृत के प्रभाव को आंकने का सफल प्रयास किया है। आपका महात्मा कबीर आलोचना शैली का सुन्दर ग्रन्थ है। इसमें आपने कबीर की दार्शनिकता को सरल और स्तुत्य स्वरूप में प्रस्तुत किया है। उक्त पुस्तक में विश्लेषणात्मक मनोविश्लेषणात्मक तुलनात्मक ऐतिहासिक और साथ ही निर्णयात्मक शैलियों का श्लाघनीय समन्वय किया गया है। आपकी प्रतिभा चतुरमुखी है। एक ओर आपने पालीभाषा पर लेखनी चलाई तो दूसरी ओर राजस्थान के साहित्यकारों पर भी प्रकाश डाला है। आपने हिन्दी साहित्य को विभिन्न आलोचनात्मक ग्रन्थ प्रदान किये हैं। इनके नाटकों की भूमिकाओं से नाटकों की विधाओं पर सुन्दर प्रकाश डाला गया है। अपने आलोचना ग्रन्थों में इन्होंने भारतीय आधार पर अंग्रेजी के आलोचना सिद्धान्तों का परीक्षण कर देशकालानुसार उचित और सम्यक पाश्चात्य सिद्धान्तों को स्वीकार किया है। आपके ग्रन्थों में पौर्वात्य पद्धति के अपनाने का पूर्वाग्रह है और न अंग्रेजी शैली के निर्वाह का दुराग्रह ही। आप तो सच्चे आलोचक की नीरक्षीर प्रतिभा से सम्पन्न तटस्थ समीक्षक हैं। यह तथ्य और भी उल्लेखनीय है कि इन्होंने आलोचना के साथ सरस साहित्य नाटक एकांकी, कहानी, कविता, उपन्यास और गद्य गीतों द्वारा साहित्य की श्री वृद्धि की है। अतएव इन्हें आलोचना करने का अधिकार भी है। क्योंकि आप भारतीय दृष्टि से पंडित होने के नाते रस को पहिचानने के अधिकारी हैं और अंग्रेजी आलोचक ड्रायडन के अनुसार सरस साहित्य स्रष्टा होने के नाते प्रतिभावान भावक और समीक्षक बनने के योग्य हैं।

डा० नगेन्द्र —

डा० नगेन्द्र के बारे में सब विदित ही है कि वे रस सिद्धान्त के पोषक हैं।[1] और मनोविज्ञान के प्रकाण्ड पंडित। आपने रस सिद्धान्त का समर्थन मनोवैज्ञानिक

---

१ — पदमसिंह कमलेश, मैं इनसे मिला — डा० नगेन्द्र पृष्ठ १५०।

दृष्टि से किया है—किसी रूढ़ी या अंत विश्वास के आधार पर नहीं। अतएव यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि आपने काव्य शास्त्र को एक दृढ़ भित्ती प्रदान की है। इनका कथन है कि विदेश के काव्यशास्त्र मनोविज्ञान और मनोविश्लेषण शास्त्र के अध्ययन और ग्रहण में मेरी दृष्टि को और भी स्थित कर दिया है। मैं काव्य में रस सिद्धांत को ही अंतिम मानता हूं इसके बाहर न काव्य की गमी है और न सार्थकता।[1] य रस सिद्धांत की ओर शुक्लजी के प्रभाव के कारण मुडे और भटनायक तथा अभिनव गुप्त ने इन्हें प्रभावित किया। इस प्रकार विदित हो जाता है कि ये संस्कृत काव्यशास्त्र को महत्ता देते हैं और अंग्रेजी की मनोविश्लेषण वादी प्रवृति को भी अपनाते हैं।

इन्होने जहां अंग्रेजी ग्रन्थों के अनुवाद किये वहां संस्कृत ग्रन्थों और शास्त्रों का भी आपने कुशल सम्पादन किया। इन ग्रन्थों को हिंदी अनुसंधान परिषद द्वारा प्रकाशित भी करवाया। हिन्दी काव्यालंकार सूत्र हिन्दी वक्रोक्ति जीवित, अग्निपुराण का काव्यशास्त्रीय अध्ययन आदि उदाहरण स्वरूप पढे जा सकते हैं। इनके विचार और अनुभूति विचार और विवेचन और विचार और विश्लेषण नामक समीक्षा ग्रन्थों में सैद्धांतिक और प्रयोगात्मक आलोचना का सुंदर समन्वय हुआ है।

इनकी मान्यता है कि भारत तथा पश्चिम की दर्शनों की तरह ही यहाँ के काव्यशास्त्र भी एक दूसरे के पूरक हैं।[2] रीतिकाव्य की भूमिका में आपने सात रसों को स्थायी भावों से सम्बन्धित किया है। इन्होने वीर के अन्तर्गत आत्म प्रतिष्ठा, परिग्रह निर्माण को तथा करुण रस के आधीन आत्म प्रार्थना और सामाजिकता के सम्बन्धित माना है। इस प्रकार इन्होंने रसों को मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। साहित्य की प्रेरणा में इन्होने अरस्तु हीगेल और क्रोचे के मतों को उद्धृत किया है। अन्यत्र इन्होने अपनी मान्यता प्रकट की है कि विचार के क्षेत्र में भौतिक बौद्धिक मूल्यों की अधिक विश्वसनीय तथा रोचक ढंग से स्थापना की गई और जीवन तथा साहित्य के पुनर्मूल्यांकन में सहायता मिली। इस प्रकार फ्राइड की प्रगति की परम्परा को भी आगे बढ़ाया साहित्यकार के व्यक्तित्व तथा साहित्य की

१—पद्म सिंह कमलेश, मैं इनसे मिला—डा० नगेन्द्र पृष्ठ १५१
२—हिन्दी काव्यालंकार सूत्र वक्तव्य।

प्रवृत्तियो के विश्लेषण तथा व्याख्या के लिये नया मार्ग खुल गया। इन्होने फ्रायड के समान सौन्दर्य प्रेम को कामवृत्ति से सम्बन्धित बताया है। इस प्रकार मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ये काव्य का परीक्षण करने वाले प्रमुख आचार्य हैं। इन्होंने सामूहिक भाव को काव्य की मूल प्रेरणा मानने का निरूपण किया है। ये शब्दो और सिद्धातो की शास्त्रीय दृष्टि से भी व्याख्या करते हैं। अनुसधान शास्त्र और उसके सिद्धातो के विवेचन हमारे कथन की पुष्टि करते हैं।[२] साधारणीकरण को भी ये मनोवैज्ञानिक दृष्टि से देखने का प्रयत्न करते हैं। ये कहते है कि साधारणीकरण अपनी अनुभूति का होता है अर्थात् जब कोई व्यक्ति अपनी अनुभूति की इस प्रकार अभिव्यक्ति कर सकता है कि वह सभी के हृदय मे सहानुभूति जगा सके तो पारिभाषिक शब्दो मे हम कह सकते हैं कि उसमे साधारणीकरण की शक्ति विद्यमान है। इन्होने टी० एस० इलियट, आई० ए० रिचेड्स डा० से सबरी और अन्य पाश्चात्य विचारकों और विवेचको के बारे मे भी अपने मत प्रस्तुत किये हैं। वक्रोक्ति का ये जीवित मे लोसायी क्रटिकी की, प्रिसपल ओफ लिटररी क्रिटिसिजम और अन्य कई मनोवैज्ञानिको के मतो को उद्धृत किया है।[३] इन्होने वक्रोक्ति काव्य जीवित और हिन्दी अलकार सूत्र मे भारतीय काव्यशास्त्र और अंग्रेजी काव्यशास्त्र का प्रौढ ज्ञान प्रस्तुत किया है।[४]

इनका अलकारो का विवेचन भारतीय और पाश्चात्य दोनो ही दृष्टियो से अवलोकनीय है। इन्होंने सस्कृत काव्यशास्त्रकारो के समान वक्रोक्ति और अतिशयोक्ति को अलकारों के मूल मे माना है किन्तु इस निश्चय का कारण आधुनिक मनोविज्ञान है। ये कहते हैं सस्कृत मे मूलत अनेक अलकारो का स्वरूप ही सर्वथा अस्पष्ट है। पाश्चात्य आचार्यों ने कल्पना को भी अलकारो का आधार माना है। प्रस्तुत कल्पना के आश्रित तो सभी अलकार हैं ही। इन्होने अलकारो के मनोवैज्ञानिक

१—प्रसारिका वर्ष १ अक ३ पृष्ठ ११।
२—अनुसधान की प्रक्रिया पृष्ठ ४५।
३—हिन्दी वक्रोक्ति जीवित पृष्ठ ३० से ४७।
४—हिन्दी वक्रोक्ति जीवित और हिन्दी काव्यालकार सूत्र भूमिका।

आधार ढूढने का प्रयास किया है।[1] शैली के विवेचन मे भी इन्होंने समन्वय स्थापित कर अपनी मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। इन्होने उसे संस्कृत शास्त्र काव्य की दृष्टि से कसौटी पर कस कर मनोवैज्ञानिक आधार दिया है।[2] इनका कथन है कि रीति की परिभाषा विशिष्ट पद रचना रीति सर्वमान्य रही है और यह वामन के अनुकूल है। इसे अन्य आलोचकों ने भी स्वीकार किया है।[3]

इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि जिस प्रकार से आई० ए० रिचर्डस अंग्रेजी में समर्थ आलोचक हैं वैसे ही हिन्दी मे डा० नगेन्द्र हैं। इन्होने रस, अलंकार, गुण, दोष और विवेचन आदि मनोवैज्ञानिक तत्वों का समन्वय किया है। इन्होने छायावाद की भी मनोवैज्ञानिक व्याख्या प्रस्तुत की है।[4] पन्तजी और प्रगतिवाद की आलोचनाएँ करते समय भी इन्होंने अपनी मौलिक स्थापनाएँ प्रस्तुत की हैं। इनकी विशेषता यह रही है कि दुरूह और क्लिष्ट विषय की भी ये स्पष्ट तर्कसंगत और बुद्धिग्राह्य आलोचना करने मे सफल होते हैं।[5] काव्यशास्त्रीय तत्वों और पाश्चात्य समीक्षा सिद्धांतों का इनमे सम्मिलन दिखायी पडता है और फलतः इनके विवेचन मे मौलिक और सन्तुलित दृष्टि का विकास हुआ है। इनके समान हिन्दी साहित्य की सुवृद्धि करने वाले मौलिक विवेचक हैं आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी।

आचार्य नन्द दुलारे वाजपेयी —

वाजपेयी स्वतन्त्रतावादी आलोचना शैली के प्रबल समर्थक और हिन्दी साहित्य के महान स्तम्भ हैं। ये आलोचक को तटस्थ रूप मे देखने के इच्छुक हैं और साहित्यिक दलबन्दी विरोधी हैं। हिन्दी साहित्य २० वीं शताब्दी की विवेचना करते हुए इन्होने विभिन्न साहित्यिक परम्पराओं और वादों का मौलिक विवेचन किया है। पाश्चात्य विचारक भी इनकी दृष्टि से ओझल नहीं हो पाये हैं। ये कहते हैं मेरा आगमन हिन्दी के छायावादी कवियों के विवेचक के रूप में हुआ।[6] ये अंग्रेजी लेखकों के मत भी

१—रीति काव्य की भूमिका पृष्ठ ६३, ६४।
२—भारतीय काव्यशास्त्र भूमिका पृष्ठ ५० ४०।
३—आधुनिक हिन्दी मराठी में काव्यशास्त्रीय अध्ययन पृष्ठ ४२६।
४—विचार और अनुभूति पृष्ठ ५४, ५५।
५—विचार और विवेचन पृष्ठ २०।
६—नया साहित्य नये प्रश्न निष्कर्ष पृष्ठ २।

के कम आलोचकों ने अपनी प्रतिभा का इतना साहसपूर्ण परिचय दिया है। इनके ही समान डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी साहित्य को अपने ग्रन्थों द्वारा गौरवान्वित किया है।

डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी —

सांस्कृतिक आधार को द्विवेदी जी पूरा महत्व देते हैं। इन्होंने सांस्कृतिक आधार का सूक्ष्म ऐतिहासिक और वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। इनकी मान्यता है कि भारतीय भक्ति आंदोलन इस्लाम की प्रतिक्रिया न होकर हमारे वाङ्मय का स्वाभाविक स्वरूप है। सन्त साहित्य पर द्विवेदी जी की मान्यतायें आप्त वाक्य मानी जाती हैं। नाथ सम्प्रदाय हमारे कथन की पुष्टि करता है। इन्होंने अंग्रेजी ग्रन्थों से भी उचित सामग्री ग्रहण की है। अशोक के फूल एवं विचार और वितरक में सांस्कृतिक आधार स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। जीवन और साहित्य का ये निकट सम्बन्ध मानते हैं। इन्होंने साहित्य के उत्कर्ष और अपकर्ष का मानदण्ड मानव हित साधन माना है।[१]

रस क्या है की चर्चा करते समय आपने शास्त्रीय विवेचन को स्थान दिया है। इसमें भारतीय शास्त्र वेत्ता के मतों को उद्धृत किया गया है। विवेचन करते समय ऐतिहासिक दृष्टि को महत्व दिया गया है। वे इतना व्यापक दृष्टिकोण रखते हैं कि किसी भी वाद की रचना को हेय नहीं मानते। अश्लीलता इन्हें अवश्य ही अखरती है।

निष्कर्ष —

इस प्रकार निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी ने संस्कृत ग्रन्थों का सम्यक आधार ग्रहण कर अंग्रेजी आलोचना की व्याख्यात्मक और वैज्ञानिक शैली को अपना कर हिन्दी साहित्य को अपनी आलोचनात्मक कृतियों से सुशोभित किया है। एक तथ्य अवश्य उल्लेखनीय है कि इन्होंने प्राचीन और

१—अशोक के फूल—साहित्यकार का दायित्व और मनुष्य।

मध्यकालीन सामग्री को शोध का विषय बनाकर हिन्दी साहित्य की एक बहुत बड़ी क्षति की पूर्ति की है। इनके ही समान डा० राम विलास शर्मा ने भी हिन्दी साहित्य को एक नवीन दृष्टिकोण प्रदान किया है।

अन्य आलोचक —

डा० राम विलास शर्मा ने स्वस्थ्य मार्क्सवादी दृष्टिकोण को अपनाया है। इन्होंने सर्व प्रथम निराला के क्रांतिकारी स्वरूप को पाठकों के सम्मुख रखा। [1] इससे ज्ञात होता है कि ये अंग्रेजी आलोचना और नवीन समीक्षा सिद्धान्तों के प्रति जागरूक रहे हैं। ऐसे ही अन्य आलोचक हैं श्री प्रकाशचन्द्र गुप्त।

प्रकाश चन्द्र गुप्त मार्क्सवादी आलोचकों में प्रमुख स्थान रखते हैं। इन्होंने नया हिन्दी साहित्य और आधुनिक हिन्दी साहित्य में सद्धांतिक और व्यावहारिक *आलोचना को अपनाया है। इन्होंने भारतीय पृष्ठभूमि और अंग्रेजी आलोचना की* वैज्ञानिक पद्धति को अपनाने का आग्रह किया है।

मार्क्सवाद का प्रभाव इन पर इतना गहरा है कि ये तुलसीदास सूर दास और कबीर दास को भी मार्क्सवादी दृष्टिकोण से परखते हैं। यह आलोचना पर एप्रेट्रोयरी थ्योरी का प्रभाव है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य को डा० राकेश गुप्त ने मनोवैज्ञानिक दृष्टि प्रदान की है। इन्होंने रसों का मनोवैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत किया है। [2] रसों को समझने के लिये ये मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का उल्लेख करते हैं। यथा इनका कथन है कि सम्वेग की तीन प्रमुख दशाएँ हैं—प्रत्यक्ष कारण मानसिक दशा और शारीरिक *प्रतिक्रिया।* [3] *तत्पश्चात ये कहते हैं कि रस की भी ये ही तीन दशायें हैं जिन्हें आप* विभाव, भाव और अनुभाव मानते हैं। इनके साथ मन की प्रवृति भी रस निष्पत्ति के लिये आवश्यक है। इनका *निष्कर्ष है कि भावना को जाग्रत करने में वाह्य* परिस्थितियों के साथ आंतरिक भावनाओं की स्थिति आवश्यक है। [4] स्थायीभावों के

१—आलोचना–प्रथम अंक पृष्ठ १७।
२—साईकलोजिकल स्टडीज इन रसाज।
३—*वही पृष्ठ १९८–२००।*
४—वही पृष्ठ १५०।

मे समवेग मानते हैं। इनका निष्कर्ष है कि रस शास्त्र मनोवैज्ञानिक आधार पर स्थित है। वास्तव मे निष्पत्ति का मनोवैज्ञानिक स्थिति-प्रत्यक्ष कारण, मानसिक दशा और शारीरिक प्रतिक्रिया से साम जस्य स्थापित करना स्तुत्य है। इससे एक ओर जहाँ रस सिद्धान्त की मनोवैज्ञानिकता प्रकट होती है वहा दूसरी ओर आज के काव्य शास्त्रीय विकास में सस्कृत और अ ग्रेजी आधार और प्रभाव का प्रत्यक्षीकरण हो जाता है। यह स्पष्ट हो जाता है कि आज का आलोचक सस्कृत की आधार भूमि को अ ग्रेजी काव्य शास्त्र के परिपार्श्व म रखकर परखना है और वे सिद्धात हिन्दी मे स्थायित्व ग्रहण कर लेते हैं जो दोनों में ही उभयनिष्ठ होते हैं।

डा० एस० पी० खत्री के आलोचना इतिहास तथा सिद्धात पर अ ग्रेजी आलोचना का प्रत्यक्ष प्रभाव दिखाई देता है। वे इस प्रकार से लिखते हैं मानो अ ग्रेजी की चर्चा अंग्रेजों के सामने की जा रही है।[1] इनके भावों और विचारो पर भी अ ग्रेजी प्रभाव दिखाई देता है।[2] इन्होने कई परिभाषाएँ अ ग्रेजी से अपना ली हैं। इनकी कला का विवेचन इसका उदाहरण है।[3] मनोवैज्ञानिक शब्दावली और उदाहरणों का भी ये मुक्तहस्त प्रयोग करते हैं।[4] साथ ही इन्होंने अपनी मौलिक मान्यताएँ भी प्रतिपादित की हैं। आलोचना कैसे की जाय यह इन्होंने अपने ढग से बताया है।[5]

डा० राम कुमार वर्मा ने अपने इतिहास ग्रन्थ, साहित्य समालोचना, कबीर का रहस्यवाद साहित्य शास्त्र विचार दर्शन एव एकाकी कला आदि पुस्तकों द्वारा हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की है। इन्होने भारतीयता का समन्वय करते हुए अ ग्रेजी विधाओ को अपनाया है। नाटको की भूमिकायें इनके इस मत को स्पष्ट कर देती हैं। अ ग्रेजी आलोचकों के समान इन्होने अन्तर द्वन्द्व को नाटकों का प्राण माना है।

डा० गोविन्द त्रिगुणायत ने भी सस्कृत और अ ग्रेजी दोनों ही विधाओं को अपनाने का प्रयत्न किया है। इन्होने शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धात दो भागों में भारतीय आचार्यो और अ ग्रेजी, युनानी और इटालवी आचार्यो के भी मत प्रस्तुत

१—आलोचना इतिहास तथा सिद्धान्त पृष्ठ ३६६।
२—वही पृष्ठ १५, ७५।
३—आलोचना, इतिहास तथा सिद्धान्त—पृष्ठ ३७०।
४—वही पृष्ठ २७६ २८०।
५—वही पृष्ठ २८४, २८५।

किये हैं। वे कहते हैं यहाँ पर हम संस्कृत हिन्दी और अंग्रेजी के प्रसिद्ध आचार्यों द्वारा दी गई साहित्य की परिभाषाओं का ही उल्लेख करेंगे।[1] इन्होंने यथा सम्भव अपने निर्णय देने का भी प्रयत्न किया है। हिन्दी की निर्गुण धारा और उसकी दार्शनिक पृष्ठ भूमि में तत्कालीन परिस्थितियों का ऐतिहासिक और दार्शनिक दृष्टि से सांगोपांग विवेचन किया गया है। व्यक्तित्व के समान क्रांति प्रिय द्विवेदी की आलोचना भी विकासमान है। अंग्रेज निबन्धकारों के समान इनके निबन्धों में आत्माभिव्यक्ति और वैयक्तिकता प्राप्त होती है। साहित्यिकी में इन्होंने विश्व प्रेम प्रतिपादन किया। ये छायावाद से प्रगतिवाद की ओर बढ़ रहे हैं। सामयिकी में आन्तरिक भावनाओं का प्रस्फुटीकरण हुआ है। ये कला की सार्थकता केवल सुन्दरता में ही नहीं, मंगलमय होने में देखते हैं। ये रसात्मकता को भी महत्व देते हैं। युग और साहित्य, कवि और काव्य संचारिणी में इनकी प्रयोगात्मक और सैद्धांतिक आलोचना के समग्र स्वरूप का दिग्दर्शन होता है। इनकी शैली पर अंग्रेजी का स्पष्ट प्रभाव है। रिमार्क थीम फिलोसोफी और मेटर ओफ फैक्ट आदि शब्दों का ये मुक्त हस्त प्रयोग करते हैं।

श्री शिवदान सिंह चौहान ने तर्क बल और मार्क्सवादी आलोचना के आधार पर अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। संस्कृत शास्त्रकारों के समान इन्होंने वृत्तियों और प्रवृत्तियों का विवेचन किया है। ये ऐसे वर्गीकरण को हेय मानते हैं जिसका कोई मौलिक आधार न हो। इन्होंने अंग्रेजी शब्दों को बहुत प्रयोग में लिया है। नई आलोचना का विरोध करते समय इन्होंने विभिन्न अंग्रेजी के आलोचकों का खण्डन किया है।[2] आलोचना के सिद्धान्त में इनके आलोचकों के विवेचन मॉडर्न क्राफ्ट लिटरेचर पर आधारित प्रतीत होते हैं। इन्होंने छायावाद की व्याख्या की है। इन्होंने आलोचना के विभिन्न भेदों को निर्णयात्मक, व्याख्यात्मक, ऐतिहासिक मनोवैज्ञानिक प्रभावात्मक और तुलनात्मक भेदों को निस्सार शब्दाडम्बर माना है।[3] नई आलोचना के विषय में ये कहते हैं कि उसे शीशे की पेटी में बन्द करके रखना अनुपयुक्त है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इन्होंने कई अंग्रेज लेखकों का विरोध किया है जिसका आधार इनका राजनीतिक दृष्टिकोण है।

१—शास्त्रीय समीक्षा के सिद्धान्त भाग एक पृष्ठ १।
२—आलोचना के सिद्धान्त पृष्ठ १० —१६१।
३—वही पृष्ठ १७० १७३।

पंचम् प्रकरण

उपसंहार

अन्त में कहा जा सकता है कि संस्कृत का यह शास्त्र अत्यन्त समृद्ध और सम्पन्न था। भरत मुनि राजशेखर, धनंजय उद्भट्ट, रुय्यक, वामन कुन्तक और आनन्दवर्धनाचार्य तथा पण्डितराज जगन्नाथराज ने इसे प्रौढ़ता एवं पूर्णता प्रदान की। कालान्तर में जब यह धारा क्षीण हो गई तब लोक भाषाओं और देशज विभाषाओं ने देश कालानुसार अपने लक्षण ग्रन्थों के निर्माण के प्रयास किये। इनमें अपभ्रंश शैली के अनुकूल यत्र तत्र शास्त्रीय तत्त्वों में पाये जाने के लक्षण भी दिखाई देते हैं। इनमें धार्मिक भावनाओं को भी अभिव्यक्त किया जाता था। देशी भाषाओं में नखशिखादि वर्णन भी मिलने लगे। लक्ष्य ग्रन्थों में लक्षण ग्रन्थों के अनुकूल उक्तियां प्राप्त होने लगी। विद्यापति की पदावली, रासो ग्रन्थ और अमीर खुसरो का काव्य इसके प्रमाण हैं। डिंगल में भी वयण सगाई प्राप्त होने लगी। अतएव कहा जा सकता है कि साहित्यिक परम्परा रीति काल की ओर बढ़ रही थी। फिर भी यह मानना होगा कि आदि काल में काव्य शास्त्रीय तत्त्व तो प्राप्त होते हैं किन्तु पूर्ण लक्षण ग्रन्थों का अभाव खटकता ही रहता है।

भक्ति काल के उदय के बारे में विद्वानों में मत भेद है। शुक्लजी ने इसे पराजित जाति का भगवान की ओर उन्मुख होने की प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति कहा है और डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे साहित्यिक परम्परा का स्वाभाविक विकास घोषित किया है। हमारी दृष्टि से सत्य यह है कि भक्ति कालीन कवियों में रस, अलंकार, सौन्दर्य और शृंगारादि का वर्णन प्राचुर्य प्राप्त होता है। रस की दृष्टि से नवीन उद्भावनायें भी की गई। जायसी ने शास्त्रानुकूल सहृदय सामाजिक की आकांक्षा प्रकट की। पद्मावत में लक्षण ग्रन्थों के अनुकूल वर्णन प्राप्त होते हैं। कबीरदासजी के काव्य में शास्त्रोक्त वक्रता का स्थान दिया गया। तुलसीदासजी ने

किये हैं। व कहते हैं यहाँ पर हम सस्कृत हिन्दी और अ ग्रेजी क प्रसिद्ध
आचार्यो द्वारा दी गई साहित्य की परिभाषाओ का ही उल्लख करग। [1] इन्होने
यथा सम्भव अपने निणय देने का भी प्रयत्न किया है। हिन्दी की निगु ण धारा और
उसकी दाशनिक पृष्ठ भूमि म तत्कालीन परिस्थितियो का ऐतिहासिक और दाशनिक
दृष्टि स सागो पाग विवेचन किया गया है। व्यक्तित्व के समान ज्ञान्ति प्रिय द्विवेदी की
आलोचना भी विकासमान है। अ ग्रज निबन्ध लखको क समान इनके निबन्धो म
आत्माभिव्यक्ति और वयक्तिकता प्राप्त हाती है। साहित्यकार म इन्होने विश्व प्रम
प्रतिपादन किया। ये छायावाद से प्रगतिवाद की ओर बढ रहे हैं। सामयिकी म
आन्तरिक भावनाओ का प्रकटीकरण हुआ है। य कला की साथकता केवल सुन्दरता
म ही नही, मगलमय होने म देखते हैं। ये रसात्मकता को भी महत्त्व देते है। युग
और साहित्य कवि और काव्य, सचारिणी म इनकी प्रयोगात्मक और सद्धान्तिक
आलोचना के समष्टी स्वरूप का दिग्दशन हाता है। इनकी शली पर अ ग्रे जी का स्पष्ट
प्रभाव है। रिमाक थीम फिनोसोफी और मेटर ओफ फक्ट आदि शब्दों का ये मुक्त
हस्त प्रयोग करते हैं।

1 श्री शिवदान सिंह चौहान ने तक बल और माक्सवादी आलोचना के आधार
पर अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। सस्कृत शास्त्रकारो क समान इन्होने वृत्तियों
और प्रवृतियो का विवेचन किया है। य ऐस वर्गीकरण को हेय मानते हैं जिसका
कोई मौलिक आधार न हो। इन्होने अ ग्रेजी शब्दो को बहुत प्रयोग म लिया है।
नई आलोचना का विरोध करते समय इन्होन विभिन्न अ ग्रेजी के आलाचको का
खण्डन किया है। [2] आलोचना के सिद्धात म इनके आलोचको क विवचन मरिग
आफ लिटेचर पर आधारित प्रतीत हाते हैं। इन्होने छायावाद की व्याख्या की है।
इन्होने आलोचना के विभिन भेदो को निणयात्मक, व्याख्यात्मक ऐतिहासिक
मनोवज्ञानिक प्रभावात्मक और तुलनात्मक भेदो को निस्सार शब्दाडम्बर माना
है। [3] नई आलोचना के विषय म ये कहत हैं कि उस शीशे की पेटी म बन्द करके
रखना अनुपयुक्त है। इस प्रकार हम देखत हैं कि इन्हान कई अ ग्रज लखको का
विरोध किया है जिसका आधार इनका राजनीतिक दृष्टिकोण है।

१—शास्त्रीय समीक्षा क सिद्धात भाग एक पृष्ठ १।
२—आलोचना क सिद्धात पृष्ठ १० —१६१।
३—वही पृष्ठ १७० १७३।

पंचम् प्रकरण

उपसंहार

अन्त मे कहा जा सकता है कि संस्कृत का यह शास्त्र अत्यन्त समृद्ध और सम्पन्न था। भरत मुनि, राजशेखर, धनंजय उद्भट्ट, रुय्यक, वामन कुन्तक और आनन्दवर्धनाचार्य तथा पण्डितराज जगन्नाथराज ने इस प्रौढ़ता एवं पूर्णता प्रदान की। कालान्तर में जब वह धारा क्षीण हो गई तब लोक भाषाओं और देशज विभाषाओं ने देश कालानुसार अपने लक्षण ग्रन्थों के निर्माण के प्रयास किये। इनमें अपभ्रंश शैली के अनुकूल यत्र तत्र शास्त्रीय तत्वों से पर जाने के लक्षण भी दिखाई देते हैं। इनमें धार्मिक भावनाओं को भी अभिव्यक्त किया जाता था। देशी-भाषाओं में नखशिखादि वर्णन भी मिलने लगे। लक्ष्य ग्रंथों में लक्षण ग्रन्थों के अनुकूल उक्तियां प्राप्त होने लगी। विद्यापति की पदावली, रासो ग्रंथ और, अमीर खुसरो का काव्य इसके प्रमाण हैं। डिंगल में भी वयण सगाई प्राप्त होने लगी। अतएव कहा जा सकता है कि साहित्यिक परम्परा रीति काल की ओर बढ़ रही थी। फिर भी यह मानना होगा कि आदि काल में काव्य शास्त्रीय तत्व तो प्राप्त होते हैं किन्तु पूर्ण लक्षण ग्रन्थों का अभाव खटकता ही रहता है।

भक्ति काल के उदय के बारे में विद्वानों में मत भेद है। शुक्लजी ने इसे पराजित जाति का भगवान की ओर उन्मुख होने की प्रवृति की अभिव्यक्ति कहा है और डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसे साहित्यिक परम्परा का स्वाभाविक विकास घोषित किया है। हमारी दृष्टि से सत्य यह है कि भक्ति कालीन कवियों में रस, अलंकार, सौन्दर्य और श्रृंगारादि का वर्णन प्राचुर्य प्राप्त होता है। रस की दृष्टि से नवीन उद्भावनायें भी की गई। जायसी ने शास्त्रानुकूल सहृदय सामाजिक की आकांक्षा प्रकट की। पद्मावत में लक्षण ग्रन्थों के अनुकूल वर्णन प्राप्त होते हैं। कबीरदासजी के काव्य में शास्त्रोक्त वक्रता को स्थान दिया गया। तुलसीदासजी ने

सांग रूपक प्रयोग, शास्त्रोक्त रस अलकार और शृगारादि वर्णन म शास्त्रीय पद्धति का निर्वाह किया है। उनकी सहृदय सामाजिक की आकाक्षा काव्य शास्त्रकारो के अनुकूल है। इनके प्रबन्ध काव्य की विशेषताओं पर, अलकारों के वर्णन पर और इनकी कविता की परिभाषा पर सस्कृत काव्यशास्त्र का प्रभाव दिखाई देता है। इनकी काव्य पुरुष की कल्पना भी उसके ही अनुकूल है। तुलसीदास का दैन्य प्रकटीकरण सन्देश शास्त्र की शैली का स्मरण दिलाता है। इसी भाँति सूरदास के काव्य मे भी शास्त्रीय तत्व प्राप्त होते हैं। मीराबाई ने भी अलकारों को स्थान दिया है।

इस काल म सस्कृत के अनुकूल टीकायें भी प्राप्त होती हैं। भक्तमाल की टीका इसका पुष्ट प्रमाण है। इस युग के अन्य कवि भी शास्त्रीय तत्वों से अछूते नहीं रह सके हैं। नन्ददास व परमानन्द दास की रचनायें इसका प्रमाण हैं। इस प्रकार निष्कर्ष निकाला गया है कि इस काल म शास्त्रीय नियमो का पालन किया गया है। साथ ही शास्त्रीय उक्तियां सूक्तियो के रूप म बावहेरचनायें नखशिखादि वर्ण काव्य द्वारा अमर होने की भावना आदि प्राप्त होती हैं जो आगामी युग म विकसित होती हैं। इस युग का भाव पक्ष तो प्रबल था ही किन्तु कला पक्ष भी महत्व पूर्ण था।

इस काल मे कृपाराम त्रिपाठी ने शास्त्रीय ग्रन्थ लक्षण ग्रन्थ की भी रचना की। आचार्य केशव ने अधिकांशत पूर्व ध्वनिकालीन आचार्यों को मान्यता प्रदान की। इसके कारणों मे उनका अह राजा की अत्युक्ति पूर्ण प्रशसा, बचने की कामना और प्राचीन को अर्वाचीन से श्रेष्ठतर समझना आदि हो सकते हैं। इनकी कविप्रिया और रसिक प्रिया पर सस्कृत शास्त्रकारों का प्रभाव दिखाई देता है। कवि रूढियो के वर्णन म अलकारों के भेदों के चित्रण म शृगारिकता क दिग्दर्शन मे, और वृत्तियो आदि के उल्लेख म इन पर शास्त्रीय प्रभाव कहा जा सकता है। साथ ही आचार्य ने यत्र-तत्र मौलिकता का परिचय भी दिया है।

रीति काल मे सस्कृत के ग्रन्थो के आधार पर भाषा की प्रवृति के अनुकूल रीति ग्रथो का प्रणयन किया गया। कहीं कहीं मौलिकता के प्रयत्न किये गये। जिनमे अधिकांशत एकाधिक ग्रथों को मिला जुलाकर या भुला कर नवीनता का आभास दिया गया। इस युग की कई उक्तियाँ अग्रेजी के 'युओक्लोसिकल' काल से तुलनीय है। सामान्य जीवन का दिग्दर्शन इस काल के साहित्य म प्राप्तहोता है। चिंतामणि त्रिपाठी की काव्य की परिभाषा और उनका रीति विवेचन तथा अलकारादि वर्णन सस्कृत काव्य शास्त्र के अनुकूल है। तोषकृत सुधानिधि मे रस, रसा

भाव हाव, भाव, दोष, वृत्ति, नायकादि भेद को स्थान दिया गया है। महाराजा जसवन्त सिंहजी के भाषा भूषण में संस्कृत की शैली का अनुसरण किया गया है। अधिकांशत शैली चन्द्रालोक' की है। और विषय कुवलयानन्द' के अनुकूल है। मतिराम, भूषण, कुलपति मिश्र, आचार्य देव, आचार्य भिखारीदास, पद्माकर के काव्य संस्कृत काव्य शास्त्रों से प्रभावित प्रतीत होते हैं। इस काल की उक्तियां और इस युग के निरूपण भी संस्कृत शैली की छाया से दूर नहीं रह सके हैं।

अतएव निष्कर्षत कहा जा सकता है कि आदि काल के शास्त्रीय तत्व भक्ति काल मे होकर रीतिकाल म पुष्टता प्राप्त करने लगे। विषय और शैली की दृष्टि से य बहुधा संस्कृत की शैली पर आधत थ।

रीति काल तक हिंदी साहित्य संस्कृत काव्य शास्त्र की ओर दृष्टि लगाये हुए था और यत्र-तत्र अपभ्रंश शैली के अनुकूल संस्कृत काव्य शास्त्रकारों से विमुख ही हो रहा था। अंग्रेजी काव्य शास्त्र के परिचय न उसे अपनी ओर भी आकृष्ट किया। अंग्रेजो के आते ह, तो काव्य शास्त्र पर उनका प्रभाव नहीं पडा किंतु रेल तार डाक और मुद्रण ने अंग्रेजी साहित्य से परिचय बढाया। विश्व विद्यालयों व विद्यालयो की स्थापनाओं ने भारतीय काव्य शास्त्र की दृष्टि अंग्रेजो की ओर भी फेरी। अतएव भारतेंदु काल मे संस्कृत काव्य शास्त्र के साथ अंग्रेजी काव्य शास्त्र का भी प्रभाव दिखाई देने लगा। इस युग म संस्कृत काव्य शास्त्रीय पद्धति क अनुकल रस, ध्वनि आदि को स्थान दिया जाता था। टीकाओं की रचनाएँ होती थी और काव्य शास्त्रीय ग्रंथों का निर्माण भी होता था। साथ ही अंग्रेजो प्रभाव क कारण मौलिकता और नवीनता का आग्रह दिखाई देने लगा। गद्य मे व्याख्याएँ की जाने लगी। पत्र पत्रिकाओं में आलोचनात्मक निबन्ध प्राप्त होने लगे। नूतन साहित्यिक विधाओं-वृत्तान्त नाटकों और उपन्यासों आदि को स्वीकार किया गया। इनके प्रणयन की कामनाएँ प्रकट की गई। अंग्रेज आलोचकों और अंग्रेज विद्वानों ने इसमें सहयोग दिया। अंग्रेज आलोचकों के समान- पम्फलेटीयस' के समान आलोचकों में प्रतिस्पर्धा के दर्शन होने लगे। भाषा के सुधार की ओर भी ध्यान गया। अंग्रेजो के तत्वो को शास्त्रीय आधार पर अपनाने की आकांक्षा प्रकट की जाने लगी। सौन्दर्य को मर्मांक कहना इसका उदाहरण है। अंग्रेजी के समान प्रयोगात्मक आलोचनाएँ भी प्राप्त होने लगीं। नागरी प्रचारिणी सभा ने खोज और अनुसंधानों म सहयोग दिया। लाइव्ज ओफ पोइट्ज के अनुकूल भारतीय कवियो

सांग रूपक प्रयोग, नाट्योक्त रस, अलंकार और शृंगारादि वर्णन में शास्त्रीय पद्धति का निर्वाह किया है। उनकी सहृदय सामाजिक की आकांक्षा काव्य शास्त्रकारों के अनुकूल है। इनके प्रबंध काव्य की विशेषताओं पर, अलंकारों के वर्णन पर और इनकी कविता की परिभाषा पर संस्कृत काव्यशास्त्र का प्रभाव दिखाई देता है। इनकी काव्य पुरुष की कल्पना भी उसके ही अनुकूल है। तुलसीदास का दैन्य प्रकटीकरण सन्देश शास्त्र की शैली का स्मरण दिलाता है। इसी भाँति सूरदास के काव्य में भी शास्त्रीय तत्व प्राप्त होते हैं। मीराबाई ने भी अलंकारों को स्थान दिया है।

इस काल में संस्कृत के अनुकूल टीकायें भी प्राप्त होती हैं। भक्तमाल की टीका इसका पुष्ट प्रमाण है। इस युग के अन्य कवि भी शास्त्रीय तत्वों से अछूते नहीं रह सके हैं। नन्द दास व परमानन्द दास की रचनायें इसका प्रमाण हैं। इस प्रकार निष्कर्ष निकाला गया है कि इस काल में शास्त्रीय नियमों का पालन किया गया है। साथ ही नाट्यशास्त्रीय उक्तियां सूक्तियों के रूप में आवहेरचनायें, नखशिखादि वर्णन, काव्य द्वारा अमर होने की भावना आदि प्राप्त होती हैं जो आगामी युग में विकसित होती हैं। इस युग का भाव पक्ष तो प्रबल था ही किन्तु कला पक्ष भी महत्व पूर्ण था।

इस काल में कृपाराम त्रिपाठी ने शास्त्रीय ग्रन्थ लक्षण ग्रन्थ की भी रचना की। आचार्य केशव ने अधिकांशतः पूर्व ध्वनिकालीन आचार्यों को मान्यता प्रदान की। इसके कारणों में उनका अहं राजा की अत्युक्ति पूर्ण प्रशंसा, बचने की कामना और प्राचीन को अर्वाचीन से श्रेष्ठतर समझना आदि हो सकते हैं। इनकी कविप्रिया और रसिक प्रिया पर संस्कृत शास्त्रकारों का प्रभाव दिखाई देता है। कवि रूढ़िया के वर्णन में अलंकारों के भेदों के चित्रण में शृंगारिकता के दिग्दर्शन में, और वृत्तियों आदि के उल्लेख में इन पर शास्त्रीय प्रभाव कहा जा सकता है। साथ ही आचार्य ने यत्र-तत्र मौलिकता का परिचय भी दिया है।

रीति काल में संस्कृत के ग्रन्थों के आधार पर भाषा की प्रवृत्ति के अनुकूल रीति ग्रन्थों का प्रणयन किया गया। कहीं कहीं मौलिकता के प्रयत्न किये गये। जिनमें अधिकांशतः एकाधिक ग्रन्थों को मिला जुलाकर या भुला कर नवीनता का आभास दिया गया। इस युग की कई उक्तियां अंग्रेजी के 'युओक्लोसिकल' काल से तुलनीय है। सामन्ती जीवन का दिग्दर्शन इस काल के साहित्य में प्राप्त होता है। चिन्तामणि त्रिपाठी की काव्य की परिभाषा और उनका रीति विवेचन तथा अलंकारादि वर्णन संस्कृत काव्य शास्त्र के अनुकूल है। तोषकृत सुधानिधि में रस, रसा

भाव हाव, भाव, दोष, वृति, नायकादि भेद को स्थान दिया गया है। महाराजा जयवन्त सिंहजी के भाषा भूषण में संस्कृत की शैली का अनुसरण किया गया है। अधिकांशत शैली चन्द्रालोक की है। और विषय कुवलयानन्द' के अनुकूल है। मतिराम, भूषण, कुलपति मिश्र, आचार्य देव, आचार्य भिखारीदास, पद्माकर के काव्य संस्कृत काव्य शास्त्रों से प्रभावित प्रतीत होते हैं। इस काल की उक्तियाँ और इस युग के निर्णय भी संस्कृत शैली की छाया से दूर नहीं रह सके हैं।

अतएव निष्कपत कहा जा सकता है कि आदि काल के शास्त्रीय तत्व भक्ति काल में होकर रीतिकाल में पुष्टता प्राप्त करने लगे। विषय और शैली की दृष्टि से ये बहुधा संस्कृत की शैली पर आधृत थे।

रीति काल तक हिन्दी साहित्य संस्कृत काव्य शास्त्र की ओर दृष्टि लगाये हुए था और यत्र-तत्र अपभ्रंश शैली के अनुकूल संस्कृत काव्य शास्त्रकारों से विमुख ही हो रहा था। अंग्रेजी काव्य शास्त्र के परिचय ने उसे अपनी ओर भी आकृष्ट किया। अंग्रेजों के आते हुए तो काव्य शास्त्र पर उनका प्रभाव नहीं पड़ा किन्तु रेल डाक और मुद्रण ने अंग्रेजी साहित्य से परिचय बढ़ाया। विश्व विद्यालयों व विद्यालयों की स्थापनाओं ने भारतीय काव्य शास्त्र की दृष्टि अंग्रेजी की ओर भी फेरी। अतएव भारतेन्दु काल में संस्कृत काव्य शास्त्र के साथ अंग्रेजी काव्य शास्त्र का भी प्रभाव दिखाई देने लगा। इस युग में संस्कृत काव्य शास्त्रीय पद्धति के अनुकूल रस ध्वनि आदि को स्थान दिया जाता था। टीकाओं की रचनाएँ होती थीं और काव्य शास्त्रीय ग्रन्थों का निर्माण भी होता था। साथ ही अंग्रेजी प्रभाव के कारण मौलिकता और नवीनता का आग्रह दिखाई देने लगा। गद्य में व्याख्याएँ की जाने लगीं। पत्र-पत्रिकाओं में आलोचनात्मक निबन्ध प्राप्त होने लगे। नूतन साहित्यिक विधाओं-दुखान्त नाटकों और उपन्यासों आदि को स्वीकार किया गया। इनके प्रणयन की कामनाएँ प्रकट की गई। अंग्रेज आलोचकों और अंग्रेज विद्वानों ने इसमें सहयोग दिया। अंग्रेज आलोचकों के समान- 'पब्लिकेटीयस' के समान आलोचकों में प्रतिस्पर्धा के दर्शन होने लगे। भाषा के सुधार की ओर भी ध्यान गया। अंग्रेजी के तत्वों को शास्त्रीय आधार पर अपनाने की आकांक्षा प्रकट की जाने लगी। सौन्दर्य को गर्भांक कहना इसका उदाहरण है। अंग्रेजों के समान प्रयोगात्मक आलोचनाएँ भी प्राप्त होने लगीं। नागरी प्रचारिणी सभा ने खोज और अनुसंधानों में सहयोग दिया। लाइब्रेरी ओफ पोएट्स के अनुकूल भारतीय कवियों

टीरा आदि को अपनाया व सस्कृत के छन्दों का समर्थन किया। साथ ही उन्होंने अग्रेजी के वड्सवर्थ के अनुकूल भाषा और विषय पर दृष्टिपात किया। अग्रेजी की ब्लक वस से भी वे प्रभावित रहे। उन्होने अपनी भाषा को समृद्ध बनाने के लिये अग्रेज आलोचकों और विद्वानो से पत्र व्यवहार भी किये। उनके निबन्धो मे अग्रेजी शैली का प्रभाव दिखाई देता है। पत्रिका म अनुदित ग्रन्थो को भी स्थान दिया गया। इस प्रकार द्विवेदी जी पर सस्कृत काव्य शास्त्र और अग्रेजी दोनों का ही प्रभाव परिलक्षित होता है। इस युग के अन्य समालोचक—सर्व श्री मिश्र बन्धु डा० श्याम सुन्दर दास, पडित पद्मसिंह शर्मा, पडित कृष्ण बिहारी मिश्र आदि की रचनायें भी हमारे कथन की पुष्टि करती हैं।

द्विवेदी युग तक की आलोचना में परीक्षण प्रणाली का आभास प्राप्त होता है। कभी आलोचक सस्कृत की पद्धति को अपनाते तो कभी अग्रेजी नियमो को। सस्कृत काव्य शास्त्र और अग्रेजी शास्त्र को सुविधानुसार अपनाया जाता था। आधुनिक युग के प्रखर बुद्धिवान भावक सज्जनो ने अन्धानुकरण हेय माना। साहित्य के मूल्याकन का प्रयास किया गया। सस्कृत और अग्रेजी दोनो के परिपाश्व म। भाव–अनुभाव विभाव और सचारी भाव आदि आलोचना की सामग्री रहे। आलोचकों ने इनका शास्त्रीय दृष्टि से विवेचन किया। साधारणीकरण भी विवेचन की सामग्री रहा। रस की सख्या, रसास्वाद और रसाभास आदि का विवेचन करते हुए पूर्वध्वनिवादी और उत्तरध्वनिवादी नाट्यकारों का विवेचन किया जाता है। विभिन्न सम्प्रदाय–रीति, वक्रोक्ति, ध्वनि और औचित्य आदि का उल्लेख किया जाता है एव सामान्यत काव्य की आत्मा रस को माना जाता है। रस स्वरूप सिद्धात और विश्लेषण, ध्वनि सम्प्रदाय और वक्रोक्ति सम्प्रदायो पर सम्यक प्रकाश डाला जाता है। अलकारों की मौलिक व्याख्या करने वालों मे डा० राम शकरजी शुक्ल रसाल को शीर्ष स्थान प्राप्त है।

इस युग म सस्कृत काव्य शास्त्रीय पारिभाषिक शब्दों और तत्वों को ग्रहण किया गया और उन्हें आधुनिक युग के मनोविज्ञान और अग्रेजी आलोचना तत्वों के प्रकाश मे परखने का प्रयत्न किया गया। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि अग्रेजी मनोविज्ञान के शब्दो के प्रसग मे भारतीय शास्त्रीय शब्दों का मूल्याकन किया गया। यह तो ठीक है किन्तु यन केन प्रकारेण भाव को 'इमोशन', स्थाई भाव को 'सेन्टीमेन्ट' और रस को 'स्टाइल' कह कर मनोवैज्ञानिक शब्दावली म ढालने के प्रयत्न उपयुक्त नहीं हैं।

३ काव्य प्रकाश।

३५ डा० जगदीश नारायण त्रिपाठी—आधुनिक हिन्दी कविता मे अलकार विधान—अनुसधान प्रकाशन—कानपुर।

३६ डा० जगन्नाथ प्रसाद शर्मा—प्रसाद के नाटकों का शास्त्रीय अध्ययन—नन्दकिशोर ब्रादर्स काशी।

३७ जगनाथ प्रसाद भानु—काव्य प्रभाकर—लक्ष्मी वकटेश्वर छापाखाना कल्याण पजाब।

३८ जगन्नाथ प्रसाद रत्नाकर—बिहारी रत्नाकर—ग्रन्थाकार, शिवाला बनारस।

३९ जयशंकर प्रसाद शर्मा—काव्यकला तथा अन्य निबन्ध—भारती भण्डार प्रयाग।

४० जसवन्तसिंह—भाषा भूषण—हिन्दी साहित्य कुटीर, वाराणसी।

४१ डा दशरथ ओझा—१ समीक्षा शास्त्र—राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली।

२ हिन्दी नाटक उद्भव और विकास—राजपाल, दिल्ली।

४२ डा० दीनदयाल गुप्त—अष्ट छाप और वल्लभ सप्रदाय, हि० सा० सम्मेलन प्रयाग।

४३ दूलह—कविकुल कण्ठा भरण—देववितुधा, लखनऊ।

४४ देव—१ भाव विलास, तरुण भारत ग्रन्थावली कार्यालय, प्रयाग।

२ शब्द रसायन—हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।

३ रसविलास—बनारस मर्केण्टाइल

४ देव काव्य रत्नावली दुगड रामप्रसाद।

४५ डा० देवराज—१ आधुनिक समीक्षा—राजकमल एण्ड सस, दिल्ली।

२ छायावाद का पतन—वाणी मन्दिर छपरा।

४६ डा० देवराज उपाध्याय—आ० कथा सा० मे मनोविज्ञान—सा० भवन प्रयाग।

४७ देवीशकर अवस्थी—अठारहवी शती के ब्रजभाषा काव्य म प्रेमाभक्ति हि०-ग्र० र० दिल्ली।

४८ धनञ्जय (कवि) नाम माला—समाष्य सम्पादक शभुनाथ त्रिपाठी, भारतीय ज्ञान पीठ काशी।

४९ डा० धीरेन्द्र वर्मा—१ हिन्दी साहित्य कोश—ज्ञान मडल बनारस।

२ हिन्दी भाषा और लिपि स १२ हिन्दु० एकेडेमी, इलाहाबाद।

३ हिन्दी भाषा का इतिहास, सं० रा० ३ हि० एके० इलाहाबाद।

५० डा० नगेन्द्र —१ हिन्दी साहित्य का वृहद इतिहास–ना० प्र० स० काशी।
२ देव और उनकी कविता—गौतम बुक डिपो, दिल्ली।
३ (सपादित) वक्रोक्ति काव्य जीवित–आत्माराम दिल्ली।
४ रीति काव्य की भूमिका– नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
५ भारतीय काव्य शास्त्र की भूमिका—ओरिएण्टल बुक डिपो, दिल्ली।
६ अनुसधान और आलोचना–नेशनल प० हा० दिल्ली।
७ आधुनिक हिन्दी काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ—गौतम बुक डिपो दिल्ली।
८ आधुनिक हिन्दी नाटक—सा० रत्न भण्डार, आगरा।
९ विचार और अनुभूति–प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद
१० *विचार और विश्लेषण—नेशनल प० हा० दिल्ली।*
११ सुमित्रा नन्दन पत– साहित्य रत्न भडार आगरा।
१२ अरस्तु का काव्य शास्त्र (स०), भा० भ०।
१३ काव्य मे उदात्त तत्व—राजपाल एण्ड सस दिल्ली।
५१ डा० नगेन्द्र एव डा० सावित्री सिन्हा–पाश्चात्य काव्य शास्त्र की परम्परा—दिल्ली विश्व विद्यालय।
५२ आचार्य नन्ददुलार वाजपेयी —
१ आधुनिक साहित्य—भारती भडार, प्रयाग।
२ नया साहित्य नये प्रश्न – विद्या मन्दिर, काशी।
३ *हिन्दी साहित्य बीसवी शताब्दी—लोक भारती, इलाहाबाद।*
४ महाकवि सूरदास—आत्माराम एण्ड सस दिल्ली।
५३ नरोत्तम स्वामी—अलकार पारिजात, लक्ष्मी नारायण लाल आगरा।
५४ डा० नामवर सिंह—हिन्दी के विकास मे ... याग–सा० भवन लि० प्रयाग।
५५ डा० नारायण दास खन्नी–आचार्य भिखारी ... न, कानपुर
५६ निराप ... १ हिन्दी सा० का इ ... , देहरादून
आधुनिक हिन्दी का ... सा० स०

५७ डा० निमला जैन—आधुनिक हिन्दी काव्य म रुप विधायें, नेशनल प० हा० दिल्ली।

५८ पद्माकर-पद्माभरण-(स) वि० ना० प्र० मिश्र, वाणी वितान प्रकाशन, वाराणसी।

५९ पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी—१ साहित्य शिक्षा—हिं० ग्र० र० बम्बई।
२ हि० सा० विमर्श० द्वि० पुस्त० वाकी पुरगगा।
३ विश्व साहित्य—गगा लखनऊ।

६० परशुराम चतुर्वेदी—१ उत्तर भारत की सत परम्परा—भारती भडार, प्रयाग।
२ मीराबाई की पदावली।

६१ डा० पीताम्बर दत्त बड़थ्वाल-हिन्दी का्य मे निर्गुण सप्रदाय—ना० प्र० स० काशी।

६२ डा० प्रभुदयाल मित्तल—सूर निर्णय—अजन्ता प्रेस, बम्बई।

६३ डा० प्रताप नारायण टडन—१ शिवराज भूषण—हिं० सा० स० दिल्ली।
२ हिन्दी समीक्षा के मान और विशिष्ट प्रवृत्तिया—भाग १, २।

६४ प्रतापसिंह—व्यग्याथ कौमुदी—भारत जीवन प्रेस, काशी।

६५ डा० फतहसिंह—कामायनी सौन्दय—मोहन न्यूज एजेंसी कोटा।

६६ डा० बरसानेलाल चतुर्वेदी—हिन्दी साहित्य मे हास्य रस—हिं० सा० स० दिल्ली।

६७ डा० बल्देव उपाध्याय-भा० सा० शास्त्र भाग १, २ प्रसाद परिषद् काशी।

६८ बलवान सिंह—चित्र चन्द्रिका—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ।

६९ डा० ब्रजेश्वर वर्मा—सूर मीमासा—ओरिएण्टल दिल्ली।

७० डा० ब्रह्मानन्द शर्मा—बगला पर हिन्दी का प्रभाव-अशोक प्रकाशन दिल्ली।

७१ बालकृष्ण भट्ट—भट्ट निबन्धावली—भाग १, २, का० ना० प्र० सभा०।

७२ बालमुकुन्द गुप्त—गुप्त निबन्धावली—भारत मित्र प्रेस, कलकत्ता।

७३ बालेन्दु—हिन्दी काव्य शास्त्र, साहित्य भवन लि० इलाहाबाद।

७४ बिहारीलाल भट्ट—साहित्य सागर—गगा ग्रन्थागार लखनऊ।

७५ डा० बेचन—आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य और चरित्र विकास—सन्मार्ग प्रकाशन, दिल्ली।

७६ ब्रजवासीलाल—करुण रस—हिं० सा० स० दिल्ली।

७७ ब्रह्मदत्त—दीपप्रकाश—भारती प्रेस, बनारस ।
७८ डा० भगवत स्वरूप मिश्र–हि० आलोचना उद्भव और विकास—सा० स० देहरादून ।
७९ भगवानदीन—१ प्रियाप्रकाश—कल्याणदास एण्ड सन्स वाराणसी ।
२ अलकार चन्द्रिका—लाला० रा० बेनीप्रसाद, इलाहाबाद ।
३ अलकार मजूषा–रामनारायण लाल एण्ड सन्स, इलाहाबाद ।
४ विहारी और देव—सा० भू० प्र० काशी ।
८० डा० भागीरथ मिश्र—१ हिन्दी साहित्य और समीक्षा—एस० चाद एण्ड कं० दिल्ली ।
२ हिन्दी काव्य शास्त्र का इतिहास–लखनऊ विश्वविद्यालय ।
३ काव्य शास्त्र—विश्व विद्यालय प्र० गोरखपुर ।
४ हिन्दी रीति साहित्य—राजकमल प्रकाशन, दिल्ली ।
८१ भानुदत्त—रसमजरी—भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ ।
८२ भिखारीदास—१ काव्य निर्णय—कल्याणदास एण्ड ब्रदस—वाराणसी ।
२ भिखारीदास ग्रन्थावली भाग १, २, का० ना० प्र० सभा, काशी ।
८३ भूषण—भूषण ग्रन्थावली—रा० बनीमाधव, इलाहाबाद ।
८४ डा० भोलाशकर व्यास—हिन्दी कुवलयानन्द—चौखम्भा, बनारस ।
८५ मतिराम—१ रस राज—चौखम्भा ।
२ मतिराम ग्रन्थावली (स० वि० प्र० मिश्र)—का० ना० प्र० स०, काशी ।
८६ महावीर प्रसाद द्विवेदी १ साहित्य सीकर—तरुण भारत ग्रन्थावली, प्रयाग ।
२ साहित्य सदन—गगा पुस्तक०, लखनऊ ।
३ समालोचना समुच्चय–रामनारायण लाल प्रयाग ।
४ रसज्ञ रजन—साहित्य रत्न भण्डार, आगरा ।
५ कालिदास और उनकी कविता—हिन्दी मन्दिर, जबलपुर ।
६ कालिदास की निरकुशता–इण्डियन प्रेस, प्रयाग ।
७ सचय (सकलनकर्त्ता प्रभात शास्त्री)—कौशाम्बी, इलाहाबाद ।

८७ महादेवी वर्मा—१ आधुनिक कवि भाग १, हि० सा० सम्मेलन प्रयाग।
२ दीप शिखा—भा० भ० काशी।
३ यामा—भा० भ० काशी।
४ साहित्य रस की आस्था तथा अन्य निबन्ध—लोक भारती।

८८ डा० मनोहर काले—आधु० हि० मराठी मे काव्य शास्त्रीय अध्ययन—हि० प्र० र० दिल्ली।

८९ डा० मनोहर गौड—घनानन्द और स्वच्छन्द काव्य धारा—ना० प्र० स० काशी।

९० महेश्वर—महेश्वर भूषण—भारत जीवन प्रेस, बनारस।

९१ महेन्द्र चतुर्वेदी—हिन्दी उपन्यास एक सर्वेक्षण—हि० प्र० पु०।

९२ डा० माताप्रसाद गुप्त—१ हिन्दी पुस्तक साहित्य।
२ तुलसीदास।

९३ मिश्र बन्धु—१ हिन्दी नव रत्न—गंगा पुस्तकालय, लखनऊ।
२ मिश्र बन्धु विनोद—४ भाग, गंगा।
३ साहित्य पारिजात—गंगा।
४ कविकुल कंठा भरण (दूलह)—गंगा।
५ काव्य कल्प तरु—सत्याचरण—स।

९४ मुरारीदास (कविराज)—जसवन्त जसो भूषण—मारवाड प्रेस जोधपुर।

९५ मोहनलाल गुप्त एवं सुरेशचन्द्र—प्रतिनिधि आलोचना—एस० चन्द, दिल्ली।

९६ रत्नेश—फतेह प्रकाश—भारत प्रकाशन मन्दिर, अलीगढ।

९७ डा० रविन्द्र सहाय वर्मा—हि० काव्य पर आंग्ल प्रभाव—पद्मजा प्रकाशन कानपुर।

९८ रमाशंकर तिवारी—प्रयोगवादी काव्य धारा—चौखम्भा।

९९ राजेन्द्र द्विवेदी—साहित्य शास्त्र का पारिभाषिक शब्दकोश—आत्माराम एण्ड संस।

१०० रामचन्द्र शुक्ल १ चिन्तामणि—भाग १ इंडियन प्रेस इलाहाबाद।
२ चिन्तामणि भाग २, सरस्वती मन्दिर काशी।
३ रस मीमांसा—ना० प्र० सभा काशी (स० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र)
४ त्रिवेणी—१, २, ना० प्र० सभा काशी।
५ भ्रमर गीतसार—कृष्णदास, साहित्य सेवा सदन, बनारस।
६ गोस्वामी तुलसीदास—ना० प्र० सभा काशी।

१०१ डा० रामकुमार वर्मा—१ साहित्य शास्त्र–राजकिशोर प्रकाशन इलाहाबाद।
२ हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, राम नारायण लाल इलाहाबाद।
१०२ डा० रामकुमार वर्मा एवं डा० दीक्षित—एकांकी कला—रा० बेनी माधव
डा० रामकुमार वर्मा–साहित्य समालोचना–साहित्य मन्दिर प्रयाग।
१०३ रामदहिन मिश्र—१ काव्य दर्पण—ग्रन्थमाला कार्यालय, पटना।
२ काव्य में अप्रस्तुत योजना—ग्रन्थमाला, पटना।
३ काव्यालोक–हि० उद्योत० कार्यालय प्रकाशन, बाकीपुर।
४ काव्य विमर्श—ग्रन्थमाला, पटना।
१०४ रामनरेश त्रिपाठी—तुलसी और उनका काव्य—राजपाल दिल्ली।
१०५ डा० रामचरण महेन्द्र-१ हि० एकांकी उद्भव और विकास-सा० प्रकाशन दिल्ली।
२ हिन्दी एकांकी एवं एकांकीकार–सरस्वती प्रकाशन, आगरा।
१०६ डा० रामविलास शर्मा—प्रेमचन्द और उनका युग—मेहरचन्द्र, मुन्शीराम, दिल्ली।
(डा० रामविलास शर्मा)—आलोचक रामचन्द्र शुक्ल और हिन्दी आलोचना
प्रगतिशील साहित्यकी समस्याएँ—विनोद पुस्तक म० आगरा।
१०७ श्रद्धेय काव्याचार्य डा० राम शंकरजी शुक्ल 'रसाल'
१ अलंकार पीयूष—पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध–राम नारायण लाल, इलाहाबाद।
२ आलोचनादर्श—इण्डियन प्रेस प्रयाग।
३ हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामदयाल अग्रवाल, प्रयाग।
४ छन्द शास्त्र—बेनीमाधव, इलाहाबाद।
१०८ रामधारी सिंह दिनकर—१ संस्कृति के चार अध्याय—उदयाचल पटना।
२ काव्य की भूमिका—उदयाचल प्रकाशन, पटना।
१०९ डा० रामबहोरी मिश्र—हिन्दी साहित्य का उद्भव और विकास–हिन्दी भवन जालन्धर।
११० राहुल सांकृत्यायन—१ हिन्दी काव्य धारा—किताब महल, प्रयाग।
२ हि० सा० का वृहद् इति० भा० १६, ना० प्र० स० काशी।

१११ डा० रामधन शर्मा—कूट काव्य एवं अध्ययन—नेशनल प० हा० दिल्ली।
११२ डा० रामागार—हिन्दी की सैद्धान्तिक समीक्षा—अनुसधान, कानपुर।
११३ डा० राम मतनसिंह—आ० हि० कविता मे चित्र विधान—नेशनल प० हा० दि०
११४ लछीराम—१ रावणेश्वर कल्प तरु—भारत जीवन प्रेस।
२ रामचन्द्र भूषण खेमराज—श्रीकृष्णदास बम्बई।
११५ लक्ष्मीनारायण लाल सुधांशु—काव्य मे अभिव्यजनावाद—ज्ञान पीठ, पटना।
११६ लक्ष्मी सागर वार्ष्णेय—१ आ० हि० सा० की भूमिका—हि० परिषद् प्रयाग, वि० वि०।
२ हिन्दुई सा० का इतिहास (अनूदित)
११७ लेखराज—गगाभरण—नन्दकिशोर मिश्र, गाधौली, सीतापुर।
११८ लीलाधर गुप्त—पा० साहित्यालोचन के सिद्धान्त—हि० एके० प्रयाग।
११९ डा० विजयेन्द्र स्नातक—हि० सा० का सक्षिप्त इति०—रणजीत दिल्ली।
१२० डा० वि० स्नातक एव डा० सावित्री सिन्हा—अनुसधान की प्रक्रिया—न० प० हा० दिल्ली।
१२१ डा० विश्वनाथ मिश्र—हिन्दी भाषा और साहित्य पर अंग्रेजी प्रभाव—सा० सदन, देहरादून।
१२२ डा० विश्वनाथ प्रसाद मिश्र—१ केशव ग्रन्थावली भाग १ २, ३, ना० प्र० स०, काशी।
२ बिहारी की वाग्विभूति—हि० सा० कुटीर बनारस।
३ हिन्दी साहित्य का अतीत—वाणी विहान।
१२३ विनोद शकर व्यास—प्रसाद और उनका साहित्य—हि० सा० कु०।
१२४ डा० वकट शर्मा—आ० हि० समालोचना का विकास—आत्माराम, दिल्ली।
१२५ विपिन विहारी त्रिवेदी व डा० उषा गुप्ता—छन्द अलकार ,, ,,
१२६ विश्वम्भरनाथ उपाध्याय—आधुनिक कविता—प्रभात प्रकाशन।
१२७ शचीरानी गुर्टू—हिन्दी के आलोचक—आत्माराम एण्ड सस, दिल्ली।
१२८ डा० शम्भुनाथ—रस अलकार पिंगल—विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।
१२९ डा० श्याम नन्दकिशोर—आधुनिक महाकाव्यो का शिल्प विधान—स० पु० स० आगरा।
१३० डा० श्याम सुन्दरदास—१ कबीर ग्रन्थावली—का० ना० प्र० सभा, काशी।
२ मेरी आत्म कहानी—इ० प्रेस लि० प्रयाग।

१४४ सूरदास—१ सूर सागर—खण्ड १, २, का० ना० प्र० सभा, काशी।
२ साहित्य लहरी,—साहित्य संस्थान मथुरा।

१४५ श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला—१ चयन—कला मन्दिर प्रयाग।
२ चाबुक—कला।
३ पन्तजी और पल्लव—गंगा-ग्रन्थागार, लखनऊ।
४ प्रबन्ध पद्म, गंगा—लखनऊ।
५ प्रबन्ध प्रतिभा—भारती भ०, प्रयाग।

१४६ सेठ गोविन्द दास—अंग्रेजी का आगमन तथा उसके बाद—एस० चाद० दिल्ली।

१४७ डा० सोमनाथजी गुप्त—१ आलोचना उसके सिद्धान्त—भा० भारती।
२ पूर्व भारतेन्दु नाटकावली—हिन्दी भवन।
३ हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास—सस्ता सा० म०

१४८ सोमनाथ—रस पीयूष निधि—

१४९ ड० हजारीप्रसाद द्विवेदी—१ अशोक के फूल—सस्ता सा० मंडल, नई दिल्ली।
२ साहित्य का मर्म—लखनऊ वि० वि०
३ हमारी साहित्यिक समस्यायें—हरेन्द्र प्र०, भागलपुर।
४ हिन्दी साहित्य—अत्तरचन्द कपूर दिल्ली।
५ हिन्दी साहित्य का आदिकाल—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पटना।
६ हिन्दी साहित्य की भूमिका—हि० ग्रंथ रत्नाकर, बम्बई।
७ कबीर—हि० प्र० र० दिल्ली।

१५० डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी व शर्मा—१ नाट्य शास्त्र की भारतीय परम्परा और दशरूपक—राजकमल।

१५१ डा० हरवंस लाल शर्मा—१ सूर और उनका साहित्य भारत प्रकाशन म०, अलीगढ़।
२ भागवत दर्शन—भा० प्र० मंदिर, अलीगढ़।
३ सूर काव्य की आलोचना—भा० प्र० मंदिर
४ सूर सरोवर—बंसल दिल्ली।

३ रूपक रहस्य—इं० प्रे० लि० प्रयाग।
४ हिन्दी भाषा और साहित्य
५ साहित्यालोचन। ,,
१३१ शान्ति प्रिय द्विवेदी—१ कवि और काव्य—इण्डिया प्रेस प्रयाग।
२ साहित्यिकी—ग्रन्थमाला, बांकीपुर।
३ संचारिणी—इण्डिया प्रेस, प्रयाग।
४ सामयिकी—ज्ञान मंडल—बनारस।
१३२ शिवसिंह—शिवसिंह सरोज—अमर भारती जय, गङ्गा लखनऊ।
१३३ शिवदान सिंह चौहान—१ आलोचना के मान—रणजीत प्रिंटस, दिल्ली।
२ प्रगतिवाद—प्रदीप कार्यालय, मुरादाबाद।
३ साहित्य की परख—इण्डियन पब्लि० प्रयाग।
४ साहित्य की समस्यायें—आत्माराम दिल्ली।
५ हिन्दी साहित्य के अस्सी वर्ष—राजकमल प्रकाशन दिल्ली।
१३४ डा० श्री कृष्णलाल—आ० हिन्दी सा० का विकास—हि० वि० वि० प्रयाग।
१३५ श्रीराम शर्मा—आदिलशाह का काव्य संग्रह—क० मु० हि० आगरा।
१३६ डा० श्रीनिवास शर्मा—१ आधुनिक हिन्दी काव्य में वात्सल्य रस—श्याम श्री निवास, अशोक प्रकाशन दिल्ली।
२ भारतीय काव्य समीक्षा—अशोक प्र० दिल्ली।
१३७ श्री मुनिजिन विजय तथा हरिवल्लभ भियाणी—सदेश रासक (स) बम्बई।
१३८ डा० सत्येन्द्र—१ गुप्तजी की काव्य कला—सा० रत्न भंडार, आगरा।
२ ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन सा० रत्न भ० आगरा।
१३९ डा० सरनाम सिंहजी—कबीर एक विवेचन—हि० सा० स० दिल्ली।
१४० डा० सुधीन्द्र—हिन्दी कविता में युगान्तर—आत्माराम, दिल्ली।
१४१ सुमित्रा नन्दन पन्त—१ गद्य पद्य—साहित्य भवन लि०, प्रयाग।
२ साठ वर्ष एक मूल्यांकन।
१४२ सुरति मिश्र—बिहारी सतसई की टीका।
कवि प्रिया की टीका।
नखशिख।
१४३ डा० सुरेशचन्द्र—१ आधुनिक हिन्दी कवियों के काव्य सिद्धान्त—हिन्दी सा० संसार, दिल्ली।

१४४ सूरदास—१ सूर सागर—खण्ड १, २, का० ना० प्र० सभा, काशी।
२ साहित्य लहरी,—साहित्य संस्थान मथुरा।

१४५ श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला—१ चयन—कला मन्दिर प्रयाग।
२ चाबुक—कला।
३ पन्तजी और पल्लव—गंगा-ग्रन्थागार, लखनऊ।
४ प्रबन्ध पद्म, गंगा—लखनऊ।
५ प्रबन्ध प्रतिभा—भारती भ०, प्रयाग।

१४६ सेठ गविन्द दास—अंग्रेजी का आगमन तथा उसके बाद-एस० चाद० दिल्ली।

१४७ डा० सोमनाथजी गुप्त—१ आलोचना उसके सिद्धान्त—भा० भारती।
२ पूर्व भारतेन्दु नाटकावली—हिन्दी भवन।
३ हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहास-सस्ता सा० स०

१४८ सोमनाथ—रस पीयूष निधि—

१४९ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी-१ अशोक के फूल-सस्ता सा० मंडल, नई दिल्ली।
२ साहित्य का मर्म—लखनऊ वि० वि०
३ हमारी साहित्यिक समस्यायें-हरेन्द्र प्र०, भागलपुर।
४ हिन्दी साहित्य—अत्तरचन्द कपूर दिल्ली।
५ हिन्दी साहित्य का आदिकाल—राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, पटना।
६ हिन्दी साहित्य की भूमिका—हि० ग्रन्थ रत्नाकर, बम्बई।
७ कबीर-हि० प्र० र० दिल्ली।

१५० डा० हजारी प्रसाद द्विवेदी व शर्मा—१ नाट्य शास्त्र की भारतीय परम्परा और दशरूपक—राजकमल।

१५१ डा० हरवंस लाल शर्मा—१ सूर और उनका साहित्य भारत प्रकाशन म०, अलीगढ़।
२ भागवत दर्शन—भा० प्र० मन्दिर, अलीगढ़।
३ सूर काव्य की आलोचना—भा० प्र० मन्दिर
४ सूर सरोवर—बंसल दिल्ली।

१५२ डा० हरबन्सलाल शर्मा एवं परमानन्द शास्त्री—बिहारी और उनका साहित्य—भा० म० प्र० अलीगढ़।
१५३ डा० हरि कृष्णजी पुरोहित—आधुनिक हिन्दी साहित्य पर पाश्चात्य प्रभाव—प्रकाशनाधीन।
१५४ डा० हीरालाल—(सं) करकंड चरित—भारतीय ज्ञान पीठ, दिल्ली।
१५५ डा० हीरालाल दीक्षित—आचार्य केशवदास—लखनऊ वि० वि०।
१५६ हेमचन्द्र सूरी—१ अपभ्रंश व्याकरण—राजकमल दिल्ली।
२ प्राकृत व्याकरण—सं० डा० परशुराम वैद्य पूना।

परिशिष्ट 'स'

Reference Books in English

Apoligie for poetrie	(1580) Idney
Biographia Literaria –	(1817) Coleridge
Black Wood s magazine	(1817)
The Dunciad	(1728) Allexander Pope
Moral Essays	(1733 9)
Imitations of Horace	(1733 9)
The Edinburgh Review	(1802)
Lyrical Ballads –The preface Words worth	(1798)
The prefeces of shairran plays	
The Prelude—	(1805) Intro Sellincoust
Luarterly Review	(1809)
History of English Criticizm	by Dr Saintsbury
Use of poetry and use of criticizm	by T S Eliot
Principles of criticizm	by I A Richards
Practical Criticizm	by I A. Richards
History of Sanskrit Poeti s	by S. K. Di
Natya Shastra Bharat muni Traslated	by Dr M M Ghoh
School of Abuses Gosson	
Obiter Dicta	
Quientes ences of Ibsenizm	
Quientessences of Shavizm	
Hindi Lift	F E Keay
Classical sansk Litt	by Dr A B Keith
Cambridge History of English Litt	
Max muller s versiong Rigveda	
Methods & materials of Literary criticizm	by Gale & Scott

The new criticizm
Psychological Approach to literary criticizm — by I E Spmagarn
Oxford Lectures on poetry — F L Lucas
Studies of European Realizm — A C Bradley
Introduction to Illusion & Reality — by F L Lucas
A history of criticizm & Literary Taste in Europe in three vols — C Codwell
History of Literary criticizm in the Ranaassance — by Dr Saintsbury
History of Sanskrit Poetics — by Spingram
History of English Litt — P V Kane
History of English Litt — by Dr Compton Ricket
History of English Litt — by Legouis & Cazamian
English critrical Essays IXX & XX Cent — by Dr Ifor Evans
selected by E D Yong
Oxford companion to English Litt
Survey of English — Litt Elton
History of English Proody three vols — Dr Sainstsbury
March of Litt prod mod ox
James Joycee & the plain Reader — Duff C
The Twentieth Cent Litt — A C Ward
The Victorian Era — C Maria
Main currents in mod Litt — A R Reade
English Litt — C H Mani
The Outline of Litt — Johon Drink Wate
Selected essays — T S Eliot
To criticize the critic — T S Eliot
Eliot than Dramatists — T S Eliot

=00=